KGS IAS

# भारत का भौतिक भूगोल

**KHAN GLOBAL STUDIES**

Most Trusted Learning Platform

KGS IAS

# Test Series

## UPSC Prelims 2024

Offline | Online

- Detailed Solutions for all Questions (PDF)
- Time - Bound, Disciplined, & Result-Oriented Tests
- Holistic Coverage of all Study Materials & Sources
- Pattern and Trend Based on UPSC CSE Prelims Exam
- Fundamental and Comprehensive Test

Scan to Know More

**KHAN GLOBAL STUDIES**

Most Trusted Learning Platform

# विषय सूची


| | |
|---|---|
| **भारत का भूगोलः सामान्य परिचय** | **1** |
| स्थिति और उसका महत्व | 2 |
| हमारे पड़ोसी देश | 2 |
| भारत की भौगोलिक विशेषताएँ | 3 |
| भू-आकृति विज्ञान | 5 |
| चट्टानें एवं उनका वर्गीकरण | 5 |
| **भारत की संरचना और भौगोलिक स्थिति** | **5** |
| भूकंप | 8 |
| ज्वालामुखी | 9 |
| भूस्खलन | 10 |
| परिचय | 11 |
| हिमालय पर्वतीय क्षेत्र | 11 |
| **भारत के भौतिक प्रभाग** | **11** |
| उत्तरी भारत का विशाल मैदान | 15 |
| प्रायद्वीपीय पठार | 17 |
| भारतीय द्वीप | 23 |
| परिचय | 24 |
| अपवाह तंत्र के प्रकार | 24 |
| भारत में नदी प्रणाली | 24 |
| **अपवाह प्रणाली** | **24** |
| ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र | 27 |
| भारत के जलप्रपात | 30 |
| भारत की प्रमुख झीलें | 30 |
| परिचय | 31 |
| भारत की ऋतुएँ | 31 |
| **भारत की जलवायु** | **31** |
| मानसून की उत्पत्ति | 33 |
| भारत में वर्षा का वितरण | 36 |
| भारत के जलवायु क्षेत्र | 37 |
| सूखा | 38 |
| बाढ़ | 39 |
| भारत में चक्रवात | 39 |
| पश्चिमी विक्षोभ | 40 |
| परिचय | 41 |
| **भारत की मृदा** | **41** |
| मृदा अपरदन | 44 |
| मृदा अपरदन रोकने हेतु भारत सरकार के प्रयास | 45 |
| मृदा संरक्षण के सामान्य उपाय | 45 |
| परिचय | 47 |
| भारत में प्राकृतिक वनस्पति का वर्गीकरण | 47 |
| **प्राकृतिक वनस्पति एवं वन संसाधन** | **47** |
| वनों का महत्व | 49 |
| वनों के विनाश के कारण | 51 |
| वनों के विनाश से हानियाँ | 51 |
| वन संसाधन के संरक्षण के उपाय | 51 |
| सामाजिक वानिकी | 52 |
| आर्द्र भूमि | 52 |
| मैंग्रोव | 54 |
| वन्य जीवन | 54 |

# भारत का भूगोल: सामान्य परिचय
# (Geography of India: General Introduction)

## परिचय

भारत के नाम के संदर्भ में ऐसी मान्यता है कि प्राचीनकाल में आर्यों के पौराणिक राजा दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर इस भूमि का नाम भारत पड़ा। इसका एक नाम हिन्दुस्तान भी है जिसे फारसवासियों ने दिया। फारसवासी 'स' को 'ह' कहते थे अत: वे सिंधु नदी को हिन्दु कहते थे। अत: उन्होंने इसे हिन्दुस्तान नाम दिया।

- यूनानी व रोमवासी सिंधु को इंड्स और इसके पूर्व की भूमि को इण्डिया कहते थे। अत: इण्डिया नाम यूनानियों की देन है। वर्तमान में इसे हिन्दी में भारत तथा अंग्रेजी में इंडिया कहा जाता है।

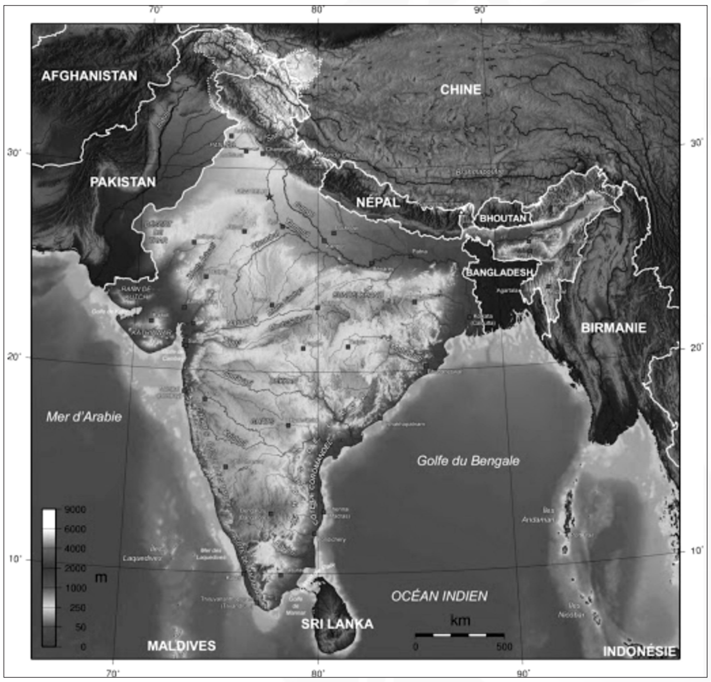


## आकार तथा विस्तार

भारत **8°4′** उत्तरी अक्षांश से **37°6′** उत्तरी अक्षांश तथा **68°7′** पूर्वी देशांतर से **97°25′** पूर्वी देशांतर तक फैला हुआ है। भारतीय मुख्य भूमि से दूर बंगाल की खाड़ी में स्थित केन्द्रशासित प्रदेश अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह 6°4′ उत्तरी अक्षांश से 14° उत्तरी अक्षांश तथा 92° पूर्वी देशान्तर से 94° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। भारत का दक्षिणतम बिन्दु **'इन्दिरा पॉइन्ट'** ग्रेट निकोबार द्वीप में स्थित है। इसे **पिगमेलियन पॉइण्ट** अथवा **पारसन पॉइण्ट** के नाम से भी जाना जाता है। भारत का सबसे उत्तरी बिन्दु **इन्दिरा-कॉल** जम्मू-कश्मीर राज्य में है। भारतीय संघ के दक्षिणतम् बिन्दु और भारतीय मुख्य भूमि के दक्षिणी छोर में लगभग 2° अक्षांशों का अन्तर है। भारतीय मुख्य भूमि से लगभग 280 से 480 किमी. दूर अरब सागर में अवस्थित **लक्षद्वीप समूह** 8° उत्तरी अक्षांश से 12°3′ उत्तरी अक्षांश तथा 71° पूर्वी देशान्तर से 74° पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है।

- कश्मीर से कन्याकुमारी तक उत्तर-दक्षिण दिशा में इसकी लम्बाई 3,214 किमी. है जबकि कच्छ के रन से अरुणाचल प्रदेश तक पूर्व-पश्चिम दिशा में इसकी चौड़ाई 2,933 किमी. है।
- भारत के सभी स्थानों के लिए एक निश्चित समय ज्ञात करने हेतु **82°30′ पूर्वी देशान्तर** को भारत का मानक याम्योत्तर चुना गया है, जो हमें भारत का मानक समय देता है। यह रेखा **इलाहाबाद के नैनी** से होकर गुजरती है। मानक समय के कारण ही भारत के सभी स्थानों की घड़ियाँ एक समय दर्शाती हैं जबकि उत्तर पूर्वी राज्यों में सूर्योदय कच्छ के रन से दो घंटे पहले होता है। 82°30′ याम्योत्तर को मानक याम्योत्तर चुनने का कारण यह है कि विश्व के देशों में आपसी समझौते के अंतर्गत मानक याम्योत्तर 7°30′ देशांतर के गुणांक पर चुना जाता है ताकि 7°30′ देशांतरीय दूरी पर स्थित स्थानों के बीच आधे घंटे (30 मिनट) का समयांतर हो। भारतीय मानक समय ग्रीनविच माध्य समय से **5 घंटे 30 मिनट** आगे है।

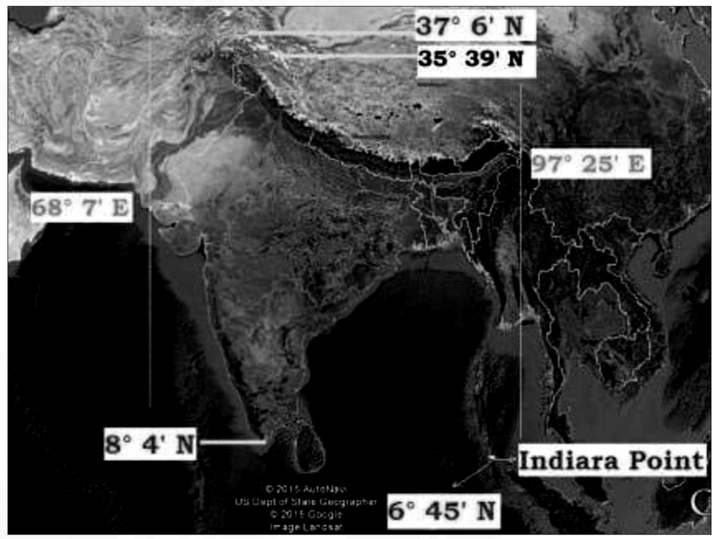


- भारत विश्व का **सातवां** बड़ा देश है, इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 32.8 लाख वर्ग किमी. है जो विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का लगभग 2.4 प्रतिशत है। भारत से भौगोलिक क्षेत्रफल में छ: बड़े देशों के नाम रूस, कनाडा, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील (85.1 लाख वर्ग किमी.) तथा ऑस्ट्रेलिया हैं।
- कर्क रेखा (23½° उत्तरी अक्षांश) भारत के ठीक बीचों-बीच से गुजरती है और इसे लगभग दो बराबर भागों में बांटती है। परंतु दक्षिणी भाग की अपेक्षा उत्तरी भाग अधिक चौड़ा है। अत: इस रेखा के दक्षिण की अपेक्षा उत्तर भारत का क्षेत्रफल लगभग दो गुना है।
- 22° उत्तरी अक्षांश के दक्षिण में भारतीय महाद्वीप धीरे-धीरे संकरा होता जाता है और हिंद महासागर को दो भागों में बांटता है। इनके पश्चिम में अरब सागर तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी स्थित हैं। इन समुद्रों ने अफ्रीका, दक्षिण-पश्चिम एशिया तथा दक्षिण-पूर्व एशिया से भारत के व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संबंधों को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- भारत के उत्तर में हिमालय पर्वत पूर्व से पश्चिम की ओर हजारों किलोमीटर लंबी अविच्छिन्नशृंखला की भांति खड़ा है। यह उस पर्वत तंत्र का अंग है जो एशिया के हृदय स्थल में संसार की छत अर्थात पामीर से चारों ओर विकीर्ण होती है। हिमालय पर्वत की ऊँची एवं अपारगम्य श्रृंखलाओं ने भारत का सम्पर्क ट्रांस हिमालय क्षेत्र से नहीं होने दिया। इन ऊँची-ऊँची पर्वतश्रृंखलाओं के कारण मध्य एशिया से भारत में प्रवेश, कुछ दर्रों से ही संभव है। इन पर्वतों से घिरे होने के कारण भारत की एकरूपता को बल मिलता है।

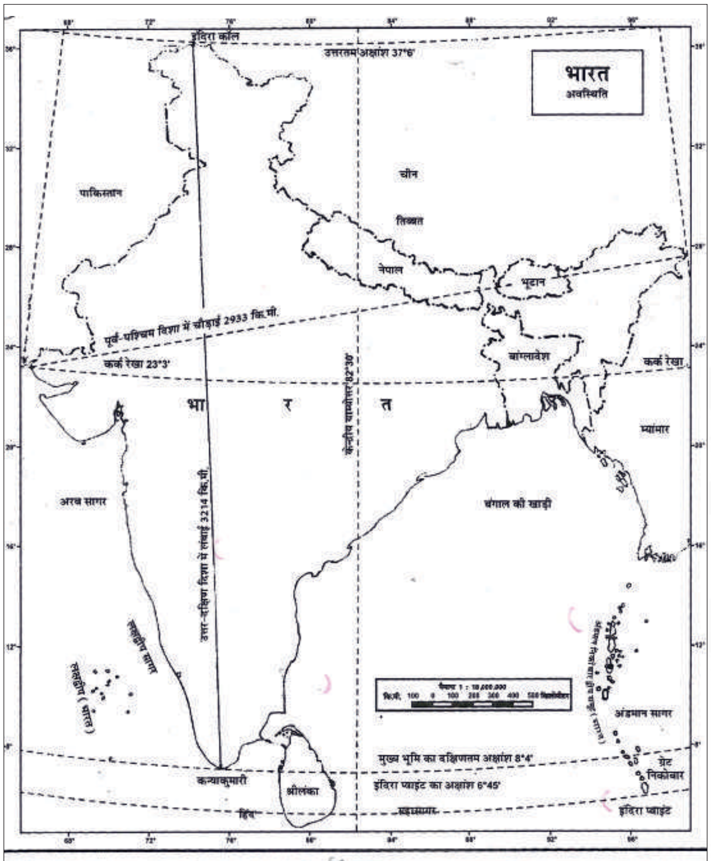


चित्र 1.1 भारत: अवस्थिति

## *स्थिति और उसका महत्व*

उत्तरी गोलार्द्ध के पूर्वी भाग में भारत की अवस्थिति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यूरोप और अमरीका के पश्चिमी भागों से भारत लगभग समान दूरी पर स्थित है। अनेक अंतर्राष्ट्रीय वायु मार्ग एवं सामुद्रिक मार्ग इसकी सीमा से या इसके तट के निकट से होकर निकलते हैं। इस प्रकार पूर्वी देशों से पश्चिमी देशों की ओर तथा पश्चिमी देशों से सुदूर पूर्व की ओर जाने वाले प्रमुख व्यापारिक मार्ग भारत से होकर गुजरते हैं। भारत से पूर्व और दक्षिण पूर्व की ओर ये मार्ग चीन व जापान को, पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिमी यूरोप, संयुक्त राज्य अमेरिका, लैटिन अमेरिका के देशों और पूर्वी एवं दक्षिणी अफ्रीका को, तथा दक्षिण में श्रीलंका, सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड को जाते हैं।

- स्वेज नहर के निर्माण ने भारत की अवस्थित का महत्व और भी बढ़ा दिया। क्योंकि इसके द्वारा पश्चिमी यूरोपीय देशों और भारत के पश्चिमी तटीय बंदरगाहों के बीच लगभग 4,800 किलोमीटर दूरी कम हो गयी। स्वेज नहर और पूर्व में मलक्का जल संयोजक के आरंभ होने से लगभग सभी जलयान भारत से होकर निकलते हैं। इससे दक्षिण एशिया में भारत की स्थिति का महत्व स्पष्ट दिखाई देता है।
- इस प्रकार भारत पश्चिमी औद्योगिक देशों को एवं पूर्व के विकासशील देशों के बीच एक संयोजक शृंखला के रूप में स्थापित है। भारत को दोनों प्रकार के देशों से निर्मित एवं कच्चे माल का आयात तथा निर्यात करने में अत्यधिक सुगमता रहती है।
- अपनी इसी महत्वपूर्ण स्थिति के कारण प्राचीन काल से ही भारत का संपर्क तत्कालीन संपूर्ण विश्व से था। उस समय प्रमुख व्यापारिक स्थल मार्गो का केंद्र भारत ही था। पूर्व की ओर चीन, जापान, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, सुमात्रा, जावा, बाली, आदि देशों तक तथा पश्चिम की ओर अरब, फारस, मिस्र, यूनान तथा रोम तक भारतीय व्यापारियों के जहाज विभिन्न प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ (गरम मसाले, मोती, हीरे, जवाहरात, सोना, रेशमी एवं सूती वस्त्र, खाण्ड व कलात्मक वस्तुएँ आदि) ले जाया करते थे। दक्षिण भारत के चोल, पाण्ड्य, पल्लव आदि राज्यों ने तो पूर्वी देशों में उपनिवेश तक स्थापित किए थे, जहाँ आज भी भारतीय संस्कृति के चिह्न प्रमाण के रूप में उपलब्ध होते हैं। बौद्ध धर्म का दक्षिण पूर्वी एवं पूर्वी एशिया में तेजी से फैलने का कारण भी भारत की भौगोलिक स्थिति के महत्त्व को दिखाता है।
- वायुमार्गों की दृष्टि से भारत की स्थिति उत्तम कही जा सकती है। पश्चिमी देशों से सुदूर पूर्व (चीन, जापान, इण्डोनेशिया, ऑस्ट्रेलिया) को जाने वाले वायुयान भारत से होकर ही निकलते हैं। दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, आदि अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे हैं जहाँ पर ठहरकर वायुयान ईंधन एवं यात्री लेते हैं तथा यहाँ आपातकालीन स्थितियों में वायुयानों की तकनीकी खराबियों को भी दूर किया जाता है।
- हिंद महासागर के तट पर जितने भी देश अवस्थित हैं, उनमें भारत की तटीय सीमा हिंद महासागर के साथ सर्वाधिक लम्बी है।
- स्थलीय स्थिति की दृष्टि से भी भारत का महत्व है। दक्षिणी एशिया के तीन बड़े प्रायद्वीपों में भारत सबसे बड़ा और अन्य दो प्रायद्वीपों (अरब तथा हिंद चीन) के बीच में स्थित होने के कारण और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

## *हमारे पड़ोसी देश*

भारत की अंतर्राष्ट्रीय सीमाएँ अधिकांशत: प्राकृतिक हैं और वे ऐतिहासिक रूप से निर्धारित हैं। इस विशाल देश के पश्चिम में अरब सागर, पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा दक्षिण में हिंद महासागर है। उत्तर तथा पूर्व में इसकी सीमाओं को हिमालय तथा उसकीशृंखलाएं निर्धारित करती हैं। भारत की मुख्य भूमि के अतिरिक्त बंगाल की खाड़ी में अण्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह और अरब सागर में लक्षद्वीप समूह स्थित हैं, जो मुख्य भूमि से समुद्र द्वारा अलग किए गए हैं। समुद्र पार भारत का सबसे निकट का पड़ोसी देश श्रीलंका है जो पाक जलडमरूमध्य द्वारा भारत की मुख्य भूमि से अलग होता है। हमारा दूसरा निकटतम समुद्री पड़ोसी देश इण्डोनेशिया है जो निकोबार द्वीप समूह के अंतिम द्वीप के दक्षिण में स्थित है। भारत के पूर्व में बांग्लादेश, म्यांमार, लाओस, मलेशिया, कंबोडिया, थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, वियतनाम आदि देश स्थित हैं। जबकि पश्चिम में पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, इराक आदि देश हैं। लक्षद्वीप के दक्षिण में मालदीव स्थित है।

- उत्तर में भारत की सीमा हिमालय पर्वत बनाता है। यहाँ कुनलुन तथा काराकोरम जम्मू-कश्मीर की सीमा पर स्थित हैं। इसके उत्तर में चीन का सिक्यांग प्रदेश है। इसके उत्तर एवं पूर्व में तिब्बत का पठार है जो अब चीन के अधीन है। तिब्बत की राजनैतिक तथा आध्यात्मिक राजधानी ल्हासा भारत की सीमा से 300 किमी से भी कम दूरी पर स्थित है। इसके बाद भारतीय सीमा दक्षिण-पूर्व तथा पूर्व की ओर मुड़ती है। जहां भारत, चीन तथा म्यांमार की सीमाएँ आपस में मिलती हैं। सिंधु नदी से ब्रह्मपुत्र नदी तक यह सीमा लगभग 2,400 किमी. लंबी है। इन्हीं नदियों के बीच वाले भाग में नेपाल तथा भूटान भारत के पड़ोसियों के रूप में स्थित है।
- पूर्व में पहाड़ियों एवं पर्वतमालाओं की लंबी शृंखला भारत को म्यांमार से अलग करती है। इनमें **मिश्मी, पटकाई बूम, नागा हिल, बैरेल पर्वतमाला, मिजो हिल** तथा **आराकान योमा** पर्वतमाला स्थित है। इस क्षेत्र में भारी वर्षा के कारण घने वन और जटिल उच्चावच तथा तीव्रगामी नदियों के कारण भारत के म्यांमार के साथ स्थलीय संबंध अधिक सुदृढ़ नहीं बन पाए।

- उत्तर में हिमालय पर्वत की ऊँची शृंखला के कारण प्राचीन काल से ही हमारा सम्पर्क अन्य देशों से कम रहा। परंतु पिछले कुछ वर्षों में इन पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण सड़कों का निर्माण हुआ है। भारत-तिब्बत मार्ग का निर्माण सतलुज-गार्ज से होकर किया गया है। इसी प्रकार संसार का सबसे ऊँचा सड़क मार्ग (3,450 मीटर) कश्मीर-लेह मार्ग है जो काराकोरम दर्रे को पार करता है। तीसरा प्रमुख मार्ग सिक्किम के दर्रे में से होकर जाता है। आधुनिक वायुमार्गों ने इस पर्वतीय दीवार का महत्व कम करते हुए भारत के उत्तर में स्थित देशों से सम्पर्क आसान कर दिया है।

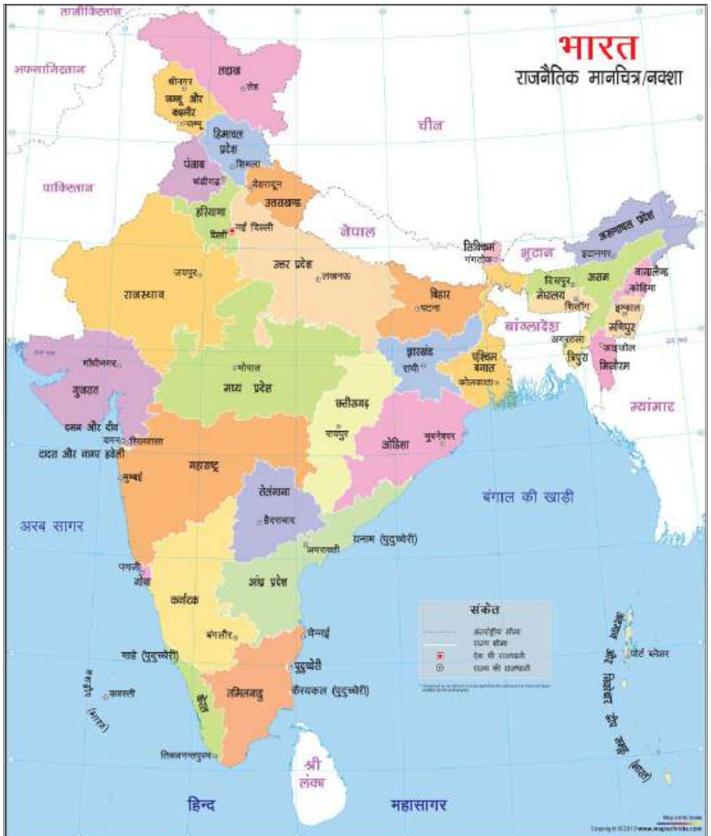


**भारत-राजनैतिक मानचित्र**

- भारत की स्थलीय सीमा पर उत्तर में नेपाल, भूटान और तिब्बत (चीन), पूर्व में बांग्लादेश एवं म्यांमार और पश्चिम में पाकिस्तान देश स्थित है। कश्मीर की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर अफगानिस्तान की सीमाएँ भी भारत को छूती हैं।
- भारत और चीन के बीच अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को **मैकमोहन रेखा** कहते हैं। यह सीमा रेखा 1914 में शिमला में निर्धारित की गयी थी जो 3,380 किमी लंबी है। भारत और पाकिस्तान के बीच विद्यमान अंतर्राष्ट्रीय सीमा रेखा **रेडक्लिफ रेखा** है जो 15 अगस्त 1947 को सर एम रेडक्लिफ के द्वारा निर्धारित की गयी थी। यह 2,912 किमी. है। भारत और म्यांमार के बीच विद्यमान 1,463 किमी. लंबी स्थलीय सीमा पूर्णत: सुनिश्चित है। इस सीमा रेखा के सहारे भारत के अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मणिपुर और मिजोरम राज्य अवस्थित हैं। भारत और बांग्लादेश के बीच सीमा रेखा पूर्णत: स्थलीय है एवं विशेष समझौतों द्वारा सुनिश्चित है, यह सीमा रेखा 4,053 किमी. लंबी है। भारत और नेपाल के बीच हिमालय की पर्वत शृंखलाएँ प्राकृतिक सीमा रेखा बनाती है। यह सीमा रेखा 1,690 किमी. लंबी है। भारत और भूटॉन के बीच 587 किमी. लम्बी सीमा रेखा है। भारत और अफगानिस्तान के बीच **डूरण्ड रेखा** है, जो 1896 में सर डूरण्ड द्वारा निर्धारित की गयी थी। अब यह रेखा अफगानिस्तान एवं पाकिस्तान के बीच है। दक्षिण में श्रीलंका **पाक जलसंधि** तथा **मन्नार की खाड़ी** द्वारा अलग होता है। इस प्रकार भारत की कुल स्थल सीमा की लम्बाई 15,200 किमी. तथा समुद्री किनारे की कुल लम्बाई 6100 किमी. है।
- स्पष्ट है कि भारत की विशिष्ट सीमाओं ने इस देश को एशिया के अन्य भागों से अलग एक निश्चित रूप प्रदान कर एक संपूर्ण भौगोलिक इकाई बनाया है। उत्तर में तीनों ओर पर्वतीय श्रृंखलाओं के फलस्वरूप एशिया महाद्वीप के स्थलीय प्रभाव और मध्य व पश्चिमी एशिया के अन्य देशों में होने वाली राजनीतिक उथल-पुथल का भारत पर नगण्य प्रभाव पड़ता है। जो भारत को एक विशिष्ट भौगोलिक एवं राजनैतिक इकाई के रूप में स्थापित करता है।

## भारत की भौगोलिक विशेषताएँ

भारत जैसे विशाल देश में नृजातीय, धार्मिक, भाषाई, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अत्यधिक क्षेत्रीय विविधताएँ पाई जाती है। इन विविधताओं के बावजूद भी भारत एक अखण्ड राज्य अर्थात् संघ के रूप में स्थित है। इसकी भौगोलिक संरचना भी ऐसी है जो इसे चारों तरफ से संगठित रूप प्रदान करती है।

### भौगोलिक लक्षण

***भारत के मुख्य भौगोलिक आधार निम्नलिखित हैं-***

- ***देश का विशाल आकार***- भारत का कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है जो रूस, कनाडा, चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील तथा आस्ट्रेलिया के बाद यह विश्व का सातवां बड़ा देश है। यह विश्व के 2.4 प्रतिशत क्षेत्र पर फैला हुआ है और देश में विश्व की 17.19 प्रतिशत (2011 जनगणना के अनुसार) जनसंख्या निवास करती है। इतने बड़े आकार के कारण इस देश में प्राकृतिक एवं मानवीय विविधताएँ बड़े पैमाने पर पाई जाती हैं।
- ***स्थलाकृतिक विविधताएँ***- भारत के उत्तरी भाग में हिमालय पर्वत स्थित है जिसकी चोटियाँ सदा बर्फ से ढकी रहती हैं। ध्रुवीय इलाकों को छोड़कर सबसे अधिक हिमनदियाँ हिमालय क्षेत्र में ही पाई जाती हैं। ये हिमनदियाँ उत्तरी भारत की प्रमुख नदियों को पूरे वर्ष जल प्रदान करती हैं जिससे ये नदियाँ सदैव प्रवाहित होती रहती हैं जैसे गंगा, यमुना, सिंधु, झेलम, गंडक आदि। उत्तरी भारत का विशाल मैदान है जो पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक फैला हुआ है जिसकी उपजाऊ मिट्टियाँ घनी जनसंख्या का पोषण करती हैं। उत्तरी विशाल मैदान के दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार है जिसमें कई छोटे-छोटे पठार हैं। पश्चिमी घाट तथा पूर्वी घाट इसकी क्रमश: पश्चिमी एवं पूर्वी सीमाओं को निर्धारित करती है। विंध्याचल पर्वत श्रेणी भारत का मुख्य सांस्कृतिक विभाजक है। इसके उत्तर में आर्य तथा दक्षिण में द्रविड़ संस्कृतियाँ हैं।
- ***जलवायु संबंधी विशेषताएँ***- मौसम और ऋतुओं की लय भारत की जलवायु की विशेषता है कभी तो साल के कुछ महीनों में कई दिनों तक लगातार वर्षा होती है और कभी बिल्कुल नहीं। कभी पवनें समुद्र की ओर से चलती हैं तो कभी स्थल की ओर से। ये विशेषताएँ भारत की जलवायु को मानसूनी बना देती हैं।
- भारत की जलवायु उष्णकटिबंधीय है। देश की अवस्थिति, समुद्र तल से ऊँचाई, समुद्र से दूरी, पर्वतों की दिशा तथा उच्चावच जैसी विविधताएँ तापमान व वर्षा संबंधी विषमता व विविधता को जन्म देती हैं।
- ***अपवाह तंत्र में विविधता***- उत्तरी भारत में बहने वाली नदियाँ हिमालय

के हिमाच्छादित प्रदेशों से निकलती है और इनमें वर्ष भर जल प्रवाहित होता रहता है।

- इसके विपरीत प्रायद्वीपीय नदियाँ हिम रहित क्षेत्रों से निकलती है और जल की आपूर्ति के लिए केवल वर्षा पर ही निर्भर करती है। इन घाटियों में जल प्रवाह मौसमी होने के साथ साथ अनिश्चित भी है।
- भारतीय नदियों में जल प्रवाह के मौसमी, अनिश्चित एवं अनियमित होने के कारण देश में सूखे एवं बाढ़ की समस्या पैदा हो जाती है। अतिवृष्टि होने पर बाढ़ तथा अनावृष्टि होने पर सूखे की स्थिति उत्पन्न होती है। कई बार तो एक ही समय पर भारत में एक भाग के लोग सूखे की मार को झेल रहे होते हैं तो दूसरे भाग में बाढ़ के कारण जन-धन की अपार क्षति होती है।
- ***प्रजातीय एवं मानवजातीय विविधताएँ***- ऐसी मान्यता है कि भारत में विभिन्न प्रजातियाँ विश्व के विभिन्न भागों से हिमालयी दर्रो को पार कर भारत के उत्तर-पश्चिमी हिस्से में जहाँ नदी-घाटियों की उपजाऊ भूमि थी आकर बस गये। मानव शास्त्रियों का विचार है कि आदि मानव भारत में 4-5 लाख वर्ष पहले आया था। भारतीय उपमहाद्वीप की जनसंख्या का वर्तमान वितरण मुख्य रूप से छः प्रजाति समूहों के आधार पर हुआ है। इनके नाम नीग्रिटो, आद्य ऑस्ट्रेलियाई (आदिवासी), मंगोल, भूमध्यसागरीय, पाश्चात्य एवं नार्डिक हैं। इनका प्रादेशिक वितरण काफी विषम है। ऐसी विविधता एवं विषमता के कारण देश की एकता, अखंडता एवं सुरक्षा को गंभीर खतरा पैदा हो सकता है।
- ***अनुसूचित जनजातियाँ***- ये आदिम लोग हैं जो सबसे पहले प्रायद्वीपीय भारत में आकर बसे थे। अनुसूचित जनजातियाँ जंगलों तथा दुर्गम स्थानों पर समूहों के रूप में रहती हैं। ये ही भारत की मूल निवासी मानी जाती है। इनकी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचना देश की शेष जनसंख्या से भिन्न होती है। पिछले कुछ दशकों में इनकी संख्या में काफी वृद्धि हुई हैं। इसके कारण उनकी संख्या में प्राकृतिक वृद्धि तथा कुछ अन्य जातियों को जनजातियों की सूची में सम्मिलित करना है। संघीय सरकार के मूल संविधान में इनके सुरक्षा तथा आवश्यकताओं को देखते हुए अलग से विचार बनाए गये हैं, जो इनके क्षेत्र के प्रशासन, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति को ध्यान में रखकर बनाया गया है। इस प्रकार इनकी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए तथा उनकी उचित देखभाल के लिए संघीय शासन प्रणाली सर्वाधिक अनुकूल प्रतीत होती है।
- ***अनुसूचित जातियाँ***- भारत के जाति व्यवस्था में इनको सबसे नीचे रखा गया है। इस समय देश में लगभग 542 अनुसूचित जातियाँ हैं, 2001 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या 16.6 करोड़ हैं जो देश की कुल आबादी का 16.2 प्रतिशत है। इनका अधिकांश संकेंद्रण सतलुज-गंगा के मैदान में पाया जाता है जहाँ पर उपजाऊ मिट्टी तथा उपयुक्त जलवायु के कारण इन्हें कृषि श्रमिकों के रूप में पर्याप्त रोजगार मिल जाता है। नागालैण्ड, मणिपुर, मेघालय, गोवा, मिजोरम, दमन व दीव, लक्षद्वीप, अंडमान एवं निकोबार आदि में इनकी संख्या नगण्य है।
- ***जनसांख्यिकीय विविधताएँ***- जनसंख्या का घनत्व, लिंग अनुपात, साक्षरता, आयु संरचना आदि महत्त्वपूर्ण जनसांख्यिकीय तत्व हैं। इन तत्वों में अत्यधिक प्रादेशिक विषमताएँ पाई जाती हैं। जनसांख्यिकीय अनुक्रम में केरल सबसे विकसित तथा बिहार सबसे पिछड़ा प्रदेश है। किसी राज्य की जनसंख्या अधिक साक्षर है किसी की कम, किसी का लिंगानुपात ज्यादा है (केरल) तो किसी का कम (हरियाणा), कहीं समानता अधिक है (बिहार) तो कहीं कम (अरुणाचल प्रदेश)। इस प्रकार जनानांकीय विविधताएँ विद्यमान हैं।
- ***आर्थिक विषमताएँ***- भारत का भौगोलिक आधार इस प्रकार निर्धारित है। प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के संदर्भ में बड़े पैमाने पर स्थानिक विषमताएँ पाई जाती हैं जिनके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास के स्तर में प्रादेशिक विषमताओं का पाया जाना स्वाभाविक ही है। भारत में कई पिछड़े हुए क्षेत्र हैं और कई इतना विकसित हैं कि उनकी तुलना विकसित देशों से की जा सकती है। इन आर्थिक विषमताओं से भारत के सभी क्षेत्रों का समुचित एवं समान विकास नहीं हो सका है।

# भारत की संरचना और भौगोलिक स्थिति
# (Structure and Physiography of India)

## भू-आकृति विज्ञान

भू-आकृति विज्ञान को प्राय: भू-विज्ञान की एक शाखा माना जाता है, जिसके अंतर्गत धरातल पर पायी जाने वाली स्थलाकृतियों तथा उनकी उत्पत्ति में सहायक प्रक्रमों, बलों तथा उनके विकास का अध्ययन किया जाता है।

- भू-वैज्ञानिकों द्वारा पृथ्वी के इतिहास के विभिन्न चरणों या कल्पों को भिन्न-भिन्न नाम प्रदान किये गये हैं। प्राय: कल्पों के नाम उन स्थानों के नाम पर रखे गये हैं जहाँ से कल्प विशेष के शैल प्राप्त हुए हैं। महाकल्प समय का प्राथमिक अंतराल है और कल्प द्वितीय अंतराल। महाकल्प काल में बने शैलों को शैल संघ और कल्प काल में बने शैलों को शैल समूह कहते हैं।

***मानक भू-वैज्ञानिक महाकल्प निम्नलिखित हैं:-***

1. प्राक् केंब्रियन (57 करोड़ वर्ष से प्राचीन),
2. पुराजीव (24.5 से 57 करोड़ वर्ष प्राचीन),
3. मध्यजीव (6.6 से 24.5 करोड़ वर्ष प्राचीन)
4. नूतनजीव (6.6 करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर अर्वाचीन काल तक)।

- देश की मिट्टी एवं खनिज संसाधनों पर शैलों की संरचना का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। हिमालय से उद्गमित नदियों ने तलछट चट्टानों को काटने के बाद ही गंगा के उपजाऊ मैदान का निर्माण किया जो कि कृषि हेतु उर्वर होती है। इसके विपरीत प्राचीन चट्टानों की भूमि से निर्मित मिट्टी में उर्वरता कम होती है किंतु खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं, उदाहरण ाार्थ प्राचीन आर्कियन चट्टानें लोहे एवं सोने के भंडार हेतु सर्वोत्तम हैं। इसी तरह कार्बोनीफैरस युग की चट्टानों में कोयले की मात्रा बहुतायत में पायी जाती है। इसी तरह सागरों के निक्षेप द्वारा निर्मित चट्टानों में खनिज तेल के भंडार प्राप्त होने की संभावना होती है। भारत में अंकलेश्वर व खंभात में इस प्रकार की चट्टानें मिलती हैं जहाँ से पेट्रोलियम की प्राप्ति होती है। इस प्रकार चट्टानों के अध्ययन से विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थों व मिट्टियों की जानकारी प्राप्त होती है।

## भारत के भूवैज्ञानिक कल्प व भौतिक रूप

**GSI के सर टी. हालैण्ड ने भारत के भू-वैज्ञानिक कल्प को चार चरणों में विभाजित किया है-**

1. आद्य महाकल्प (पूर्व प्राक् केंब्रियन)।
2. पुराण महाकल्प (अपर प्राक् केंब्रियन)।
3. द्रविड़ महाकल्प।
4. आर्य महाकल्प।

- उल्लेखनीय है कि भारतीय उप-महाद्वीप का वर्तमान स्वरूप विशाल शैल-समूहों के संघटन का ही परिणाम है। जिसके अतंर्गत भारत को स्थूल रूप से मुख्यत: तीन भू वैज्ञानिक इकाईयों में वर्गीकृत किया गया है।
  1. ***प्रायद्वीपीय पठार:*** प्राचीनतम शैलों से निर्मित।
  2. ***हिमालयी पर्वत क्षेत्र:*** नवीन अवसादी शैलों से निर्मित।
  3. ***सिंधु-गंगा के मैदान:*** नवीन जलोढ़ के निक्षेपों से निर्मित।

## चट्टानें एवं उनका वर्गीकरण

भूमि की सतह पर ठोस पिण्ड के रूप में दिखाई देने वाले किसी भी प्राकृतिक निक्षेपों को चट्टान कहा जाता है। इनका निर्माण दो प्रकार से होता है- (i) पृथ्वी की आंतरिक शक्तियों के कारण तथा (ii) आदि चट्टानों के रूपांतरण या विखंडन से पुन: बन जाने के कारण। विद्वानों द्वारा भारतीय चट्टानों को प्रमुखत: चार वर्गों में विभाजित किया गया है।

## आर्कियन समूह की चट्टानें

- ***आर्कियन क्रम की चट्टानें***- इस प्रकार की चट्टानें अन्य चट्टानों के लिए आधार का निर्माण करती हैं। इन चट्टानों का निर्माण पृथ्वी के ठंडा होने पर हुआ। जैसे- **नीस, ग्रेनाइट, शिस्ट, मार्बल, क्वाट्र्ज, डोलोमाइट, फिलाइट,** आदि इन चट्टानों के प्रकार हैं।
- यह भारत में पाया जाने वाला प्राचीनतम चट्टान समूह है, जो प्रायद्वीप के दो तिहाई भाग को घेरता है (अरावली व धारवाड़)। जब से पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व है, तब से आर्कियन क्रम की चट्टानें भी पाई जाती रही है। इन चट्टानों का इतना अधिक रूपांतरण हो चुका है कि इसके मूलरूप को पहचानना संभव नहीं है। यह लगभग 1,87,500 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैले हुए हैं। इनका विस्तार मुख्य रूप से कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु, ओडिशा, झारखण्ड तथा राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग पर है। हिमालय की मध्यवर्ती श्रेणियाँ भी इसी से निर्मित हैं। आर्कियन क्रम की चट्टानों में जीवाश्मों का सर्वथा अभाव होता है तथा ये रवेदार होती है। इन चट्टानों में लोहा, ताँबा, मैगनीज, अभ्रक, डोलोमाइट, शीशा, जस्ता, चाँदी व सोना जैसे खनिज पाये जाते हैं। आंतरिक शक्तियों का काफी प्रभाव इन चट्टानों पर देखने को मिलता है। प्रायद्वीपीय भाग में आद्य कल्प चट्टानों के तीन पूर्ण-परिभाषित प्रकार मिलते हैं-
  1. ***बंगाल नाइस***- (महीनी रूप से पत्रित नाइस)- पूर्वी घाट, ओडिशा, झारखण्ड के मानभूम व हजारीबाग जिलों में, आंध्र के नेल्लौर, तमिलनाडु के सलेम, सोन घाटी, मेघालय पठार व किमिर पहाड़ियों में विस्तृत।
  2. ***बुंदेलखण्ड नाइस***- (ग्रेनाइट निर्मित मौलिक नाइस)- उत्तर प्रदेश के बुंदेलखण्ड, मध्य प्रदेश के बघेलखण्ड, महाराष्ट्र, राजस्थान, आंध्र प्रदेश व तमिलनाडु में विस्तृत।
  3. ***नीलगिरी नाइस***- (नीले-भूरे रंग का मध्यम व सघन दानों से निर्मित नाइस)- तमिलनाडु के दक्षिणी अर्काट, पालनी, शेवराय व नीलगिरी पहाड़ियों में, आंध्र के नेल्लौर, ओडिशा के बालासोर, कर्नाटक, केरल, मालाबार, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ तथा अरावली में विस्तृत।
- ***धारवाड़ क्रम की चट्टानें***- कर्नाटक के धारवाड़ जनपद के नाम पर इस वर्ग की चट्टानों को धारवाड़ चट्टानें कहा जाता है। इस समूह की चट्टानों का निर्माण आर्कियन क्रम की चट्टानों के रूपांतरण से हुआ। आज ये कायांतरित रूप में मिलती है, जिसमें जीवाश्म का अभाव होता है तथा ये चट्टानें कर्नाटक, मध्यप्रदेश, झारखंड, मेघालय और राजस्थान में फैली हैं। ये मध्य और उत्तरी हिमालय में भी पाई जाती है। **शिस्ट, स्लेट, क्वार्टजाइट** और **कांग्लोमेरेट** इसी वर्ग की चट्टानें हैं। इस शैल समूह में **सोना, मैंगनीज अयस्क, लौह-अयस्क, क्रोमियम, ताँबा, यूरेनियम, थोरियम** एवं **अभ्रक** जैसे खनिज पाए जाते हैं।
- धारवाड़ क्रम की चट्टानें मध्यवर्ती एवं पूर्व दक्कन प्रदेश में विभिन्न श्रेणियों के नाम से विस्तृत हैं, यथा- **बालाघाट और छिंदवाड़ा में चिल्पी श्रेणी, नागपुर व जबलपुर में सागर श्रेणी, हजारीबाग** व **रीवा में**

**गोंडाइट श्रेणी** तथा **विशाखापट्टनम् में कुदोराइट श्रेणी**। इसी तरह गुजरात एवं दिल्ली में क्रमश: **चम्पानेर श्रेणी** तथा अरावली के क्षेत्र **ऊपरी अरावली श्रेणीयों** के नाम से जानी जाती है। मकरान, राजनगर का प्रसिद्ध संगमरमर इसी श्रेणी से प्राप्त होता है जबकि चम्पानेर श्रेणी से हरे रंग के विशिष्ट संगमरमर की प्राप्ति होती है। इस क्रम के लौह-अयस्क श्रेणी का विस्तार सिंहभूम, मयूरभंज, केवझर आदि में एक्शृंखला के रूप में है। इसकी लंबाई 65 किमी. है तथा इसमें लगभग 3,000 मिलियन टन लौह-अयस्क भंडार होने का अनुमान है।

- बाह्य प्रायद्वीप की धारवाड़ क्रम की चट्टानें मुख्यत: मेघालय पठार से पश्चिमी हिमाचल प्रदेश की निचली घाटियों में प्राप्त होती है। बाह्य प्रायद्वीपीय धारवाड़ क्रम की चट्टानें भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न श्रेणियों के नामों से जानी जाती है। इन्हें मेघालय भाग में **शिलांग श्रेणी**, कश्मीर में **सखलाना श्रेणी** तथा हिमाचल प्रदेश में स्थित स्फीति घाटी में **वैक्रता, गढ़वाल** में **जौसर** श्रेणी के नाम से जाना जाता है।
- प्रायद्वीप और बाह्य प्रायद्वीप की धारवाड़ चट्टानों में संरचनागत काफी भिन्नताएँ प्रकट होती है। प्रायद्वीपीय चट्टानों का रूपांतर बाह्य प्रायद्वीपीय चट्टानों की अपेक्षा अधिक हुआ है। इसी कारण उनमें खनिज पदार्थ अधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। कहीं-कहीं ये चट्टानें एक साथ काफी दूर के क्षेत्रों में व्याप्त मिलती है। इसके विपरीत बाह्य प्रायद्वीप में धारवाड़ क्रम की चट्टानें अधिकतर गहरी गर्तों और घाटियों में मिलती है या कहीं ऊँचे स्थान पर। इसके पीछे वजह यह है कि इन प्रदेशों का धरातल निर्माण के बाद ऊपर उठा है और इस पर अधिक जमाव नहीं हो पाया है। कहीं यदि जमाव हुआ भी है तो वह सही रूप से नहीं है।

### *धारवाड़ चट्टानों का आर्थिक महत्त्व*

भारत में पायी जाने वाली समस्त चट्टानों में आर्थिक दृष्टि से यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चट्टान है। देश में उपलब्ध लगभग सभी धातुएँ इन्हीं चट्टानों की देन हैं। ये धातुएँ हैं- सोना, ताँबा, लोहा, मैंगनीज, जस्ता, टंगस्टन, क्रोमियम, आदि। इन धातुओं के अलावा कई खनिज पदार्थ इन चट्टानों से प्राप्त होते हैं- सीसा, अभ्रक, कोबाल्ट, फ्लूराइट, इल्मैनाइट, ग्रेनाइट, बजफ्राम, गारनेट, एस्बेस्टस, कोरंडम और संगमरमर आदि। धातुओं में सोना मुख्य रूप से कर्नाटक के कोलार क्षेत्र में और धारवाड़ की घाटी में मिलती है और लोहा मुख्य रूप से झारखण्ड, मध्य प्रदेश, ओडिशा, छत्तीसगढ़, गोवा व कर्नाटक में मिलता है।

## *पुराण समूह*

- इस समूह के चट्टानों की उत्पत्ति मुख्यत: विवर्तनिक हलचलों के कारण हुई। धारवाड़ समूह की चट्टानों के रूपांतरण से ही पुराण समूह की चट्टानों की उत्पत्ति हुई। धारवाड़ चट्टानों की आंतरिक हलचलों की प्रक्रिया में निचले भागों में कुड़प्पा क्रम की चट्टानें तथा ऊपरी भागों में विंध्यन क्रम की चट्टानें प्राप्त हुई।
- ***कुड़प्पा क्रम की चट्टानें***- (600 मिलियन से 1,400 मिलियन वर्ष प्राचीन)- इन चट्टानों का निर्माण धारवाड़ क्रम की चट्टानों के बाद एक अंध युग के पश्चात् हुआ है। धारवाड़ युग की चट्टानें समय के साथ धीरे-धीरे विभिन्न जलीय क्रियाओं द्वारा कट-छंट कर समुद्री एवं नदियों की निचली घाटियों में जमा होती रहीं और बाद में इन्हीं एकत्रित निक्षेपों ने चट्टानों का रूप ग्रहण कर लिया, जिन्हें हम कुड़प्पा क्रम की चट्टानें कहते हैं। आंध्र प्रदेश के **कुड़प्पा जिले** के नाम पर इस चट्टान समूह का नामकरण किया गया है। कुड़प्पा जिले में यह चट्टान अर्द्ध चंद्राकार स्वरूप में एक विशाल क्षेत्र में पाई जाती है, ये प्राचीन अवसाद शिलाएँ हैं जिनकी मोटाई लगभग 6,000 मीटर है। कुड़प्पा क्रम की चट्टानों में **शैल, स्लेट, क्वार्टजाइट** तथा **चूने का पत्थर** आदि प्रमुख हैं। इन चट्टानों में जीवाश्मों का अभाव है, जबकि उस समय पृथ्वी पर जीवन का आविर्भाव हो चुका था। इन चट्टानों में धात्विक उपस्थिति भी कम है। इनका विस्तार लगभग 22,000 वर्ग किमी. के क्षेत्र में है। ये चट्टानें मुख्य रूप से आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, तमिलनाडु तथा हिमालय के मध्यवर्ती क्षेत्रों में पायी जाती हैं। आर्थिक दृष्टि से कुड़प्पा चट्टानें खनिजों की कम प्राप्ति के परिणामत: धारवाड़ चट्टानों से कम महत्त्वपूर्ण हैं, हालाँकि इन चट्टानों में हमें **ताँबा, निकेल, कोबाल्ट, लोहा, मैंगनीज, संगमरमर, एस्बेस्टस, हीरे, चूना-पत्थर, बालुका पत्थर** और **सीसा** आदि खनिज प्राप्त होते हैं। इस क्रम की प्रमुख श्रेणियाँ निम्न प्रकार की हैं-
  1. ***पापाधानी श्रेणी ( आंध्र )***- इस श्रेणी की प्रमुख चट्टानें क्वार्टज, बालू पत्थर, शैल, स्लेट, चूना-पत्थर तथा संगमरमर है। इस श्रेणी में मैग्मा का 'डाईक' व 'सिल' रूपों में उदभेदन हुआ है।
  2. ***रीमालो श्रेणी***- (दिल्ली से राजस्थान)- इस श्रेणी में क्वार्टज, फ्लैग पत्थर, चूना-पत्थर, संगमरमर व भवन निर्माण हेतु चट्टानें पाई जाती है।
- ***विंध्यन क्रम की चट्टानें***- विंध्यन चट्टानों का निर्माण कुड़प्पा चट्टानों के बाद हुआ है। इसका नामकरण विंध्याचल के नाम पर किया गया है जिसका विस्तार पश्चिम में **चित्तौड़गढ़ से लेकर सासाराम** तक है। ये चट्टानें जल निक्षेपों के परिणामस्वरूप निर्मित परतदार चट्टानें हैं। इसमें अवसादी निक्षेपों की बहुलता है। जो कई स्थानों पर 4000 मीटर से अधिक मोटी है। **महान सीमा भ्रंश** (Great Boundary Fault) विंध्य प्रणाली को अरावली से अलग करता है। विंध्यन चट्टानों से बलुआ पत्थर प्राप्त हुआ है, जो इस बात का सूचक है कि जिन निक्षेपों से इन चट्टानों का निर्माण हुआ है, वह छिछले सागर में ही एकत्र हुए थे।
- कुड़प्पा चट्टानों की भांति इन चट्टानों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- निचली विंध्यन चट्टानें और ऊपरी विंध्यन चट्टानें। निचली विंध्यन चट्टानें चूनेदार, मृणमय और सागरीय है जबकि ऊपरी विन्ध्यन चट्टानें नदीय और ज्वालामुखी है। ये चट्टानें अधिकतम प्रायद्वीपीय भारत में पायी जाती है। निचली विंध्यन चट्टानें मुख्य रूप से पाँच प्रायद्वीपीय क्षेत्रों में पाई जाती है, जहाँ इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। **सोन नदी की घाटी में सेमरी श्रेणी, आंध्र प्रदेश के दक्षिण पश्चिमी में करनूल श्रेणी, भीमा नदी की घाटी में भीमा श्रेणी, राजस्थान के जोधपुर** तथा **चित्तौड़गढ़ में पलनी श्रेणी** तथा **ऊपरी गोदावरी घाटी** तथा **नर्मदा घाटी के उत्तर में मालवा** व **बुंदेलखंड** में इन चट्टानों की विभिन्न श्रेणियाँ मिलती हैं। इन चट्टानों से सेलखड़ी, चूना-पत्थर तथा क्वार्ट्जाइट आदि प्राप्त होता है।
- ऊपरी विंध्यन चट्टानें नदियों की घाटी में होने वाली निक्षेप से बनी हैं। इन चट्टानों को **केमूर, रीवा** और **भाण्डेर श्रेणी** में उपविभजित किया जाता है। ये चट्टाने प्रायद्वीपीय भारत के साथ-साथ बाह्य प्रायद्वीपीय भागों में भी पाई जाती है। किंतु **इसमें जीवावशेष नहीं पाए जाते हैं**- ये मुख्य रूप से पाँच क्षेत्रों में पायी जाती है। **नर्मदा के उत्तरी भागों में, कटनी से इलाहाबाद** जाने वाले **मध्य रेलवे मार्ग, सोन नदी पर स्थित डेहरी-ऑन-सोन जाने वाले रेलमार्ग, प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में अरावली** एवं उसके निकटवर्ती भाग, **पीर पंजाल** एवं **धौलाधार श्रेणियाँ** और **शिमला** एवं **लाहौल स्पीति घाटी** के निकटवर्ती भाग में।
- विंध्यन चट्टानों से कई प्रकार के खनिज प्राप्त होते हैं, जैसे- चूना-पत्थर बलुआ पत्थर, चीनी मिट्टी, अग्नि- प्रतिरोधक मिट्टी, वर्ण मिट्टी, ताँबा, निकिल, कोबाल्ट, जास्पर, एस्बेस्टस, कोयला आदि इन चट्टानों से ही प्राप्त होते हैं। इन्हीं चट्टानों से पन्ना और गोलकुण्डा में हीरे भी मिलते हैं। विंध्यन प्रणाली की प्रमुख श्रेणिया निम्न हैं-

1. ***भांदर श्रेणी***- (विस्तार विंध्यन क्रम की पश्चिमी भाग)- इसमें बालू, पत्थर, शैल, चूना-पत्थर, अच्छे किस्म की भवन निर्माण चट्टानें, हीरे व बहुमूल्य रत्न प्राप्त होते हैं।
2. ***बिजवार श्रेणी***- (विस्तार मध्य प्रदेश के छतरपुर व पन्ना जिलों में)- यह श्रेणी बालू पत्थर, लाल बालू पत्थर व क्वार्टज से बनी है। इसमें जगह-जगह पर बेसाल्ट का अंतर्भेदन है जिनमें हीरे मिलते हैं।
3. ***केमूर श्रेणी***- (बुंदेलखण्ड व बघेलखण्ड)- इसमें बालू पत्थर व लाल बालू पत्थर की प्रचुरता है।

## *द्रविडियन समूह*

- द्रविडियन समूह की चट्टानें जीवाश्म युक्त हैं। इस समूह की चट्टानें प्राय: प्रायद्वीप के बाहरी भागों में पाई जाती हैं। द्रविड़ महाकल्प में प्रायद्वीप पठार समुद्र तल से ऊपर था। अत: इस शैल समूह की चट्टानें यहाँ नहीं पाई जातीं। सामान्यत: द्रविड़ शैल समूह की चट्टानें हिमालय (पीर पंजाल, स्पीति, कांगड़ा, शिमला, गढ़वाल व कुमाऊँ क्षेत्र में) में एक निरंतर क्रम में मिलती है। इस समूह की चट्टानों से कोयला, बलुआ पत्थर तथा रासायनिक उर्वरक इत्यादि प्राप्त होते हैं।

## *आर्यन समूह*

ऊपरी कार्बनी कल्प में द्रोणी के आकार के गर्तो का निर्माण हुआ। इसी काल में पर्वतीय व मैदानी भागों का निर्माण हुआ। इस समूह की चट्टानों का विवरण इस प्रकार है-

- ***गोण्डवाना क्रम की चट्टानें ( 350 मिलियन वर्ष पूर्व )***- विंध्यन क्रम की चट्टानों के निर्माण के काफी दीर्घ समय तक कोई विशेष विवर्तनिक हलचल नहीं हुई। किंतु जब ऊपरी कार्बनीफैरस काल में विश्व व्यापी **हर्सीनियन हलचल** हुई तब संकरी घाटियों में नदी द्वारा एकत्र पदार्थो से इन चट्टानों का निर्माण हुआ। प्रायद्वीपीय भारत और बाह्य प्रायद्वीपीय भारत में इनका विस्तार इस प्रकार है- प्रायद्वीपीय भारत में दामोदर नदी की घाटी में ये चट्टानें राजमहल पहाड़ियों तक विस्तृत हैं तथा ये महानदी की घाटी में महानदी श्रेणी, गोदावरी तथा वेनगंगा एवं वर्धा नदी की घाटियों में, नागपुर तक दक्कन के मुख्य पठारी भाग में, कच्छ काठियावाड़, पश्चिमी राजस्थान, चेन्नई, कटक, विजयवाड़ा, राजमुंदरी, तिरुचिरापल्ली और रामनाथपुरम् में मिलती है। इस प्रकार यह चट्टान मुख्य रूप से झारखण्ड और पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश एवं ओडिशा में पाई जाती है। कश्मीर, सिक्किम, दार्जिलिंग और असम में भी इस प्रकार की चट्टानें पाई जाती हैं। भारत के अलावा इसके निकटवर्ती देशों में भी ये चट्टानें मिलती हैं, यथा- नेपाल, पाकिस्तान, भूटान, अफगानिस्तान आदि।
- गोण्डवाना क्रम की चट्टानों को क्षैतिज रूप से निचली गोडवाना एवं ऊपरी गोण्डवाना में वर्गीकृत किया गया है। निचली गोण्डवाना क्रम में **तालचेर उपक्रम, दामूदा उपक्रम** तथा **पंचेत उपक्रम** उल्लेखनीय है जिनका क्रमश: विस्तार ओडिशा के देकानल जनपद, पं. बंगाल के दामूदा क्षेत्र एवं झारखण्ड की पंचेत पहाड़ी क्षेत्र में है। दामूदा क्षेत्र में देश का प्राचीनतम कोयला खनन केन्द्र **रानीगंज** अवस्थित है।

### *गोण्डवाना चट्टानों का आर्थिक महत्त्व*

आर्थिक महत्त्व की दृष्टि से ये चट्टानें काफी उपयोगी हैं। गोण्डवाना चट्टान से प्राप्त बलुआ पत्थर इमारतों के निर्माण के काम आता है। इसके अलावा चीका मिट्टी, लिग्नाइट कोयला, सीमेंट और रासायनिक उर्वरक आदि कई बहुमूल्य खनिज पदार्थ इण्न चट्टानों से प्राप्त होते हैं।

- ***दक्कन ट्रैप ( 100 मिलियन वर्ष पूर्व )***- मीसोजोइक युग के अंतिम काल में प्रायद्वीपीय भारत में ज्वालामुखी विस्फोट हुआ था, जिसके उद्‌गार से लावा उत्पन्न हुआ तथा इसने दक्कन के पठार की आकृति को जन्म दिया। यह प्रायद्वीप भारत में 5 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र तक फैला हुआ है।
- दक्कन ट्रैप्स की चट्टानें काफी सख्त हैं किंतु दीर्घकाल से इनका कटाव होता रहा है तथा इस अपरदित चूर्ण से काली मिट्टी का निर्माण हुआ। इस मिट्टी को **'रेगुर'** अथवा कपासी मिट्टी भी कहते हैं। इसी ट्रेप से लेटेराइट मिट्टी का निर्माण हुआ है, जिसे बनाने में मानसूनी जलवायु का योगदान है। इसमें **लोहा, मैंगनीज** और **एल्यूमिना** आदि के अंश मिलते हैं। खनिजीय विशेषताओं के साथ-साथ दक्कन ट्रेप में रासायनिक विशेषताओं में भी एकरूपता पाई जाती है। इनमें **सिलिका की मात्रा 50 प्रतिशत** होती है तथा **लोहा, केल्शियम** और **मैग्नीशियम** भी काफी मात्रा में मिले होते हैं।
- दक्कन ट्रेप का विस्तार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हैं, परंतु मुख्य रूप से यह महाराष्ट्र के अधिकांश भागों को घेरती है। इसके अतिरिक्त यह गुजरात, मध्य भारत, बिहार तथा तमिलनाडु के कुछ भागों में भी फैली हुई है। इसकी अधिकतम मोटाई (लगभग 3000 मीटर) मुंबई तट के सहारे मिलती है जहाँ से पूरब व दक्षिण दिशाओं में यह मोटाई घटती जाती है।
- दक्कन ट्रेप की चट्टानें उत्तम किस्म के पत्थर प्रदान करती है, जिसे भवन व सड़क निर्माण के कार्य में प्रयुक्त किया जाता है। महाराष्ट्र के समीप कुछ हल्के रंग की ट्रेचिरिक चट्टानें मिलती है, जिनमें पाइराइट और केलसारॉइट का कुछ अंश प्राप्त होता है। खंभात और रत्नगिरि से माणिक, अगेट आदि रत्न प्राप्त होते हैं। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और बिहार में बॉक्साइट के जमाव भी मिलते हैं, जिसका उपयोग एल्युमिनियम अयस्क के रूप में और पेट्रोल शोधन के लिए किया जाता है।
- ***टर्शियरी समूह***- इस समूह की चट्टानों का निर्माण काल इयोसीन युग से लेकर प्लायोसीन युग तक माना जाता है। भारत के लिए इस युग का महत्त्व इसलिए भी अधिक है, क्योंकि इस समय भारत ने अपने वर्तमान रूप को धारण किया था। इसके अलावा टर्शियरी महाकल्प ने भारत को दो भौतिक प्रदेश भी प्रदान किए- प्रायद्वीपीय पठार तथा हिमालय पर्वत। इस महाकल्प ने भारत की चट्टानों और वनस्पतियों में भी काफी परिवर्तन किए।
- टर्शियरी चट्टानें मुख्य रूप से भारत के बाह्य प्रायद्वीपीय भाग में पाई जाती हैं। भारत के अतिरिक्त यह पाकिस्तान में बलूचिस्तान के मकरान तट से लेकर सुलेमान किरथर श्रेणी तक, हिमालय पर्वत श्रेणी से होती हुई बर्मा के अराकान योमा पर्वत श्रेणी तक फैली है। प्रायद्वीपीय भारत में इनका विस्तार केवल तटीय क्षेत्रों में ही है। टर्शियरी कल्प की चट्टानों को क्रमश: तीन भागों में बाँटा जा सकता है- इयोसीन क्रम की चट्टानें, ओलिगोसीन एवं निम्नवर्ती मायोसीन क्रम की चट्टानें तथा मायो-प्लायोसीन क्रम की चट्टानें। टर्शियरी कल्प की इन सभी चट्टानों से विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ मिलते हैं। बलुआ पत्थर, चीका, लाल व पीला गेरू आदि इन चट्टानों से प्राप्त होते हैं। इयोसीन क्रम की चट्टानों के मध्यवर्ती भागों में पेट्रोलियम भंडार भी पाए जाते हैं।
- ***क्वार्टरनरी समूह***- इस समूह की चट्टानों को दो भागों में वर्गीकृत किया गया है- **प्लीस्टोसीन क्रम** की चट्टानें तथा **वर्तमान क्रम की चट्टानें**।
- ***प्लीस्टोसीन क्रम की चट्टानें***- इस काल में पृथ्वी के कुछ हिस्सों में हिमनदों का विस्तार हुआ था जिससे तापमान में स्वाभाविक गिरावट आई व इसका पशु जीवन व वनस्पति पर प्रभाव पड़ा। इस दौरान हिमालय पर हिमानियों का विस्तार काफी निचले स्तर तक हो गया था। इन हिमानियों से कुछ क्षेत्रों में जल प्रवाहित होने से झीलों का निर्माण हुआ।
- **कश्मीर घाटी** का निर्माण **प्लीस्टोसीन काल** में हुआ था। कश्मीर घाटी में

**करेवा** नामक एक विशाल सरोवर था। करेवा चट्टानों का फैलाव लगभग 7,500 वर्ग किमी. तक है। यह चट्टानें मुख्यतया अनुप्रस्थ दशा में फैलती हैं। ऊपरी परतें, निचली परतों की अपेक्षा अधिक मोटी है। इन चट्टानों में लिग्नाइट कोयले के भण्डार मिलते हैं। यह चट्टानें कश्मीर घाटी के दक्षिणी किनारे पर पीर पंजाल पर्वतों के रूप में मुड़ गई हैं। इन साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि इन पर्वतों का निर्माण कश्मीर घाटी के अवसाद जमा होने के बाद ही हुआ है। इन अवसादों के विषय में यह माना जाता है कि एक बड़ी झील में इनका जमाव हुआ। यह झील उत्तर में हिमालय श्रेणी और दक्षिण में फैली किसी श्रेणी के बीच स्थित थी, जो श्रेणी बाद में पीर पंजाल पर्वत श्रेणी बनी। ओडिशा तट पर चिल्का झील का निर्माण महानदी द्वारा बहाकर लाये गये अवसादों के निक्षेप से ही हुआ है। गुजरात स्थित कच्छ का रन एक ऐसा प्रदेश है, जो प्लीस्टोसीन काल में समुद्र का भाग था, परंतु अब यह प्लीस्टोसीन तथा आधुनिक काल के अवसादों से भर चुका है। पश्चिमी राजस्थान स्थित थार मरुस्थल से भी प्लीस्टोसीन काल के जमाव के प्रमाण मिलते हैं।

- **करेवा चट्टानें नदीय और सरोवरीय प्रकार की चट्टानें हैं।** निचले करेवा चट्टानों से चीड़, ओक, बीच, हांली, दालचीनी आदि के अवशेष पाये जाते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि उस समय की जलवायु शीतोष्ण थी। खाद्य पदार्थ और पेड़ पौधों के अतिरिक्त जीव जंतुओं का भी अस्तित्व मिलता है, यथा- मछलियाँ, सीप तथा अन्य स्तनपायी जीव। पामपोर और पुलवामा की करेवा जाफरान, बादाम व अखरोट की खेती के लिये प्रसिद्ध है। प्रायद्वीप के तटीय भागों में बालू मिलता है, जिसमें उत्तरार्द्ध प्लीस्टोसीन और आधुनिक काल के मोलस्क सीप पाये जाते हैं। ऐसे जमाव मुख्य रूप से ओडिशा, तमिलनाडु और गुजरात में ही मिलते हैं।
- ***वर्तमान क्रम की चट्टानें***- इस क्रम की चट्टानों की निर्माण प्रक्रिया आज भी जारी है। वर्तमान में तटीय बालूका स्तूप, नदियों के मुहानों का निर्माण आदि कई प्रक्रियाएँ कार्यशील हैं। ताप्ती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, महानदी और पेरियार नदियों ने अपने-अपने मुहानों पर कांप का विशाल निक्षेप एकत्रित कर लिया है और बंगाल की खाड़ी के तटीय भागों पर बालुका स्तूप का जमाव हो गया है। ऐसी और कई प्रक्रियाएँ जारी हैं।
- सारांशत: कहा जा सकता है कि भारत का प्रायद्वीप भाग प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक की विभिन्न चट्टानों से भरा पड़ा है। यहाँ पर कई ऐसी चट्टानें भी मौजूद हैं जो अपना मूल रूप बदल चुकी हैं अर्थात् वह इतनी प्राचीन हो गयी हैं कि उनका वास्तविक रूप ही परिवर्तित हो गया है।

## *चट्टानों का संरचनात्मक वर्गीकरण*

- संरचना के आधार पर चट्टानों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है- आग्नेय चट्टान, अवसादी चट्टान एवं रूपांतरित चट्टान।
- ***आग्नेय चट्टानें***- इन्हें प्राथमिक चट्टान भी कहते हैं क्योंकि अन्य प्रकार की चट्टानों का निर्माण इन्हीं से हुआ है। सभी चट्टानों का मूल पदार्थ एक समय गर्म व चिपचिपी अवस्था में था, जिसे मैग्मा कहते हैं। यह भू-गर्भीय भांप 60 से 100 किमी. की गहराई से दरारों से होता हुआ प्राय: धरातल की ओर बढ़ता है। यह या तो अंदर ही अंदर या धरातल के ऊपर पहुँचकर ठोस बनता है। जब मैग्मा कठोर रूप धारण करता है तो उसे आग्नेय चट्टान कहते हैं। आग्नेय चट्टानें कठोर, रवेदार, परतहीन तथा जीवाश्म रहित होती हैं। पानी का प्रवेश कम होने से इनमें रासायनिक अपक्षय की क्रिया बहुत ही कम होती है। इन चट्टानों में संधियाँ पायी जाती हैं। इनका वितरण ज्वालामुखी क्षेत्रों में अधिक होता है।
- ***अवसादी चट्टानें***- अपरदन के कारण जब चट्टानें टूटकर टुकड़ों में बिखर जाती हैं और फिर छोटे कणों में बदल जाती हैं तो अवसादी चट्टानों का निर्माण होता है। बालू, मिट्टी, बजरी तथा रोड़ी अवसाद के ही रूप हैं। पौधों और जानवरों के अवशेषों से उत्पन्न जैव- पदार्थ भी अवसादी चट्टानों का निर्माण करते हैं। भू पृष्ठ के 75 प्रतिशत भाग विस्तृत अवसादी चट्टानें परतदार, संधियुक्त तथा जीवावशेषों से परिपूर्ण होती है। ये संगठित, असंगठित या ढीली किसी भी प्रकार की हो सकती है। इनमें अपरदन का प्रभाव शीघ्र होता है।
- ***रूपांतरित चट्टानें***- जब अधिक दाब व ताप से चट्टानों के मूल लक्षण में आंशिक अथवा पूर्ण परिवर्तन होता है तो उन्हें रूपांतरित चट्टानें कहते हैं। इस प्रकार की चट्टानों का निर्माण भी प्राय: उन्हीं परिस्थितियों में होता है जिनमें आग्नेय चट्टानों का निर्माण होता है। इनमें ग्रेनाइट से नीस, चूना-पत्थर से संगमरमर तथा गेब्रो से सरपेन्टाइन का निर्माण होता है। इन चट्टानों में खनिज लगभग समानांतर परतों में व्यवस्थित होते हैं।

## *भूकंप (Earthquake)*

पृथ्वी के धरातल के नीचे किसी आकस्मिक हलचल के होने पर भू पर्पटी में कंपन उत्पन्न होता है। इस प्रक्रिया में चट्टानों के टूटने पर टूटने वाले स्थान के समीप वाले कणों में गति उत्पन्न हो जाती है। एक चट्टानी खंड जब दूसरे खंड की अपेक्षा गतिशील होता है तो दोनों के पारस्परिक घर्षण से उनमें कंपन उत्पन्न होता है तथा इस प्रकार के कुछ कंपन धरातल तक पहुँच जाते हैं, जो भूकंप कहलाते हैं।

## *भारत में भूकंप*

भारत वैश्विक भूकंप पेटी के ठीक ऊपर स्थित है, जो पूर्व-पश्चिम दिशा में फैली है। यह **'अल्पाइन हिमालय पेटी'** कहलाती है। मुख्य भूकंप क्षेत्र मुख्य सीमा भ्रंश के साथ फैला हुआ है, जो पश्चिम में हिंदुकुश पर्वत से पूर्व में सादिया तक जाता है तथा अंडमान-निकोबार द्वीप समूह से दक्षिण दिशा में मुड़कर इंडोनेशिया द्वीप समूह तक पहुँचती है। इस क्षेत्र की उच्चस्तरीय भूकंपनीयता का कारण इस पेटी का उस रेखा के साथ-साथ चलना है, जहाँ भारतीय प्लेट (पुरातन गोंडवानालैण्ड) यूरेशियन प्लेट से मिलती है।

- अभिसारी कोर होने के कारण भारतीय प्लेट **5 सेमी. प्रति वर्ष** की गति से यूरेशियन प्लेट के नीचे क्षेपित हो रही है। यह संचलन एक तीव्र दबाव को जन्म देता है, जो चट्टानों में संचित होता रहता है तथा समय-समय पर भूकंपों के रूप में बाहर आता है। इन भूकंपीय झटकों से अत्यधिक ऊर्जा विमुक्त होने के कारण भूकंपों से जन-धन की अत्यधिक हानि होती है।

## *प्रायद्वीपीय क्षेत्र में भूकंप*

भू-वैज्ञानिकों का मानना था कि प्रायद्वीपीय क्षेत्र में भूकंप की आशंका कम होती है किंतु 1993 में महाराष्ट्र के लातूर व उस्मानाबाद में आये भूकंप ने यह धारणा समाप्त कर दी। हालाँकि इस क्षेत्र में पहले भी कई भूकंप आ चुके थे जैसे- महाबलेश्वर, बेल्लारी, सतपुड़ा, रत्नगिरि एवं कोयना आदि किंतु लातूर भूकंप का अधिकेंद्र उस क्षेत्र में स्थित था, जिसे भू-वैज्ञानिकों द्वारा भूकंप की न्यूनतम संभावना वाला बताया गया था। इस भूकंप ने यह दर्शा दिया कि कन्याकुमारी से लेकर हिमालयी गिरिपादों तक फैला भारतीय भूखंड भूकंपीय गतिविधियों से सुरक्षित नहीं है।

- लातूर भूकंप के संबंध में व्याख्याओं में सबसे अधिक संभावित व्याख्या यह है कि दो प्लेटों के टकराव से उत्पन्न तीव्र दबाव के फलस्वरूप प्रायद्वीप कई स्थानों पर ऊपर की ओर वलित हो चुका है तथा प्राचीन भ्रंश, जो देश के उप भूतल स्तर पर आड़े-तिरछे व्याप्त हो चुके थे, अचानक पुन: सक्रिय हो गये हैं। लातूर भूकंप ऐसे ही किसी भ्रंश के पुन: सक्रिय होने का परिणाम था।

- यदि प्राचीन भ्रंश सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाए तो अभी तक सुरक्षित माने जाने वाले कई क्षेत्र उच्च जोखिम श्रेणी में शामिल हो जायेंगे। दक्कन ट्रेप (मुम्बई सहित) वर्तमान में प्रमुख भूकंप संभावित क्षेत्र (जोखिम) है। गोदावरी पेटी एवं बेल्लारी-मालाबार भ्रंश पुनः सक्रिय होकर कई दक्षिणी शहरों को जोखिम क्षेत्र की श्रेणी में ला सकते हैं। विंध्य श्रेणियों में स्थित नर्मदा-सोन भ्रंश जो उपमहाद्वीप को ठीक मध्य से विभाजित करता है, भूतकाल में कई भूकंपीय झटकों का साक्षी रहा है। उत्तर में दिल्ली भी दिल्ली-हरिद्वार भ्रंश के एक छोर पर स्थित है। यहाँ तक कि कोलकाता भी उच्च जोखिम वाले क्षेत्रों की श्रेणी में आता है। विभिन्न अध्ययन दर्शाते हैं कि प्रत्येक 200 से 300 वर्षों के अंतराल पर हिमालय क्षेत्र में रिक्टर पैमाने पर आठ या उससे अधिक तीव्रता वाले भूकंप आते हैं। भारत में पिछले 50 वर्षों में ऐसे चार भूकंप आ चुके हैं, जिनके द्वारा प्लेट सीमांतों पर निर्मित होने वाला तनाव विमुक्त हुआ है। किंतु कश्मीर, गढ़वाल एवं नागालैण्ड में 250 किमी. लंबे ऐसे तीन अंतराल मौजूद हैं, जहाँ पिछले 200 वर्षों में एक भी बड़ा भूकंप नहीं आया है। अतः भूवैज्ञानिक का मानना है कि आगामी भविष्य में इन क्षेत्रों में प्रचंड भूकंप आने की संभावना बन सकती है।

## *भारत के भूकंप संभावित क्षेत्र*

भू-गर्भिक तथा भू-भौतिक मापदण्डों व भूकंप विज्ञान से संबद्ध आँकड़ों के अध्ययन के आधार पर भारत को पाँच भूकंप संभावित क्षेत्रों में विभाजित किया गया। किंतु वर्ष 2003 में भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा क्षेत्र I व II को मिलाकर एक कर दिया तथा शेष भागों को यथावत् रखा गया। इस तरह अब ये क्षेत्र हैं- II, III, IV तथा V।

- क्षेत्र I और II में भूकंप की सामान्य तरंगें उठती है। प्रायद्वीपीय क्षेत्र को कम भूकंप की आशंका वाला क्षेत्र माना गया है।
- क्षेत्र III के अंतर्गत केरल, गोवा, लक्षद्वीप, उत्तर प्रदेश का कुछ भाग, पश्चिम बंगाल, राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, ओडिशा, आंध्र प्रदेश एवं कर्नाटक को शामिल कर चिन्हित किया गया है। इन राज्यों में मध्यस्तरीय भूकंप की तीव्रता आंकी गयी है।
- क्षेत्र IV के अंतर्गत दिल्ली, सिक्किम, जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, बिहार का कुछ भाग, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल का उत्तरी हिस्सा, महाराष्ट्र का तटीय भाग तथा गुजरात का कुछ हिस्सा आता है। यह द्वितीय स्तर की भूकंपीय तीव्रता वाला क्षेत्र है।
- क्षेत्र V में भूकंपों की सर्वाधिक आशंका रहती है। पूर्वोत्तर भारत के साथ-साथ जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, कच्छ का रन, उत्तरी बिहार, अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह इस क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं।

## *ज्वालामुखी (Volcano)*

ज्वालामुखी भूपर्पटी में स्थित एक छिद्र या दरार है, जिसके माध्यम से पृथ्वी के आंतरिक भागों में विद्यमान चट्टानी पदार्थ, गर्म जल वाष्प, धूल तथा गैसों का पृथ्वी की सतह पर उद्गार होता है। इसे परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि भूगर्भ से किसी नली अथवा निकास से बाहर निकलने वाला पिघला हुआ पदार्थ निकास के चारों ओर एक टीले के रूप में संचित हो जाता है तो इसे ज्वालामुखी कहते हैं।

### *भारत में ज्वालामुखी*

भारत में लगभग एक अरब वर्ष पूर्व आर्कियन युग के धारवाड़ काल में दक्षिणी पठार पर प्रथम ज्वालामुखी उद्गार हुआ था, जिसका मुख्य केंद्र **झारखंड में डालमा श्रेणी** था। दूसरा उद्गार कुड़प्पा काल में आंध्र प्रदेश के कुड़प्पा जिले तथा मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले में हुआ। इन उद्गारों के फलस्वरूप भूगर्भ से निकला लावा पदार्थ एक विस्तृत क्षेत्र में फैल गया।

- विंध्यन काल में हुए तीसरे उद्गार का मुख्य केंद्र **मालानी (जोधपुर)** था।

प्रारंभिक जीव युग के ज्वालामुखी उद्‌गार अधिकतर कुमाऊँ क्षेत्र में हुए हैं। ऊपरी कार्बन युग में पीर पंजाल तथा लद्दाख क्षेत्र में ज्वालामुखी उद्‌गार सम्पन्न हुए। लगभग डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व मध्य जीव युग में ज्वालामुखी उद्‌गार राजमहल पहाड़ियों में हुए। यहाँ लावा का जमाव 3220 मीटर की गहराई तक पाया जाता है।

- मध्य जीव युग के अंत तथा तृतीयक युग के आरंभ में दक्षिण के पठार पर भीषण ज्वालामुखी उद्‌गार हुए। 3000 मीटर की गहराई तक जमे लावा का विस्तार दक्कन पठार के रूप में 5 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में पाया जाता है। यह लावा प्रदेश उपजाऊ काली मिट्टी की प्रचुरता के लिए प्रसिद्ध है।
- वर्तमान समय में भारत में जाग्रत ज्वालामुखियों का अभाव है। बंगाल की खाड़ी में स्थित बैरन द्वीप इसका एकमात्र अपवाद माना जा सकता है। इसका मुख समुद्र के तल से 310 मीटर ऊँचा है तथा इसका शंकु गोलाकार रूप में 7 वर्ग किमी. क्षेत्र में विस्तृत है। यह गंधकीय प्रकार का ज्वालामुखी है। बंगाल की खाड़ी में ही नारकोण्डम ज्वालामुखी एक प्रसुप्त ज्वालामुखी है।

### *भारत के प्रमुख ज्वालामुखी*

| | | |
|---|---|---|
| • बैरन द्वीप | – | अंडमान द्वीप |
| • नारकोंडम द्वीप | – | अंडमान द्वीप |
| • बारांतग | – | अंडमान द्वीप |
| • दक्कन ट्रैप | – | महाराष्ट्र |
| • धिनोधर पहाड़ी | – | गुजरात |
| • धोसी पहाड़ी | – | हरियाणा व उत्तरी राजस्थान सीमा पर |

## *भूस्खलन (Landslide)*

जब आधार शैल या आवरण प्रस्तर तीव्रता से खिसकते हैं तब भूस्खलन होता है। भूस्खलन का परिणाम पर्वत के ढाल की तीव्रता, वनस्पति आवरण की मात्रा, चट्टानों के वलन एवं भ्रंशन इत्यादि पर निर्भर करता है।

### *भारत में भूस्खलन*

भारत के हिमालय क्षेत्र, पश्चिमी घाट तथा नदी घाटियों में भूस्खलन होने की आशंका अधिक होती है। हिमालयी क्षेत्र में मानसून के महीनों विशेषत: जून से अक्टूबर के दौरान भूस्खलन होना सामान्य प्राकृतिक घटना है। तीव्र वर्षा अथवा हिमपात के दौरान यह भूस्खलन कभी-कभी भयावह रूप धारण कर लेता है।

- जनसंख्या का दबाव तथा आर्थिक लाभ हेतु पर्वतों का आर्थिक दोहन भूस्खलन का प्रमुख कारण है। जंगल की भूमि का उपयोग सेब इत्यादि के बाग-बगीचे हेतु करना, पर्वतों पर अत्यधिक सड़क निर्माण कार्य तथा भारी मात्रा में पशुओं को चराना भी भूस्खलन को आमंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त भारी मात्रा में वृक्षों को काटना तथा स्थानांतरी कृषि पद्धति भी भूस्खलन का कारण बनी है। भूस्खलन में जो मलबा निकलता है उससे भारी मात्रा में वनस्पतियाँ नष्ट हो जाती हैं तथा नदियों के मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं तथा कभी-कभी तो प्रभावित क्षेत्र-विशेष का संचार-तंत्र ही ध्वस्त हो जाता है तथा क्षेत्र का संपर्क बाहरी दुनिया से कट जाता है।
- भूस्खलन प्राकृतिक क्रिया है किंतु मानव द्वारा आर्थिक विकास की उच्च महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु जब संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया जाता है तो भी भूस्खलन होता है। भूस्खलन की प्रक्रिया में मृदा का अपरदन होता है तथा ढाल अस्थिर हो जाते हैं।

### *प्रभाव*

यद्यपि भूस्खलन एक प्राकृतिक आपदा है किंतु वृक्षों एवं घास की जड़ों के जमने में बाधक मलबे से छुटकारा पाने का तरीका भू-स्खलन ही है। प्राय: भू-स्खलनों द्वारा गिराए गए मलबे से नदियों के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। कई बार तो इनसे अस्थायी बाँध भी बन जाते हैं।

# भारत के भौतिक प्रभाग
# (Physical Divisions of India)

## परिचय (Introduction)

भौगोलिक विशेषताओं की दृष्टि से भारत एक अति विविधता पूर्ण देश है। ऊँची-ऊँची पर्वत श्रृंखलाएँ, विशाल मैदान व पठार, मरुस्थल, विस्तृत तटीय प्रदेश एवं द्वीपीय भू-भाग सभी प्रकार की भू-आकृतिक इकाइयाँ यहाँ विद्यमान हैं। देश की भू-आकृतिक इकाइयों का मुख्य रूप से पाँच भागों में वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है-

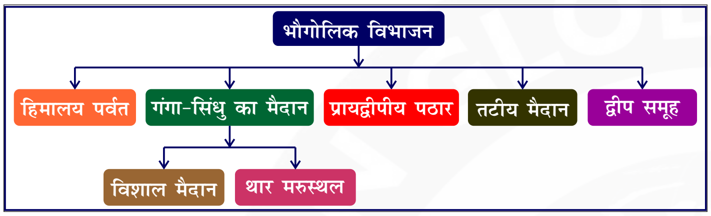


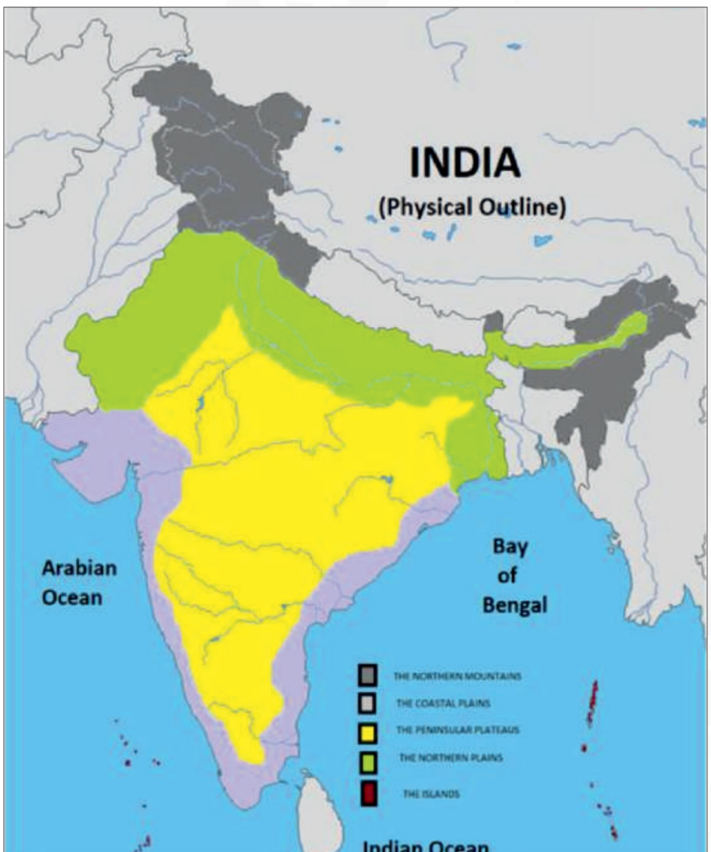


भारत का भौगोलिक विभाजन

## हिमालय पर्वतीय क्षेत्र

### स्थिति एवं विस्तार

संपूर्ण उत्तर पर्वतीय प्रदेश पश्चिम में पाकिस्तान के मकरान तट पर ग्वादर से

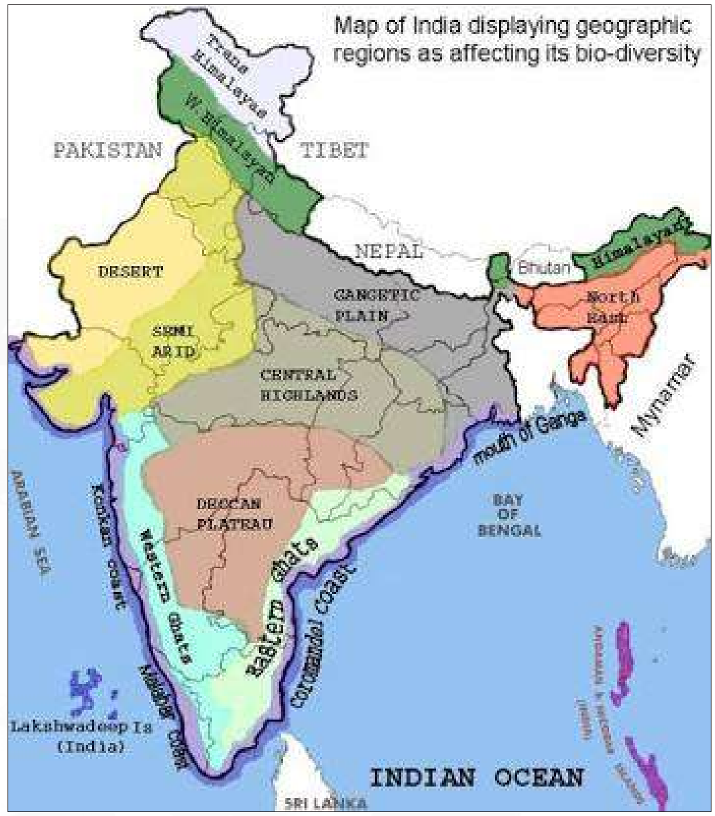


आरंभ होकर पूर्व में मिजो पहाड़ियाँ तक लगभग 5,000 किमी. की लम्बाई में फैला है। इसमें से पश्चिम में बलूचिस्तान और ट्रांस सिंधु क्षेत्र से नंगा पर्वत के मोड़ तक यह लंबाई 1,500 किमी. है। पूर्व में नामचा बरवा से मिजो पहाड़ियों तक यह लंबाई 1,000 किमी. है। मुख्य हिमालय पर्वत श्रेणी भारत की उत्तरी सीमा में पश्चिम से पूर्व की ओर 2,400 किमी. की लम्बाई में एक वृहत् चाप के आकार में फैली हैं। ये देश को उत्तर-पश्चिम, उत्तर और उत्तर-पूर्व सभी ओर से घेरते हैं। इनकी चौड़ाई 150 से 400 किमी. तथा औसत ऊँचाई 6,000 मीटर है। किंतु पूर्वी भाग में यह औसतन 1,500 मीटर और मध्यवर्ती भाग में औसतन 8,000 मीटर ऊँचे हैं। ये लगभग 5 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में फैले हैं। ये पर्वत एक विशाल पर्वत प्रणाली पामीर की गाँठ, के भाग हैं जो मध्य एशिया से मध्य यूरोप तक फैले हैं। हिमालय पर्वत प्रणाली के पश्चिमी भाग में इसकी तीन श्रेणियाँ फैली हुई है। **लद्दाख-जास्कर श्रेणी**, **शिवालिक श्रेणी** और **पीरपंजाल श्रेणी**।

- पूर्वी भाग में हिमालय श्रेणी और सबसे उत्तर में **काराकोरम श्रेणी** है, जो चीन तक चली गयी है। इन सभी पर्वतों ने भारत को शेष एशिया से पृथक कर दिया है। राजनीतिक दृष्टि से यह पर्वतीय प्रदेश सात देशों की सीमाओं को स्पर्श करता है– पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तजाकिस्तान, चीन, भारत, नेपाल और म्यांमार।

## हिमालय पर्वत एवं प्रमुख श्रेणियाँ

### हिमालय-उत्पत्ति तथा विकास

- आज से करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर महाद्वीपों और महासागरों का विभाजन

सर्वथा भिन्न था। हिमालय पर्वत और उसके पूर्व में स्थित बर्मा (वर्तमान में म्यांमार) के पर्वत तथा पश्चिम की ओर हिंदूकुश से लेकर यूरोप में फैली आल्प्स व कारपेथियन पर्वत श्रेणियों तक एक विशाल महासागर था, जिसे **टेथिस सागर** कहा जाता था। इस सागर के उत्तर व दक्षिण दोनों तरफ महाद्वीपों का विस्तार था और जिसमें इसके उत्तर में स्थित महाद्वीप को **अंगारा भूमि** तथा दक्षिण में स्थित महाद्वीप को **गोण्डवाना भूमि** कहते थे, जिसके अवशेष वर्तमान में दक्षिण अमेरिका के पूर्वी भाग, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और प्रायद्वीपीय भारत में विद्यमान हैं। कालांतर में भू-गर्भिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होकर टेथिस सागर ने ऊपर की ओर उठना शुरू कर दिया और जल गोंडवाना भूमि के निचले क्षेत्रों में जाकर फैल गया, जिससे गोण्डवाना महाद्वीप विखण्डित हो गया और हिंद महसागर की उत्पत्ति हुई। धीरे-धीरे भूगर्भिक प्रक्रियाओं ने टेथिस सागर को और भी ऊपर उठाया और हिमालय की सृष्टि हुई। विशाल हिमालय के निर्माण की प्रक्रिया एक लम्बी अवधि में घटित हुई।

### हिमालय निर्माण के चरण

***प्रथम चरण***- आज से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व हिमालय निर्माण का प्रथम सोपान सम्पन्न हुआ था। उस समय मुख्य हिमालय की उत्पत्ति हुई थी। जैसाकि ऊपर वर्णित है, इसी समय गोण्डवाना महाद्वीप भी विखण्डित हो गया था। इस विखण्डन के फलस्वरूप भारत, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका तथा ऑस्ट्रेलिया का निर्माण हुआ और इसके मध्य विखंडन करने वाला तल ध्वंस होकर जलमग्न हो गया और वहाँ हिन्द महासागर का निर्माण हुआ।

***द्वितीय चरण***- हिमालय निर्माण का द्वितीय चरण आज से लगभग 3 करोड़ वर्ष पूर्व संपन्न हुआ। हिमालय की प्रमुख श्रेणी के निर्माण के बाद इस श्रेणी का जल, नदियों के रूप में प्रवाहित होने लगा। ये नदियाँ मुख्य श्रेणी के दक्षिण में व्याप्त टेथिस सागर के अवशिष्ट भाग में मिट्टियाँ जमा करने लगी। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप समुद्री जल-जीवों का काफी विकास हुआ। इन जल जीवों के अवशेष भी मिट्टी के भीतर दबते रहे, जिनका परिवर्तित रूप हमें ईंधन के रूप में प्राप्त है। इस प्रकार की समुद्र निर्मित चट्टानें आज से लगभग 3 करोड़ वर्ष पूर्व ऊपर की ओर उठने लगीं जिससे मध्य हिमालय का निर्माण हुआ।

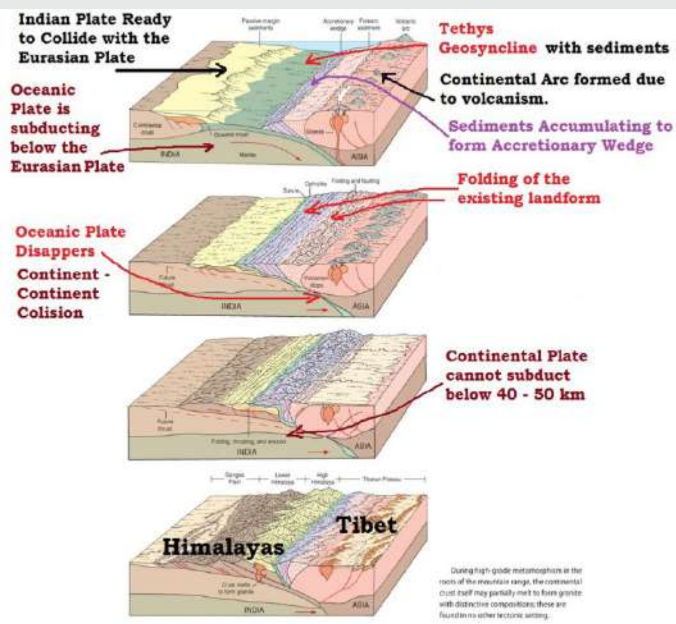


***तृतीय चरण***- इसका तृतीय चरण आज से लगभग 1.75 लाख वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ। इस चरण में भू-गर्भ में अत्यधिक हलचल होने के कारण भू-पृष्ठ में व्यापक परिवर्तन हुए। इसके परिणामस्वरूप प्रमुख व मध्य हिमालय के दक्षिण में उसके समानांतर विस्तृत इण्डो-ब्रह्म नदी का तल अपने भू-पृष्ठ से लगभग 1,500 मीटर ऊपर उठ गया तथा एक समानांतर पर्वत श्रेणी के रूप में परिवर्तित हो गया। इसी श्रेणी को शिवालिक पर्वत कहा जाता है।

पीर पंजाल पर्वत श्रेणी (कश्मीर में स्थित) के निर्माण की घटना भी लगभग इसी समय घटित हुई तथा कश्मीर की घाटी का भी निर्माण हुआ।

### *हिमालय का भौगोलिक विभाजन*

**उत्तर के पर्वतीय क्षेत्र को चार प्रमुख समानांतर पर्वत श्रेणी क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है-**

- ***ट्रांस हिमालय क्षेत्र***- इसके अंतर्गत काराकोरम, लद्दाख, जॉस्कर आदि पर्वत श्रेणियाँ आती हैं, जिनका निर्माण हिमालय से भी पहले हो चुका था। इनमें टेथिस सागर के अवसाद पाये जाते हैं तथा इसकी चट्टानों में जीवाश्म युक्त समुद्री अवसाद है, जिनमें नीचे तृतीयक युग के ग्रेनाइट मिलते हैं। ये मुख्यत: पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र में मिलतें हैं। K2 या गाडविन आस्टिन (8611 मीटर), काराकोरम श्रेणी की सर्वोच्च चोटी है जो कि भारत की सबसे ऊँची चोटी भी है। ट्रांस हिमालय वृहत हिमालय से **'इंडो-सांगपो शचर जोन ( Shuture Zone )'** के द्वारा अलग होती है।
- ***हिमाद्रि अर्थात सर्वोच्च या वृहद् हिमालय***- यह हिमालय की सबसे ऊँची श्रेणी है। इसकी औसत ऊँचाई 6000 मीटर है जबकि चौड़ाई 120 से 190 किमी. तक है। विश्व के प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण शिखर इसी में स्थित हैं। इनमें एवरेस्ट (8848 मीटर विश्व की सर्वोच्च चोटी), **नंगा पर्वत, नंदा देवी, कामेट व नामचाबरवा** आदि इसके कुछ महत्त्वपूर्ण शिखर हैं। वृहत् हिमालय लघु हिमालय से **मेन सेंट्रल थ्रस्ट (Main Central Thrust)** के द्वारा अलग होती है।
- ***हिमाचल श्रेणी अर्थात लघु या मध्य हिमालय***- इसकी औसत चौड़ाई 80 से 00 किमी. एवं सामान्य ऊँचाई 3700 से 4500 मीटर है। **पीरपंजाल, धौलाधार, मसूरी, नागटीबा** एवं **महाभारत श्रेणियाँ** इसी पर्वत श्रेणी का भाग है। वृहत व लघु हिमालय के मध्य **कश्मीर घाटी, लाहौल स्फीति, कुल्लु व कांगड़ा घाटियाँ** मिलती हैं। यहाँ अल्पाईन चारागाह भी है, जिन्हें कश्मीर घाटी में **मर्ग ( गुलमर्ग, सोनमर्ग )** तथा उत्तराखंड में **वुग्याल** या **पयार** कहा जाता है। लघु हिमालय अपने स्वास्थ्यवर्द्धक पर्यटक स्थलों के लिए विख्यात है। उदाहरण के लिए **शिमला, कुल्लू, मनाली, मसूरी, दार्जिलिंग** आदि को लिया जा सकता है। लघु हिमालय शिवालिक से **मेन बाउंड्री फाल्ट (Main Boundary Foult)** के द्वारा अलग होती है।
- ***शिवालिक अर्थात निम्न या बाह्य हिमालय***- यह 10 से 50 किमी. चौड़ा और 900-1200 मीटर ऊँचा है। अन्य दो श्रेणियों के विपरीत यह खंडित रूप से मिलता है। ये हिमालय के नवीनतम भाग हैं। शिवालिक और लघु हिमालय के बीच कई घाटियाँ हैं जैसे- **काठमांडू घाटी**। पश्चिम में इन्हें **दून** या **द्वार** कहते हैं जैसे देहरादून, हरिद्वार। खेती की अच्छी संभावना होने के कारण इन घाटियों में लोगों का अच्छा बसाव है। शिवालिक के निचले भाग को तराई कहते हैं। यह दलदली और वनाच्छादित प्रदेश है। तराई से सटे दक्षिणी भाग में वृहद् सीमावर्ती भ्रंश (Great Boundary Fault) मिलता है जो कश्मीर से असम तक विस्तृत है।

### *हिमालय का अनुदैर्ध्य विभाजन*

**प्रो. एस. पी. चटर्जी ने हिमालय में 1973 में अनुप्रस्थ भागों में विभाजित किया था जो कि निम्न हैं-**

- ***कश्मीर हिमालय***- जम्मू व कश्मीर तथा लद्दाख में विस्तारित इस हिमालय की औसत ऊँचाई 3000 मीटर है तथा भारत के सर्वाधिक हिमनद इसी में विद्यमान है। इसी में लद्दाख शीत मरुस्थल, कश्मीर घाटी (समुद्र तल से 1585 मीटर ऊँचाई पर स्थित) विद्यमान है। इसमें करेवा निक्षेप (गाद बालू,

चिकनी मिट्टी का मिश्रण) पाये जाते हैं जो सेब, बादाम, अखरोट, जरदालू व फलोद्यान हेतु प्रसिद्ध है। पीर पंजाल, जोजीला, बुर्जिल, खारदुंग्ला, पेसीला, सासेर ला, लानक ला, जारा ला, तास्का ला, चांग ला, उमासी ला तथा कारा ताघ ला (काराकोरम) इसके प्रमुख दर्रे हैं।

- ***हिमाचल हिमालय***- इसमें हिमालय की तीनों ही श्रेणियों का स्पष्ट प्रतिनिधित्व दिखता है। रोहतांग, बारा-लाप्चा तथा शिपकीला इसके महत्त्वपूर्ण दर्रे हैं। इसमें कांगड़ा, कुल्लु, मनाली, लाहौल व स्फिति जैसी घाटियाँ तथा शिमला, डलहौजी, धर्मशाला, चंबा व कुल्लु-मनाली जैसे शहर पाये जाते हैं।
- ***कुमाऊँ हिमालय***- यह हिमालय सतलज से काली नदियों के मध्य 320 किमी. में विस्तृत है। इसमें नंदा देवी, कामेत, त्रिशूल, बद्रीनाथ, दूनगिरी, केदारनाथ, जावनली, गंगोत्री व बंदरपूंछ जैसे शिखर तथा गंगोत्री, मिलाप व पिण्डार जैसे हिमनद पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें थांग ला, मुलिंग ला, माना, नीति, टुन-जुन ला, शालसल ला, बालचा धुरा, कुंगरीगबिंगरी पास, लामापिया धुरा, मांगशा धुरा, माढ़ी-ला और लिपुलेख जैसे दर्रे तथा मसूरी, नैनीताल, रानीखेत, अल्मोड़ा तथा बागेश्वर जैसे पहाड़ी पर्यटन स्थल पाये जाते हैं।
- ***केन्द्रीय हिमालय***- यह हिमालय, काली से तीस्ता नदियों के मध्य स्थित है। इसका अधिकांश हिस्सा नेपाल में, कुछ हिस्सा सिक्किम में तथा छोटा भाग पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में पड़ता है। इसमें विश्व के सर्वोच्च शिखर, एवरेस्ट, कंचनजंघा, मकालू, धौलागिरी, अन्नपूर्णा, गोसाईथांन पाये जाते हैं। इसके प्रमुख दर्रे नाथू ला व जेलेप ला है।
- ***पूर्वी हिमालय***- यह हिमालय तीस्ता से ब्रह्मपुत्र के मध्य 720 किमी. में विस्तृत है। इस भाग में हिमालय का तीव्र उत्थान होता है तथा शिवालिक काफी संकीर्ण हो जाता है। हिमालय के इस भाग में कई पहाड़ियाँ जैसे- अका, डाफला, मिरि, अबोर, मिश्मी व नामचा बारवा तथा कई पर्वतीय दर्रे जैसे- बोमडीला, बोमला, दुंगा, योंग्गयाप डिफू, पोंगासाऊ, त्से-ला, देबांग पाये जाते हैं।
- अरुणाचल प्रदेश की दक्षिणी सीमा पर हिमालय दक्षिणवर्ती मोड़ दर्शाते हुए उत्तर-दक्षिण दिशा में अरूणाचल प्रदेश, नागालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा व मिजोरम में विस्तृत हो जाता है। इसे यहाँ स्थानीय रूप में पूर्वाचल कहा जाता है। इसमें प्रमुख पहाड़ियाँ पटाकाई बूम, नाग पहाड़ी, मणिपुर पहाड़ी, ब्लू माउंटेन (मिजोरम), त्रिपुरा श्रेणी तथा ब्रेल श्रेणी है। इसमें डिफू, हपुगांन, चौकान, पांगसाऊ व लिखापानी जैसे प्रमुख दर्रे भी पाये जाते हैं।

## *हिमालय के प्रमुख दर्रे*

- ***अधिल दर्रा ( काराकोरम-लद्दाख )***- समुद्र तल से 2835 मी. की ऊँचाई पर पीरपंजाल श्रेणी में स्थित यह दर्रा जम्मू को श्रीनगर से जोड़ता है।
- ***बारा लाप्चा ( हिमालय प्रदेश-लेह और लद्दाख )***- समुद्र तल से 4383 मी. की ऊँचाई पर हिमाचल प्रदेश राज्य में स्थित एक दर्रा है। यह मनाली को लेह से जोड़ने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग पर स्थित है।
- ***बोमडी ला***- भूटान के पूरब में अरुणाचल प्रदेश स्थित एक महान हिमालय का दर्रा जिसकी ऊँचाई 2600 मी. है। यह अरुणाचल प्रदेश को तिब्बत की राजधानी ल्हासा से जोड़ता है।
- ***बुर्जिल दर्रा***- समुद्र तल से 5000 मी. से अधिक ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा कश्मीर घाटी को लद्दाख के देवसाई मैदानों से जोड़ता है।
- ***चांग ला***- समुद्र तल से 5270 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित महान हिमालय का यह दर्रा लद्दाख को तिब्बत से जोड़ता है।
- ***देब्सा दर्रा***- समुद्र तल से 5270 मी. की ऊँचाई पर हिमालय प्रदेश के कुल्लु और स्पीति जिलों के मध्य स्थित यह एक महान हिमालय का दर्रा है।
- ***दिहांग दर्रा***- अरुणाचल प्रदेश राज्य में समुद्र तल से लगभग 1220 मी. की ऊँचाई पर स्थित एक दर्रा। यह अरुणाचल प्रदेश को मंडाले (म्यांमार) से संबद्ध करता है।
- ***डिफु दर्रा***- अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित यह दर्रा इस राज्य को मंडाले (म्यांमार) तक आसान और सबसे छोटा रास्ता (दिहांग की तुलना में) उपलब्ध कराता है।
- ***इमिस ला***- समुद्र तल से 4500 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा लद्दाख को तिब्बत (चीन) से अपेक्षाकृत आसान संबद्धता उपलब्ध कराता है।
- ***खारदुंग ला***- समुद्र तल से 6000 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित यह देश का मोटर वाहन चलने योग्य सबसे ऊँचा दर्रा है।
- ***खुंजेराब दर्रा ( काराकोरम )***- 5000 मी. से अधिक ऊँचाई पर स्थित काराकोरम पर्वत का यह दर्रा लद्दाख और चीन के सिक्यांग प्रांत को जोड़ने वाला परंपरागत दर्रा है।
- ***जेलेप ला***- समुद्र तल से लगभग 4538 मी. ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा सिक्किम को ल्हासा से जोड़ता है। यह चुंबी घाटी से होकर गुजरता है।
- ***लनक ला***- अक्साई-चिन (लद्दाख) में लगभग 5000 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा लद्दाख को ल्हासा से जोड़ता है।
- ***लिखापानी***- अरुणाचल प्रदेश में 4000 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित इस दर्रे द्वारा इस राज्य को म्यांमार से जोड़ा जाता है।
- ***जोजीला***- समुद्रतल से लगभग 3850 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा श्रीनगर को कारगिल और लेह से जोड़ता है।
- ***लिपु लेख***- पिथौरागढ़ में स्थित यह दर्रा उत्तराखण्ड को तिब्बत से जोड़ता है। मानसरोवर के तीर्थयात्री दर्रे से होकर भी जाते हैं। यह भारत के चीन से होने वाले व्यापार में काफी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- ***माना दर्रा***- महान हिमालय में समुद्र तल से लगभग 5611 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा उत्तराखंड को तिब्बत से जोड़ता है।
- ***मंगशा धुरा दर्रा***- समुद्र तल से लगभग 5000 मी. की ऊँचाई पर पिथौरागढ़ के पास स्थित यह दर्रा उत्तराखण्ड को तिब्बत से जोड़ता है। मानसरोवर की यात्रा के लिए तीर्थ यात्रियों को इस दर्रे से भी गुजरना पड़ता है।
- ***मुलिंग ला ( उत्तराखण्ड )***- गंगोत्री के उत्तर में स्थित यह एक मौसमी दर्रा है, जो उत्तराखण्ड को तिब्बत से जोड़ता है।
- ***नाथु ला ( सिक्किम )***- यह भारत-चीन सीमा पर स्थित एक दर्रा है। समुद्र-तल से लगभग 4310 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा प्राचीन रेशम मार्ग (Silk Route) की एक शाखा है। भारत और चीन की सीमा से होने वाले तीन व्यापारिक मार्गों में से एक नाथु ला भी है।
- ***निति दर्रा***- समुद्र-तल से लगभग 5068 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा उत्तराखण्ड को तिब्बत से जोड़ता है।
- ***पंगसान दर्रा ( अरुणाचल प्रदेश )***- समुद्र-तल से 4000 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा अरुणाचल प्रदेश को मंडाले (म्यांमार) से जोड़ता है।
- ***पेंजी ला***- जोजिला दर्रे के पूरब में, समुद्र-तल से 5000 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित महान हिमालय का यह दर्रा कश्मीर घाटी को कारगिल (लद्दाख) से जोड़ता है।
- ***पीर-पंजाल दर्रा***- जम्मू को श्रीनगर से जोड़ने वाला यह पारंपरिक दर्रा 'मुगल रोड' पर स्थित है। उप-प्रायद्वीप के विभाजन के बाद इस दर्रे को बंद कर दिया गया।
- ***कारा ताघ दर्रा***- काराकोरम पर्वत श्रेणी में समुद्र-तल से लगभग 6000

मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा प्राचीन रेशम मार्ग की एक शाखा थी।

- ***रोहतांग दर्रा***– समुद्र–तल से लगभग 3979 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा हिमालय प्रदेश की कुल्लु, लाहौल एवं स्फिति घाटियों को जोड़ता है।
- ***शीपकीला***– समुद्र–तल से 4300 मी. से भी अधिक ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा, सतलज महाखण्ड (Gorge) से होकर हिमाचल प्रदेश को तिब्बत से संबद्ध करता है। तिब्बत से आने वाली सतलज नदी इसी दर्रे से भारत में प्रवेश करती है।
- ***थांगला ( लद्दाख )***– समुद्र–तल से लगभग 5359 मी. की ऊँचाई पर लद्दाख में स्थित यह एक पर्वतीय दर्रा है। खारदुंग ला के बाद मोटर वाहन चलने योग्य यह भारत का दूसरा सबसे ऊँचा दर्रा है।
- ***ट्रेल्स दर्रा***– यह उत्तराखण्ड के पिथौरागढ़ और बागेश्वर जिलों में समुद्र–तल से लगभग 5212 मी. की ऊँचाई पर स्थित है। पिंडारी हिमनद के कगार पर स्थित यह दर्रा पिंडारी घाटी को मिलाम घाटी से जोड़ता है।

**भारत के प्रमुख हिमनद**

| | हिमानी के नाम | स्थिति | लंबाई ( किमी. ) |
|---|---|---|---|
| 1. | सियाचीन | काराकोरम | 75 |
| 2. | सासैनी | काराकोरम | 68 |
| 3. | हिस्पारा | काराकोरम | 61 |
| 4. | बीयाफो | काराकोरम | 60 |
| 5. | बाल्तोरा | काराकोरम | 58 |
| 6. | चोगो लुंग्मा | काराकोरम | 50 |
| 7. | खोर्दोपीन | काराकोरम | 47 |
| 8. | रिमो | कश्मीर | 40 |
| 9. | पुन्माह | कश्मीर | 27 |
| 10. | गंगोत्री | उत्तराखण्ड | 26 |
| 11. | जेमु | सिक्किम/नेपाल | 25 |
| 12. | रूपल | कश्मीर | 16 |
| 13. | दीयामीर | कश्मीर | 11 |

## हिमालय का महत्त्व

**हिमालय पर्वत का भारत के भौतिक, आर्थिक एवं जलवायु संबंधी अवस्थाओं पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है–**

- ये पर्वत साइबेरिया और रूस की ओर से आने वाली ठण्डी और शुष्क पवनों से भारत की रक्षा करते हैं। इससे यहाँ न तो पूर्ण मरुस्थलीय और न ही अधिक ठण्डी जलवायु संबंधी विषम अवस्थाएँ पायी जाती है।
- ये पर्वत उत्तर की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों से भी देश की रक्षा करते रहे हैं। शताब्दियों से इन पर्वतों ने भारत को मध्य–एशिया के प्रभाव से मुक्त रखा है।
- हिमालय पर्वत भारत के मौसम एवं जलवायु पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। हिमालय की चोटियाँ मानसूनों के मार्ग में अपनी ऊँचाई और स्थिति के कारण अधिकांश आर्द्रता को हिम या जल के रूप में ग्रहण कर लेती हैं। हिमालय के हिम क्षेत्रों से अनेक हिमानियाँ विकसित होती हैं। इनसे सदावाहिनी नदियों का उद्‌गम होता है। ढलावदार पर्वत भारी वर्षा के जल के साथ असंख्य झरनों के रूप में नदियों को जन्म देते हैं। यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से हिमालय पर्वत जितने तिब्बत के लिए लाभदायक है उतने ही भारत के लिए भी है, किंतु जल संसाधन की दृष्टि से इनका सारा लाभ भारत को मिलता है। इनसे निकली नदियाँ अपने साथ बहाकर लायी गयी पानी व बारीक कांप मिट्टी मैदानों में फैला देती हैं। इस प्रकार निर्मित पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम के उपजाऊ कांप मिट्टी के मैदान हिमालय की ही देन हैं।
- हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों और नैसर्गिक दृश्यों के कारण इन पर्वतों का यात्रियों, पर्यटकों और अन्वेषकों के लिए अत्यधिक महत्त्व है। भ्रमणार्थ आने वाले व्यक्तियों के लिए पर्यटन व्यवसाय का विकास हुआ है। विशेषकर हिमालय के निचले भागों में।
- हिमालय की घाटियाँ में जहाँ वृक्षों की सीमा समाप्त होती है और हिम रेखा आरंभ होती है, वहाँ चारागाह पाये जाते हैं, जिन्हें कश्मीर में मर्ग (जैसे, गुलमर्ग, सोनमर्ग आदि) और कुमायूँ में बुग्याल या पयार कहते हैं। इसमें भोटिया और लामा लोग अपनी भेड़-बकरियाँ चरातेहुए घूमते हैं। कश्मीर के गूजर, कुल्लू घाटी के गद्दी तथा भागीरथी और अलकनंदा घाटियों के जाघ और मरचिया अन्य भ्रमणकारी प्रजातियाँ है जो ऋतु के अनुसार अपने पशुओं को लेकर घूमती रहती है।
- भारतीय पुराणों में हिमालय को देवभूमि माना गया है। इसी पर्वत श्रेणी में केलाश, अमरनाथ, बद्रीनाथ, मानसरोवर, केदारनाथ, वैष्णोदेवी, ज्वालामुखी, तारादेवी, देवप्रयाग, विष्णुप्रयाग, कर्णप्रयाग, रूद्रप्रयाग जोशीमठ, उत्तरकाशी, लक्ष्मणझूला, हरिद्वार आदि प्रमुख तीर्थ हैं, जिनके दर्शन करने प्रतिवर्ष लाखों यात्री जाते हैं। तिब्बती बौद्ध शरणार्थियों के हिमालय में बौद्धमठों की भी बहुलता है।
- हिमालय पर्वत पर विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति पायी जाती है। हिमालय के ऊँचे ढालों पर **सिलवर, फर, स्प्रूस, देवदार, बर्च, लार्च, चीड़,** आदि वृक्ष मिलते हैं। इनके नीचे के क्षेत्रों में **शाहबलूत, मैपल, हिकॉरी, एल्म, एल्डर,** आदि चौड़ी पत्ती वाले ऊँचे वृक्षों की अधिकता पायी जाती है। यहाँ पर अनेक प्रकार की उपजें, जड़ी बूटियाँ, कच्चा माल एवं वन्य जीव पाये जाते हैं।
- बाहरी हिमालय श्रेणी पर असम से लेकर हिमाचल प्रदेश तक चाय और फलों (सेब, बादाम, अंगूर, चेरी, खूबानी, आडू, अखरोट, नाशपाती, आदि) का उत्पादन किया जाता है। कश्मीर और कुल्लू की घाटियाँ सेब, नाशपाती, अखरोट, चेरी, शहतूत, शफ्तालू, रैम्पबैरी, स्ट्रॉबेरी फलों के लिए प्रसिद्ध है। नैनीताल, अल्मोड़ा में सेब व अखरोट के उद्यान विकसित किए गए हैं। श्रीनगर के निकट सीमित मात्रा में केसर पैदा की जाती है।
- पहाड़ों में बने मार्गों और पगडण्डियों से बाहरी व्यक्तियों के अपरिचित होने के कारण घाटियों तक पहुँचना बड़ा असंभव है। अत: पहाड़ी निवासियों के जीवन पर न तो बाहरी आक्रमण का कोई प्रभाव पड़ता है और न उनके रीति–रिवाज या भाषा का।
- हिमालय पर्वत के विभिन्न भागों में अब अनेक खनिज पदार्थों के मिलने की संभावनाएँ व्यक्त की गयी हैं। तेल और प्राकृतिक गैस कॉरपोरेशन के अनुसार दो क्षेत्र पेट्रोलियम प्राप्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं- (i) जम्मू और हिमाचल प्रदेश की टर्शरी शैलों की मेखला में, विशेषत: **सूरीन–मस्तगढ़–नूरपुर- चंगरतलाई** मोड़ों में और (ii) अरूणाचल प्रदेश, असम और ब्रह्मपुत्र नदी के उत्तरी मैदान।
- इसके अतिरिक्त हिमालय में **अल्मोड़ा** और सिक्किम में **ताँबा,** कश्मीर के **रियांसी** क्षेत्र में कोयला, अल्मोड़ा जिले में घीया पत्थर, लद्दाख में सोना, लद्दाख तथा रूपशू में सुहागा और नमक तथा हिमाचल के ऊँचे भागों में शिलाजीत मिलती है हालाँकि खनिज पदार्थ अभी निकाले नहीं जाते हैं।
- हिमालय से निकलने वाली नदियों के भागों में पड़ने वाले जल–प्रपातों से सस्ती जल–विद्युत उत्पन्न की जाती है। सतलज नदी पर भाखड़ा नांगल बाँध

बनाया गया है। टोंस, शारदा, गंडक, कोसी, आदि नदियों का उपयोग भी जलशक्ति उत्पादन के लिए किया गया है।

### हिमालय की वर्तमान स्थिति

भू-गर्भवेत्ताओं का विचार है कि हिमालय ने आज से 12 करोड़ वर्ष पूर्व ऊपर उठना आरंभ किया और यह क्रिया अब भी जारी है। इस विचार के पक्ष में निम्नलिखित प्रमाण दिए जाते हैं–

1. त्रिकोणमितीय विधि (Trigonometrical Method) द्वारा हिमालय पर्वत के विभिन्न भागों की ऊँचाईयों के जो अनुमान लगाए गए हैं, उनसे इस बात का संकेत मिलता है कि हिमालय की ऊपर उठने की प्रक्रिया अभी समाप्त नहीं हुई और ये अब भी उत्थान की प्रक्रिया में है।
2. हिमालय क्षेत्र में प्राय: भूकंप आते रहते हैं। इससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि हिमालय में अभी भी समस्थितिक संतुलन नहीं आया और यह ऊपर उठ रहा है।
3. हिमालय से प्रवाहित होने वाली अधिकांश नदियाँ अभी तक अपनी युवावस्था में ही हैं। ये भी हिमालय के उत्थान को प्रमाणित करती है।
4. तिब्बत में स्थित अनेक झीलों का तल भी ऊँचा उठा है जिससे हिमालय के ऊपर उठने का प्रमाण मिलता है।
5. भारतीय सर्वेक्षण विभाग द्वारा लगाए गए अनुमान के अनुसार, मुख्य हिमालय श्रेणी 100 वर्षों में 20 सेमी. ऊपर उठती है जबकि शिवालिक श्रेणी 100 वर्षों में 10 मीटर तक ऊपर उठ जाती है। Balanche Christine Olschak ने अपनी पुस्तक 'हिमालय' में लिखा है कि हिमालय एक सेंटीमीटर प्रति वर्ष की दर से ऊपर उठ रहा है।
6. प्लेट विवर्तनिकी के अनुसार भारतीय प्लेट अब भी यूरेशियाई प्लेट की ओर बढ़ रही है और हिमालय में वलन की प्रक्रिया अब भी जारी है। अत: इस संकल्पना के अनुसार भी समस्त हिमालय पर्वत ऊपर उठ रहा है।

## उत्तरी भारत का विशाल मैदान

### स्थिति तथा विस्तार

- यह मैदान उत्तरी पर्वतीय भाग एवं दक्षिण के पठारी भाग के मध्य में फैला है। यह भारत का ही नहीं वरन् विश्व का सबसे अधिक उपजाऊ और घनी जनसंख्या वाला मैदान है। इस मैदान की उत्पत्ति हिमालय पर्वत की उत्पत्ति के पश्चात् हुई है। इसका क्षेत्रफल 7 लाख वर्ग किमी. है। यह मैदान पूर्व में 145 किमी. एवं पश्चिम में 480 किमी. चौड़ा है तथा 2400 किमी. की लम्बाई में धनुष के आकार में फैला है। इस मैदान का ढाल बड़ा समतल है। अरावली पर्वत की श्रेणी को छोड़कर कोई भी भाग समुद्र तल से 180 मीटर से अधिक ऊँचा नहीं है। इस मैदानी भाग में गहराई तक कांप मिट्टी के जमाव पाए जाते हैं। पश्चिम में पाकिस्तान में (सिंधु का मैदान) एवं पूर्व में बांग्लादेश में (गंगा-ब्रह्मपुत्र का डेल्टा) इसी का विस्तार है।
- संपूर्ण उत्तरी मैदान एक समतल मैदान है जिसकी समुद्र तल से औसत ऊँचाई 200 मीटर है। अधिकतम ऊँचाई 291 मीटर अम्बाला और सहारनपुर के बीच है। यही भाग इस विशाल मैदान का जल-विभाजक है। इसके पूर्व की ओर गंगा तथा इसकी सहायक नदियाँ पूर्वी दिशा में प्रवाहित होने के पश्चात् बंगाल की खाड़ी में जा गिरती हैं। इसकी पश्चिम की ओर सिंधु तथा उसकी सहायक नदियाँ अरब सागर में जाकर मिलती हैं।

### उत्तरी मैदान की उत्पत्ति एवं विकास

हिमालय पर्वत की रचना के कारण उसके और प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में गहरी खाई बन गयी जिसमें टेथिस सागर का अवशिष्ट जल खाड़ियों के रूप में भरा हुआ रह गया। हिमालय से निकलने वाली आरंभिक नदियों ने अपने साथ पत्थर, कंकड़ और मिट्टी ला-लाकर इन खाड़ियों की तली में जमा कर दी। इस प्रकार हिमालय की आरंभिक नदियों द्वारा मिट्टी के निरंतर जमाव के कारण जिस विस्तृत समतल प्रदेश का निर्माण किया गया उसी का विकसित रूप ही गंगा-सिंधु का मैदान है। एक बड़ा समतल प्रदेश हिमालय और प्रायद्वीपीय भारत के मध्य में बना, वही आज सिंधु-सतलज-गंगा का मैदानी प्रदेश कहलाता है।

- गंगा-ब्रह्मपुत्र के डेल्टा का विकास प्रागैतिहासिक काल में ही हुआ है। यहाँ पर पिछले 8-10 हजार वर्षों में गंगा एवं ब्रह्मपुत्र द्वारा बहाकर लाये गये अवसादी भाग यहाँ के छिछले सन्नति में निरंतर जमा होते रहने के कारण डेल्टा के आकार में निरंतर विकसित जमाव होते रहे। आज भी यहाँ ब्रह्मपुत्र व उसकी सहायक नदियों द्वारा प्रतिवर्ष भारी मात्रा में अवसाद ला-लाकर जमा किए जाते हैं। इसी कारण इस डेल्टा के पूर्वी भाग का विस्तार दक्षिण की ओर धनुषाकार रूप में होता रहा है।

### उत्तरी मैदान का भौगोलिक विभाजन/स्थलाकृतियाँ

- उत्तर का मैदान एक विशाल पूर्णत: समतल एवं सपाट मैदान है। सहारनपुर से कोलकाता तक इसकी लंबाई 1500 किमी. तथा इसकी औसत ढाल 20 सेंटीमीटर प्रति किमी. है। जैसे-जैसे हम इसके जल विभाजक से पूर्व की ओर बढ़ते हैं वैसे-वैसे यह ढाल और भी मंद होता जाता है। परंतु इस मैदान की कुछ अपनी ही विविधताएँ हैं जिनका अपना विशिष्ट स्थान है।

***मिट्टी की विशेषता तथा ढाल के आधार पर इन विविधताओं का निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है-***

- ***भाबर प्रदेश***- यह शिवालिक के गिरिपद प्रदेश में सिंधु नदी से तिस्ता नदी तक पाया जाता है। यह 8 से 16 किमी. चौड़ाई वाली एक संकरी पट्टी के रूप में स्थित है। इसकी चौड़ाई पश्चिम में अधिक व पूरब में कम है। गिरिपद पर स्थित होने के कारण इस क्षेत्र में नदियाँ बड़ी मात्रा में पत्थर, कंकड़, बजरी आदि लाकर जमा कर देती है जिससे पारगम्य चट्टानों का निर्माण होता है। अत: इस क्षेत्र में पहुँचकर अनेक छोटी छोटी नदियाँ भूमिगत होकर अदृश्य हो जाती हैं। यह भाग कृषि के लिए अधिक उपयोगी न होने के कारण विरल जनसंख्या का क्षेत्र हैं।
- ***तराई प्रदेश***- भाबर के दक्षिण में मैदान का वह भाग जहाँ भाबर की लुप्त नदियाँ फिर से भूतल पर प्रकट हो जाती है तराई प्रदेश कहलाता है। यह प्रदेश 15 से 30 किमी. चौड़ा है। यहाँ पर अधिकांश भाग दलदल होता है। नदियों द्वारा निक्षेपित जलोढ़ के कण भाबर प्रदेश की अपेक्षा छोटे होते हैं। इसकी रचना बारीक कंकड़, पत्थर, रेत तथा चिकनी मिट्टी से हुई है। अधिक दलदल तथा नमीं के कारण यहाँ पर घने वन तथा विभिन्न प्रकार के वन्य प्राणी पाए जाते हैं। अब इसे साफ करके कृषि योग्य बनाया गया है।
- ***बांगर प्रदेश***- बांगर वह ऊँचा भाग है जहाँ नदियों की बाढ़ का जल नहीं पहुँचता। यह पुरानी जलोढ़ मिट्टी द्वारा बना हुआ होता है। इसकी ऊँचाई कहीं-कहीं पर 30 मीटर है परंतु ऊँचाई में उतार-चढ़ाव को सामान्य दृष्टि से देखने पर बांगर तथा खादर में बहुत ही कम अंतर दिखाई देता है। सतलुज के मैदान तथा गंगा के ऊपरी मैदान में बांगर का विस्तार विशेष रूप से देखने को मिलता है। इसकी मृदा गहरे रंग की है, जिसमें ह्यूमस की प्रचुरता तथा उर्वरा शक्ति से परिपूर्ण है। इनमें अशुद्ध केल्सियम कार्बोनेट की ग्रंथियाँ विद्यमान है जिन्हें कंकड़ कहा जाता है।
- ***खादर प्रदेश***- खादर प्रदेश वह नीचा भाग है जहाँ नदियों की बाढ़ का जल प्रतिवर्ष पहुँचता है। प्रतिवर्ष नदियों की बाढ़ का जल नवीन मिट्टी लाकर यहाँ पर बिछा देता है, इसलिए नवीन जलोढ़ द्वारा खादर निर्मित होते हैं। हर वर्ष नई मिट्टी के जमाव के कारण ये बड़े उपजाऊ भाग होते हैं और कृषि कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खादर प्रदेश बालू तथा कंकड़ से युक्त होता है तथा भूमिगत जल का उत्तम संग्राहक है।
- ***रेह प्रदेश***- बांगर प्रदेश के जिन भागों में अधिक सिंचाई की जाती है,

उनमें कहीं-कहीं भूमि पर एक नमकीन सफेद परत बिछ जाती है। इसे **रेह** अथवा **कल्लर** कहते हैं। यह उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा के शुष्क भागों में अधिक होती है।

- ***भूड़***- बांगर प्रदेश के कुछ भागों में अपक्षय के कारण ऊपर की मुलायम मिट्टी नष्ट हो गई है और वहाँ अब कंकरीली भूमि मिलती है। ऐसी भूमि को **भूड़** कहते हैं। गंगा तथा रामगंगा नदियों के प्रवाह क्षेत्रों में भूड़ का जमाव विशेष रूप से मिलता है।
- ***डेल्टाई प्रदेश***- गंगा तथा ब्रह्मपुत्र नदियों ने अपने मुहाने के निकट विशाल डेल्टा का निर्माण किया है, जो भारत तथा बांग्लादेश में विस्तृत है। इस डेल्टा का पुराना भाग भारत में है और नया भाग बांग्लादेश में है। वास्तव में डेल्टाई प्रदेश खादर प्रदेश का ही विस्तृत रूप है। डेल्टा प्रदेश की उच्च भूमि को **चर** तथा दलदलीय क्षेत्र को **बिल** कहा जाता है।

## *उत्तरी मैदान का प्रादेशिक विभाजन*

पश्चिम में राजस्थान से लेकर पूर्व में असम तक इस विशाल मैदान के उच्चावच में महत्त्वपूर्ण प्रादेशिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। इस दृष्टिकोण से इसे पश्चिम से पूर्व की ओर निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है-

| | |
|---|---|
| 1. राजस्थान का मैदान | 2. पंजाब-हरियाणा का मैदान |
| 3. गंगा का मैदान | 4. ब्रह्मपुत्र का मैदान |

## *राजस्थान का मैदान*

इसका विस्तार मुख्य रूप से राजस्थान के पश्चिमी भाग में अरावली पहाड़ियों से भारत-पाकिस्तान सीमा तक है। उत्तर पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में इसकी लम्बाई 640 किमी. है। इसकी औसत चौड़ाई 300 किमी. है। इसका क्षेत्रफल 1.75 लाख वर्ग किमी. है। इस मैदान को दो भागों में बाँटा जाता है।

- ***मरुस्थली मैदान***- यह मारवाड़ मैदान का अंग है। यहाँ पर बालू अधिक है और बालुका स्तूप अधिक संख्या में पाए जाते हैं। कहीं-कहीं पर धरातल के ऊपर नीस, शिष्ट तथा ग्रेनाइट चट्टानें दिखाई पड़ती हैं। यह मुख्यत: शुष्क मरुस्थलीय भाग है जहाँ वार्षिक वर्षा 25 सेमी. से कम होती है। परंतु सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में गेहूँ, ज्वार, बाजरा आदि की कृषि की जाती है। जैसलमेर के निकट कुछ छोटी-छोटी झीलें हैं जो बहुधा सूखी पड़ी रहती है।
- ***राजस्थान के बांगर मैदान***- राजस्थान के मैदान का उत्तरी तथा पूर्वी भाग उच्च प्रदेश है और यह राजस्थान बांगर कहलाता है। यह उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम में विस्तृत है। पश्चिम में इसका विस्तार 25 सेमी. वार्षिक वर्षा की समवर्षा रेखा निर्धारित करती है। यहाँ की प्रमुख नदी लूनी है। यह एक मौसमी नदी है जो दक्षिण-पश्चिम दिशा में कच्छ के रन की ओर प्रवाहित होती है। यहाँ पर कहीं-कहीं पहाड़ियाँ भी मिलती हैं। कई स्थानों पर उपजाऊ मिट्टी भी मिलती है। राजस्थान मैदान के दक्षिण-पश्चिमी भागों में जलोढ़ मैदान है जिन्हें यहाँ **रोही** कहा जाता है।

## *पंजाब-हरियाणा का मैदान*

यह 1.75 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में फैला एक चौरस मैदान है। उत्तर से दक्षिण दिशा में इसकी लम्बाई 640 किमी. तथा पूर्व से पश्चिम दिशा में इसकी चौड़ाई 300 किमी. है। राजनैतिक दृष्टि से इसका विस्तार पंजाब, हरियाणा तथा दिल्ली में है। समुद्र तल से इसकी औसत ऊँचाई 250 मीटर है। सतलुज, व्यास, रावी, चिनाब तथा झेलम नामक पाँच नदियों द्वारा बने हुए मैदान को पंजाब का मैदान कहते हैं। यह दोआबों का बना हुआ मैदान है। दो नदियों के बीच के क्षेत्र को दोआब कहते हैं।

- विभाजन के फलस्वरूप इसका कुछ भाग पाकिस्तान में चला गया और अब सतलुज, व्यास व रावी नदियों के मैदानी भाग ही इसमें सम्मिलित हैं। सतलुज नदी के दक्षिण की ओर स्थित भू-भाग को मालवा मैदान कहते हैं।

| *पंजाब मैदान के दोआब* |
|---|
| • व्यास एवं सतलुज के बीच का **बिस्त-जालंधर** दोआब |
| • व्यास एवं रावी के बीच का **बारी** दोआब |
| • रावी एवं चिनाब के बीच का **रचना** दोआब |
| • चिनाब एवं झेलम के बीच का **चाज** दोआब |
| • झेलम, चिनाब एवं सिंधु के बीच का **सिंध सागर** दोआब |

- शिवालिक की पहाड़ियों के साथ लगते हुए मैदान में अनेक छोटी-छोटी नदियों ने बड़ी मात्रा में अपरदन किया है जिसके कारण यहाँ बड़ी संख्या में खण्ड मिलते हैं। नदियों द्वारा बनाए गए इन खण्डों को स्थानीय भाषा में **चो (Chos)** कहते हैं। इस प्रकार के चो पंजाब के होशियारपुर जिले में सबसे अधिक मिलते हैं। नदी कगारों जिनकी ऊँचाई 3 मीटर या उससे भी अधिक है, उसे यहाँ **छाया** कहलाती है तथा खादर पट्टियों को **बेत (Bet)** कहते हैं।

## *गंगा का मैदान*

गंगा का मैदान उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिम बंगाल में विस्तृत है। इसका डेल्टाई भाग पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश में विस्तृत है। गंगा का डेल्टा विश्व में सबसे बड़ा डेल्टा है। यह मैदान हिमालय से निकलने वाली गंगा तथा इसकी सहायक नदियों- यमुना, गोमती, घाघरा, गण्डक तथा कोसी की निक्षेप क्रिया द्वारा बनाया गया है। दक्षिणी पठार में बहने वाली नदियों- चम्बल, बेतवा, केन तथा सोन ने भी इस मैदान के निर्माण में अपना योगदान दिया है। इस संपूर्ण मैदान का सामान्य ढाल पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व की ओर है। गंगा के मैदान को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जाता है-

- ***ऊपरी गंगा का मैदान***- यह गंगा के मैदान का ऊपरी भाग है। इसकी उत्तरी सीमा शिवालिक की पहाड़ियाँ, दक्षिणी सीमा प्रायद्वीप पठार तथा पश्चिमी सीमा यमुना नदी निर्धारित करती है। इसकी पूर्वी सीमा 100 मीटर की समोच्च रेखा को माना जाता है। यह मैदान उत्तर प्रदेश के दो तिहाई भाग में फैला हुआ है। पूर्व-पश्चिम दिशा में इसकी लम्बाई 550 किमी. तथा उत्तर-दक्षिण दिशा में इसकी चौड़ाई 380 किमी. है। इस प्रकार यह प्रदेश 1.49 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र पर फैला हुआ है। यह मैदान गंगा तथा इसकी सहायक नदियों जैसे- यमुना, रामगंगा, शारदा, गोमती तथा घाघरा ने बनाया है। यह मैदान समुद्र तल से 100 से 300 मीटर ऊँचा है। इस मैदान के पश्चिम में गंगा-यमुना दोआब है जो अपेक्षाकृत उच्च प्रदेश है। इस दोआब के पूर्व में रूहेलखण्ड का मैदान है जो लगभग 35 हजार वर्ग किमी. क्षेत्र में फैला हुआ है। रूहेलखण्ड के पूर्व में अवध का मैदान है। अवध के मैदान में बहने वाली मुख्य नदी घाघरा है। इसकी अन्य नदी गोमती है जिसकी धारा मंद है। वास्तव में इस संपूर्ण प्रदेश की ही ढाल मंद है। लहरदार रेत के टीलों की उपस्थिति इस मैदान की एक विशेषता है, जिन्हें **भूड़** के नाम से जाना जाता है।
- ***मध्य गंगा का मैदान***- यह मैदान उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग तथा बिहार में लगभग 1.45 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र पर फैला हुआ है। यह मैदान पूर्व-पश्चिम दिशा में लगभग 600 किमी. लम्बा तथा उत्तर-दक्षिण दिशा में 330 किमी. चौड़ा है। इसके उत्तर में हिमालय का गिरिपद भाग तथा दक्षिण में प्रायद्वीपीय पठार का उत्तरी किनारा है। यह मैदान काफी नीचा है और इसका कोई भाग 150 मीटर से अधिक ऊँचा नहीं है। इस मैदान में घाघरा, गंडक तथा कोसी आदि नदियाँ गंगा नदी की सहायक नदियाँ हैं। यहा पर

बहने वाली लगभग सभी नदियाँ अपना मार्ग बदलती हैं। जिससे सदा बाढ़ का खतरा बना रहता है। इस संदर्भ में कोसी नदी बहुत ही विख्यात है। इन मैदानों में जलोढ़ो का मोटा निक्षेप है, जिनमें कंकड़ की मात्रा कम है। यह प्रदेश साधारणतया एकरूपता एवं आकृतिहीनता प्रदर्शित करता है।

- दक्षिणी प्रायद्वीप से भी कई नदियाँ इस क्षेत्र में बहती है। जिनमें सोन नदी सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सोन नदी के क्षेत्र में ढाल अन्य भागों की अपेक्षा अधिक है। इस मैदान के प्रसिद्ध उप-क्षेत्र गंगा-घाघरा दोआब, घाघरा-गंडक दोआब तथा गंडक-कोसी दोआब हैं।
- ***निम्न गंगा का मैदान***- इस प्रदेश में दार्जिलिंग के दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र तथा पश्चिम में स्थित पुरुलिया जिले के अलावा संपूर्ण पश्चिम बंगाल सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह मैदान हिमालय की तलहटी से गंगा के डेल्टा तक विस्तृत है। उत्तर-दक्षिण दिशा में इसकी लम्बाई 580 किमी. तथा पूर्व-पश्चिम दिशा में इसकी अधिकतम चौड़ाई छोटा नागपुर पठार से बांग्लादेश की सीमा तक 200 किमी. है। इसका कुल क्षेत्रफल 81 हजार वर्ग किमी. है। दक्षिण-पश्चिम में 150 मीटर की समोच्च रेखा इसकी सीमा बनाती है। इस मैदान का उत्तरी भाग, **तिस्ता, जलढाका** तथा **टोरसा** नदियों द्वारा लाए गए अवसाद के निक्षेप से बना है। जलपाईगुड़ी तथा दार्जिलिंग जिले का पर्वत पदीय एवं तराई का क्षेत्र दोआब कहलाता है। राजमहल की पहाड़ियों तथा बांग्लादेश की सीमा के बीच यह मैदान संकरा होकर केवल 16 किमी. चौड़ा रह जाता है। डेल्टाई भाग में गंगा अपने आप को कई धाराओं में विभक्त कर लेती है। यहाँ पर भूमि का ढाल बहुत ही मंद है 2 सेमी. प्रति किमी. से भी कम है। इस प्रदेश का दो तिहाई भाग 30 मीटर से भी कम ऊँचा है। अत: इसके अधिकांश भाग में दलदल पाया जाता है। डेल्टा के ऊपरी भाग में कहीं-कहीं बलुआ टीले पाये जाते हैं, जो आस-पास के क्षेत्र से 10-12 मीटर ऊँचे हैं। यहाँ कुछ निम्न भू-भाग भी हैं जिन्हें बिल कहते हैं। मुहाना प्रदेश पर समुद्र तट के साथ-साथ दलदली भाग है जहाँ घने सुंदर वन हैं। निचले गंगा मैदान का छोटानागपुर पठार के पूरब स्थित भाग **राढ़ मैदान** कहलाता है। **दामोदर** एवं **स्वर्णरेखा** नदियों से अप्रभावित या मैदान लेटेराइट जलोढ़ मृदाओं से आच्छादित है। मृदा अपरदन इस मैदान की मूल समस्या है।

## *ब्रह्मपुत्र का मैदान*

इसे ब्रह्मपुत्र की घाटी भी कहते हैं। इसका लगभग समस्त भाग असम में है, अत: इसे असम का मैदान भी कहा जाता है। यह तीन ओर से पर्वतों तथा पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इसके उत्तर में हिमालय की श्रृंखलाएँ, पूर्व में पटकाई बूम व नागा श्रेणियाँ तथा दक्षिण में गारो, खासी व जयन्तिया की पहाड़ियाँ स्थित हैं। पश्चिम में भारत-बांग्लादेश की अंतर्राष्ट्रीय सीमा तथा निम्न गंगा का मैदान इसकी सीमा निर्धारित करते हैं। यह एक लंबा एवं संकरा मैदान है। पश्चिम में धुबरी से पूर्वोत्तर में सदिया तक यह लगभग 800 किमी. लंबा तथा 60 से 96 किमी. चौड़ा मैदान है। इसका क्षेत्रफल लगभग 56 हजार वर्ग किमी. है। इस मैदान का निर्माण ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों द्वारा किया गया है। यह एक निम्न प्रदेश है जो पूर्व में 130 मीटर तथा पश्चिम में केवल 30 मीटर ऊँचा है। ढाल उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में है। इस मैदान के उत्तरी भाग में ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों ने जलोढ़ पंखों का निर्माण किया है। ढाल कम होने के कारण यहाँ पर कई नदी विसर्प बनते हैं, जिससे कई निम्न भूमियों का निर्माण होता है। इसे बिल कहते हैं। वर्षा ऋतु में ब्रह्मपुत्र नदी का पाट बहुत चौड़ा हो जाता है, जिसके फलस्वरूप बाढ़ का मैदान बनता है। नदी कई धाराओं में विभक्त हो जाती है और नदी-द्वीपों का निर्माण होता है। भारत का सबसे बड़ा तथा विश्व का दूसरा सबसे बड़ा नदी द्वीप माजुली द्वीप है इन्हीं में से एक द्वीप है।

## *उत्तर के मैदान की विशेषताएँ*

- इस मैदान का धरातल अत्यधिक समतल है। अत: इसमें ऊँचे टीलों का भी प्राय: अभाव पाया जाता है।
- इस मैदान का ढाल अत्यधिक धीमा है। अत: गंगा के डेल्टा से पश्चिम की ओर बढ़ने पर तराई प्रदेश तक समुद्र तल से धरातल की ऊँचाई केवल 200 मीटर ही है।
- इस मैदान की भूमि नदियों द्वारा विक्षिप्त कांप मिट्टी से बनी है। यह मुलायम मिट्टी है, जिसकी उर्वरा शक्ति बहुत ही विलक्षण है। यह भारत का प्रमुख कृषि क्षेत्र है, जिसमें चावल, गन्ना, जूट, गेहूँ, तम्बाकू, सरसों एवं अन्य तिलहन पैदा किए जाते हैं।
- इस मैदान में अनेक नदियों का जाल सा फैला है। अधिकांश नदियाँ हिमालय पर्वत से निकलने के कारण सततवाहिनी हैं। जिन क्षेत्रों में वर्षा कम होती है, वहाँ नहरें निकालकर एवं नलकूपों का जाल फैलाकर सिंचाई की जाती है।
- मैदानी भाग में नदियाँ धीमी बहती हैं और इनकी चौड़ाई अधिक होती है जिससे यहाँ नदियों द्वारा प्राचीनकाल से आवागमन होता रहा है। आज भी इनके द्वारा कुछ सीमा तक अंतर्देशीय यातायात होता है।
- यह समतल मैदान रेलमार्ग और सड़कें बनाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। अत: यहाँ रेलमार्गों और सड़कों का जाल सा बिछा है। इस यातायात की उन्नति ने आंतरिक व्यापार की उन्नति में योगदान दिया है और नगरीकरण व औद्योगिकीकरण को बढ़ावा दिया है।
- इस मैदान के पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी भागों में जो अवसाद जमें उनमें वृक्षों के दब जाने से कोयले का निर्माण हुआ तथा जहाँ महासागरीय जीवाश्म जमें वहाँ उनसे नि:सृत होकर खनिज तेल संगृहीत हो गया।
- यह मैदान सभ्यता की जन्मभूमि रहा है। देश के इतिहास एवं विकासशील राजनीतिक स्वरूपों को सजाने-संवारने में भी इस मैदान का विशेष योगदान रहा है। इस क्षेत्र के प्राचीन नगरों के भग्नावशेष एवं आधुनिक नगर इसके साक्षी हैं।
- इस प्रकार भारत का यह मैदान एक विशाल और विस्तृत खेत है। शताब्दियों से नदियाँ इस खेत को उपजाऊ बनाने का काम कर रही हैं। अपने कृषि उत्पादकता के कारण ही यह मैदान एक विशाल जनसंख्या के भरण-पोषण हेतु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

## *उत्तरी मैदान का महत्त्व*

- इस मैदान का विस्तार अत्यधिक है। यह भारत के लगभग एक चौथाई क्षेत्रफल को घेरे हुए है। यहाँ संपूर्ण देश की लगभग 47 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। यद्यपि भौगोलिक तथा आर्थिक दृष्टि से यह भारत का सर्वोत्तम भाग है, किंतु भू-वैज्ञानिक दृष्टि से इसका महत्त्व अधिक नहीं है, क्योंकि यह भारत का नवीनतम भाग है और इसकी भौतिक संरचना सरल है। किंतु यहाँ भूमि समतल होने तथा रेलमार्गों, राजमार्गों और नदियों का जाल बिछा होने के कारण इस भाग में देश के अनेक प्रमुख व्यापारिक और औद्योगिक केंद्र स्थित हैं तथा जनसंख्या भी घनी है। अत: इस मैदान का राष्ट्रीय विकास एवं आर्थिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। सिंधु, सतलज, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों द्वारा लायी गयी मिट्टी से बना होने और इन नदियों में सिंचाई की सुविधा होने के कारण यह मैदान हिमालय पर्वत का उपहार कहलाता है।

# *प्रायद्वीपीय पठार*

## *स्थिति एवं विस्तार*

प्रायद्वीप भारत या दक्कन उत्तरी भारत के मैदान के दक्षिण में वह भूभाग है जो तीन ओर से समुद्र से घिरा है। यह राजस्थान से कुमारी अंतरीप और गुजरात से पश्चिम बंगाल तक विस्तृत है। इसका आकार प्राय: त्रिभुजाकार है जिसका चौड़ा भाग उत्तर की ओर तथा शीर्ष भाग दक्षिण की ओर है। पठार के उत्तर में अरावली, विंध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ, पश्चिम में ऊँचे पश्चिमी घाट और पूर्व में निम्न पूर्वी घाट और दक्षिण में नीलगिरि पर्वत स्थित हैं। इस प्रायद्वीप की औसत

ऊँचाई 450 से 750 मीटर है। प्रायद्वीपीय भारत का पश्चिमी तट का तीव्र ढाल उस भ्रंश का द्योतक है, जो अफ्रीका से भारत के अलग होने के कारण बना जिसके कारण अनेक विद्वान पश्चिमी घाट को वास्तविक पर्वत न मानकर उसे भ्रंश कगार मानते हैं। यह भारत का सबसे बड़ा पठार है जिसका क्षेत्रफल लगभग 10 लाख वर्ग किमी. है। प्रायद्वीप के अंतर्गत दक्षिण-पूर्वी राजस्थान, छत्तीसगढ़, आंध्रप्रदेश के पश्चिमी भाग, झारखंड, महाराष्ट्र, ओडिशा, कर्नाटक, केरल एवं अधिकांश तमिलनाडु राज्य के प्राचीन पठारी भाग सम्मिलित हैं।

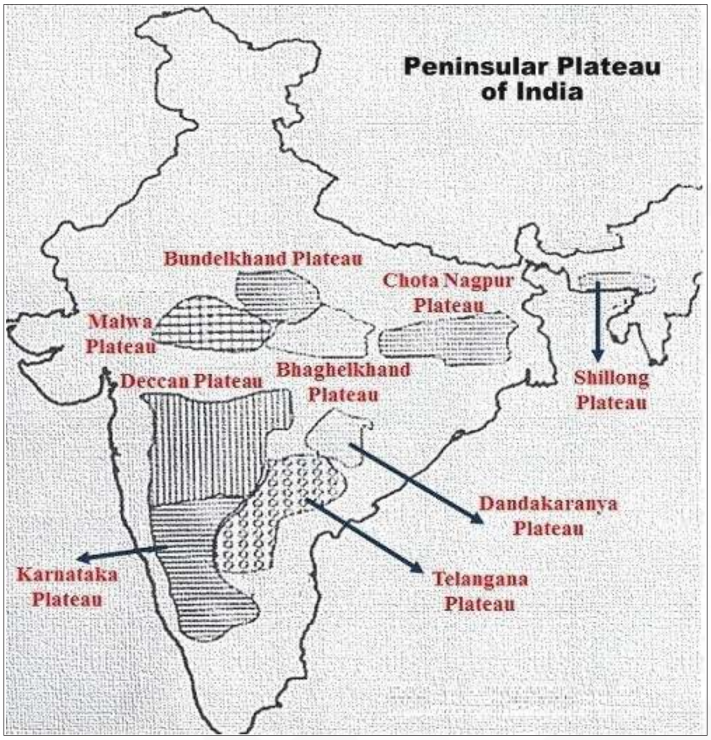


## उत्पत्ति एवं विकास

दक्षिण का प्रायद्वीप उस गोंडवाना महाद्वीप का अवशिष्ट भाग है जो प्राचीन काल में टेथिस महासागर के दक्षिण में फैला था। अधिक प्राचीन होने के कारण इस भाग में अनेक पर्वत निर्माणकारी क्रियाओं एवं महाद्वीपीय विस्थापन जैसी घटनाओं के फलस्वरूप गोंडवाना महाद्वीप के भाग छिन्न-भिन्न होकर पृथक हो गए तथा कुछ भाग सदा के लिए समुद्र में जलमग्न हो गए।

- इसके बाद मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी के दक्षिण में गोंड राज्य में द्रविड़ युग के गहरे बेसिनों और गर्तो में गोंडवाना चट्टानों का निर्माण हुआ। ऐसी पुरानी चट्टानों के आधार पर इस समस्त भू-भाग को गोंडवाना लैण्ड कहा गया। गोंडवाना शिलाओं का विकास भारत के एक तिकोने प्रदेश के दो भागों में हुआ है। यह एक ओर दामोदर, सोन और ऊपरी नर्मदा की घाटियों में है, जिसका विस्तार लगभग पूर्व-पश्चिम है। दूसरा भाग गोदावरी घाटी में फैला है। इस तिकोने क्षेत्र में एक गौण मेखला महानदी घाटी में फैली है। दार्जिलिंग, भूटान और असम के उप-हिमालय प्रदेश में भी स्थानीय रूप से गोण्डवाना क्रम के जमाव पाए जाते हैं। कश्मीर में भी निचली गोंडवाना शिलाएं मिलती हैं। भारत के पूर्वी तट पर ऊपरी गोंडवाना शिलाएँ मिलती हैं।
- भारत का प्रायद्वीप बहुत ही पुराना भू-भाग है जो अति प्राचीन युग में टेथिस नामक महासागर के दक्षिण में अवस्थित था। इस भू-भाग का विस्तार बहुत अधिक था। इसके अंतर्गत दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया और अण्टार्कटिका भूखण्ड थे। इस सारे भूखण्ड को भू वैज्ञानिकों ने गोंडवाना लैण्ड के नाम से संबोधित किया है। कई युगों से भूमि के नग्नीकरण और मौसमी क्षति के परिणामस्वरूप ही भारत का आधुनिक रूप बना है। कठोर शिला समूह जो मौसमी प्रहारों का सामना कर चुके हैं, आज पहाड़ के रूप में खड़े हैं। उन्हीं में जो कुछ कोमल थे वे आज घाटी और मैदान बन गए हैं। यह भू-पपड़ी के एक स्थायी खण्ड का सूचक है। यद्यपि भ्रंश और दीर्घकालीन भू-चलनों का इस पर थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ा है, फिर भी उस कल्पकाल के भू-चलनों के कारण अधिक विचलित नहीं हुआ है। यह मुख्यत: पुरानी रवेदार और परिवर्तित शिलाओं से बना है, जो कुछ स्थानों के बाद के अवसादों और लावा के बहाव से आवृत है। उस कल्पकाल में समुद्री शिलाएं उनके किनारों में ऊपरी द्वितीय जीव कल्प और तृतीय जीव कल्प के रूप में जम गई हैं। लेकिन ये कुछ अवसादों गोंडवाना कल्प में नदियों और झील अवसादों से बनी हैं।

### मेघालय पठार के प्रायद्वीपीय पठार से अलग होने के कारण

मेघालय पठार भारत के मुख्य पठार से एक कांप के मैदान द्वारा अलग किया गया है। इसे गारो-राजमहल खण्ड कहते हैं। इस खण्ड का निर्माण भू-पृष्ठों में भ्रंश पड़ने से हुआ था जिसे गंगा नदी ने अपने निक्षेप द्वारा भर दिया।

## प्रायद्वीपीय पठार के भौतिक क्षेत्र

संपूर्ण प्रायद्वीपीय पठार गोंडवाना लैण्ड का एक भाग है जिसकी औसत ऊँचाई 600 से 900 मीटर है। इसकी प्रसिद्ध नदियाँ महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी की प्रवाह दिशा से इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस पठार का सामान्य ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। नर्मदा तथा ताप्ती नदियाँ पश्चिमी दिशा में बहती है। अत: पठार के इस भाग का ढाल पूर्व से पश्चिम की ओर है। यह पठार काफी कटा-फटा है जिसमें कई धरातलीय जटिलताएँ पाई जाती हैं। यहाँ कई पहाड़ियाँ तथा नदियाँ स्थित हैं जिन्होंने इस पठार को कई छोटे-छोटे भागों में बांट रखा है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैं-

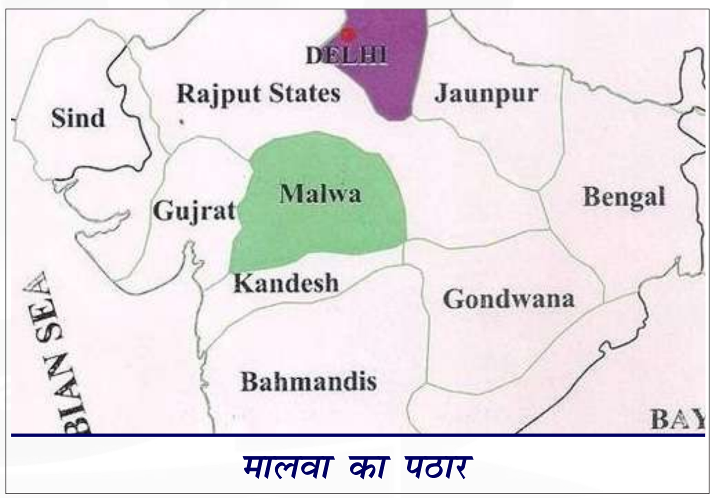


मालवा का पठार

- ***मालवा का पठार (Malwa Plateau)*** - यह पठार नर्मदा एवं ताप्ती नदियाँ तथा विंध्याचल पर्वत के उत्तर-पश्चिम में त्रिभुजाकार आकृति में विस्तृत है। इसके उत्तर-पश्चिम में अरावली पर्वत तथा उत्तर-पूर्व में गंगा का मैदान स्थित है। यह ग्रेनाइट जैसी कठोर चट्टानों से बना हुआ है। इसकी ऊँचाई लगभग 800 मीटर है। इसका सामान्य ढाल उत्तर-पूर्व दिशा में है। अत: इस पठार में बहने वाली नदियाँ उत्तर-पूर्व दिशा में प्रवाहित होकर यमुना नदी में जा मिलती हैं। इन नदियों के प्रवाह के कारण यह पठार अनेक स्थानों पर उबड़-खाबड़ बन गया है तथा बड़े-बड़े बीहड़ खण्ड पाए जाते हैं। चम्बल नदी द्वारा निर्मित इसी क्षेत्र की चम्बल घाटी एक बहुत ही विस्तृत क्षेत्र में बीहड़ के रूप में प्रसिद्ध है। बुंदेलखंड, रुहेलखंड तथा छोटा नागपुर इस पठार के पूर्वी विस्तार है।

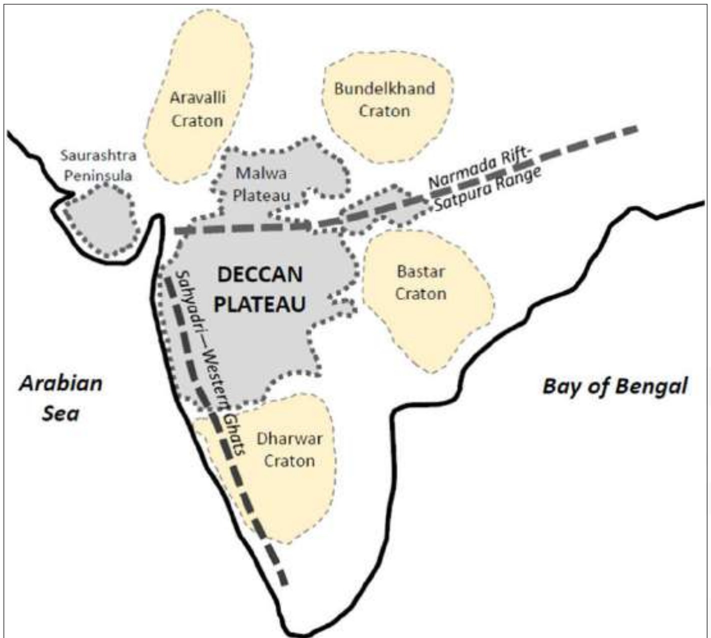


**दक्कन ट्रैप एवं अन्य पठार**

- ***दक्षिण का मुख्य पठार अथवा दक्कन ट्रैप***– यह पठार ताप्ती नदी के दक्षिण में त्रिभुजाकार रूप में फैला हुआ है। उत्तर-पश्चिम में सतपुड़ा एवं विंध्याचल, उत्तर में महादेव तथा मकालू, पूर्व में पूर्वी घाट तथा पश्चिम में पश्चिमी घाट इसकी सीमाएँ बनाते हैं। यह पठार मुख्यत: लावा से बना हुआ है। इसकी औसत ऊँचाई 600 मीटर है दक्षिण में यह पठार 1000 मीटर ऊँचा है परंतु उत्तर में इसकी ऊँचाई केवल 500 मीटर ही है। लगभग दो लाख वर्ग किमी. क्षेत्रफल वाले इस विशाल पठार की ढाल पश्चिम से पूर्व की ओर है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियाँ पश्चिम से पूर्व की दिशा में प्रवाहित होती है। महाराष्ट्र का पठार, आंध्र का पठार तथा कर्नाटक का पठार आदि इसके भाग हैं।
- ***छोटा नागपुर का पठार***– इसका विस्तार पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, ओडिशा व आंध्र के पूर्वोत्तर भाग तक है। इसके उत्तर-पश्चिम में सोन नदी बहती हुई गंगा में मिलती है। राजमहल की पहाड़ियाँ इसकी उत्तरी सीमा बनाती है। दामोदर नदी छोटा नागपुर पठार की प्रमुख नदी है। यह इस पठार के मध्य भाग में एक भ्रंश घाटी में से गुजरती हुई पश्चिम-पूर्व दिशा में बहती है। यहाँ पर गोंडवाना युग के कोयला भंडार हैं जो भारत को लगभग तीन चौथाई कोयला प्रदान करते हैं। उत्तर में हजारीबाग पठार तथा दक्षिण में रांची का पठार इसके प्रमुख भाग है। विभिन्न ऊँचाइयों वाले इस पठार का मध्य पश्चिमी भाग सर्वाधिक ऊँचा है इस भाग को **पाट क्षेत्र** कहा जाता है।
- ***मेघालय का पठार***– प्रायद्वीपीय पठार की चट्टानें पूर्व की ओर राजमहल पहाड़ियों से परे भी विस्तृत हैं और उत्तर-पूर्व में मेघालय पठार का निर्माण करती हैं। इसे शिलांग का पठार भी कहते हैं। इस पठार के पश्चिमी भाग में गारो पहाड़ियाँ, मध्यवर्ती भाग में खासी-जयंतिया तथा पूर्वी भाग में मिकिर पहाड़ियाँ हैं। मेघालय पठार का उत्तरी ढाल बहुत तीव्र है जहाँ पर ब्रह्मपुत्र नदी बहती है। इसका दक्षिणी ढाल मंद है और यहाँ पर सुरमा घाटी तथा मेघना घाटी स्थित हैं।
- ***बुंदेलखण्ड पठार***– यह उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में विंध्य पर्वत, उत्तर-पश्चिम में चंबल तथा दक्षिण-पूर्व में पन्ना-अजयगढ़ श्रेणी से घिरा है। बेतवा, धसान व केन द्वारा इसमें तीखे खंडों, क्षिप्तिकाओं जलप्रपातों का विकास किया गया है।
- ***बघेलखण्ड पठार***– इसका विस्तार सतना, रीवा एवं मिर्जापुर में है। इसकी ऊँचाई 150 से 1200 मीटर के मध्य है तथा उच्चावच में विषमता विद्यमान है। इसके दक्षिण में नर्मदा-सोन भ्रंश घाटी स्थित है। यहाँ कोयला भंडार की प्रचुरता है तथा नर्मदा, सोन, कर्मनाशा, टोंस, केन व रिहन्द जैसी नदियाँ प्रवाहित होती है।
- ***कर्नाटक पठार***– इसका विस्तार कर्नाटक तथा केरल के कन्नौर व कोझीकोड जिलों में है। इस पठार की औसत ऊँचाई 600-900 मीटर तक है। बाबाबूदन पहाड़ियों में स्थित मुलानगिरी इस प्रदेश की सर्वोच्च चोटी है। इस पठार के उत्तरी भाग को मलंद तथा दक्षिणी भाग को मैदान कहा जाता है। कावेरी व तुंगभद्रा यहाँ प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदियाँ हैं।
- ***तेलंगाना पठार***– तेलंगाना में विस्तृत इस पठार में मुख्यतया धारवाड़ व कुडप्पा शैलें पायी जाती है। इसके गोदावरी बेसिन में गोंडवाना क्रम की शैलें भी विद्यमान हैं।

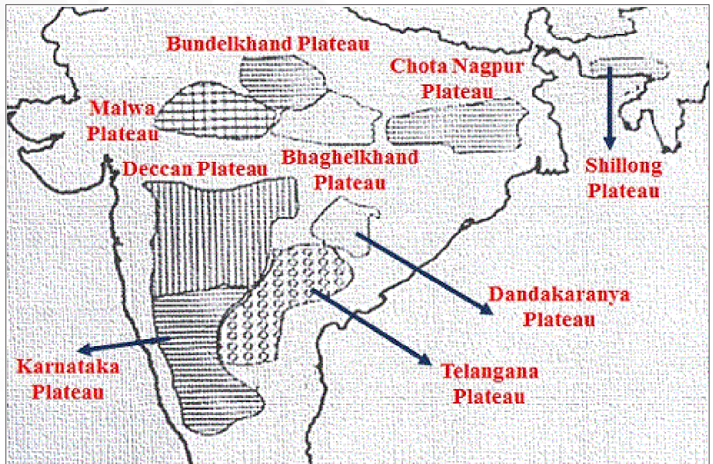


**छोटानागपुर पठार एवं अन्य पठार**

## प्रायद्वीपीय भारत के प्रमुख दर्रे

- ***भोर घाट***– लगभग 1000 मी. की ऊँचाई पर स्थित यह दर्रा मुंबई और पुणे को जोड़ता है। यह पश्चिमी घाट के व्यस्ततम् दर्रों में से एक है। इससे होकर रेल गाड़ियों एवं वाणिज्यिक वाहनों का उच्च आवागमन होता है।
- ***गोरान घाट***– माउंट आबू के दक्षिण में स्थित इस दर्रे द्वारा राजस्थान के उदयपुर शहर को सिरोही एवं जालौर शहर से जोड़ा जाता है। यह समुद्र सतह से लगभग 1200 मी. की ऊँचाई पर स्थित है। आसपास की निर्जन चट्टानों पर कंटीली झाड़ियाँ और नागफणी विद्यमान हैं।
- ***हल्दीघाट***– यह राजस्थान की अरावली श्रेणी का एक पर्वतीय दर्रा है। उदयपुर से लगभग 40 किमी. की दूरी पर स्थित यह दर्रा राजसमंद और पाली जिलों को जोड़ता है। इसका नामकरण यहाँ पाये जाने वाले हल्दी जैसी पीले रंगवाली मृदा से मानी जाती है। मेवाड़ के राजा राणा प्रताप सिंह और मुगल सम्राट अकबर के सेनापति एवं अंबेर के राजा मान सिंह के बीच सन् 1576 को हल्दी घाटी की लड़ाई यहीं हुई थी। इस प्रकार यह पर्वतीय दर्रा ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।
- ***पालघाट***– नीलगिरि पहाड़ियों के दक्षिण में स्थित इसे दर्रे पलक्कड घाट के नाम से जाना जाता है। समुद्र सतह से इसकी ऊँचाई 75 मी. से 300 मी. के बीच है। इसकी चौड़ाई लगभग 24 किमी. है। यह कोयम्बटूर (तमिलनाडु) शहर को केरल के कोच्चि एवं कोझीकोड शहरों से तथा तमिलनाडु को केरल के बंदरगाहों से जोड़ता है।
- ***थालघाट***– सहयाद्रि श्रेणी में स्थित इस दर्रे की उंचाई समुद्र तल से 1000

मी. से भी अधिक है। राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या 3 और भोपाल-इंदौर रेल लाइन इस दर्रे से होकर गुजरती है। यह दर्रा नासिक को मुंबई से जोड़ता है।

## *प्रायद्वीपीय पठार की पर्वत श्रेणियाँ*

**प्रायद्वीपीय पठार की पर्वत श्रेणियों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जा सकता है-**

- ***विंध्याचल***- विंध्याचल श्रेणी का विस्तार अव्यवस्थित रूप में है। यह नर्मदा नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर गुजरात से आरंभ होकर उसके समानांतर पूर्व दिशा में बढ़ती हुई उत्तर-पूर्व दिशा की ओर मुड़ जाती है तथा अंततः उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर तक अपना विस्तार प्राप्त करती है। विंध्याचल पर्वतमाला- विंध्याचल, भाण्डेर, केमूर तथा पारसनाथ की पहाड़ियों का सम्मिलित रूप है। विंध्याचल पर्वत में परतदार चट्टानें (लाल व बलुआ पत्थरों से युक्त) मिलती हैं। विंध्याचल पर्वत ही उत्तरी और दक्षिणी भारत को एक-दूसरे से स्पष्ट रूप से अलग करता है। इस पर्वत की औसत ऊँचाई 900 मीटर है।
- ***सतपुड़ा***- यह पर्वतमाला नर्मदा और ताप्ती नदियों के बीच पश्चिम में राजपीपला की पहाड़ियों से आरंभ होकर छोटानागपुर के पठार तक विस्तृत है। महादेव और मैकाल पहाड़ियाँ भी सतपुड़ा पर्वतमाला के अंतर्गत ही हैं। सतपुड़ा पर्वतमाला का भौगोलिक विस्तार 21° से 24° उत्तरी अक्षांश के बीच है और इसकी औसत ऊँचाई 760 मीटर है। 1350 मीटर ऊँची धूपगढ़ चोटी सतपुड़ा की सबसे ऊँची चोटी है। यह चोटी महादेव पहाड़ी पर स्थित है। सतपुड़ा की अमरकंटक चोटी (1,066 मीटर) से ही नर्मदा नदी का उद्गम होता है। सतपुड़ा पर्वतमाला के अंतर्गत जबलपुर के समीप धुँआधार जल प्रपात सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सतपुड़ा से संगमरमर की चट्टानें प्राप्त होती हैं।
- ***अरावली***- अरावली पर्वत श्रेणी अहमदाबाद के समीप राजस्थान के मरुस्थल की पूर्वी सीमा से लेकर उत्तर-पूर्व में दिल्ली के दक्षिण-पश्चिम तक विस्तृत है। अरावली पर्वतमाला की कुल लंबाई लगभग 880 किमी. है। आबू के निकट गुरूशिखर (1,772 मीटर) अरावली की सबसे ऊँची चोटी है। अरावली की औसत ऊँचाई 300 से 900 मीटर के बीच है। अरावली श्रेणी जल विभाजक के रूप में कार्य करती है। इसके पश्चिम की ओर माही तथा लूनी नदियाँ निकलती हैं, जो अरब सागर में गिरती हैं। पूर्व की ओर मुख्य रूप से बनास नदी निकलती है, जो चम्बल की सहायक नदी का कार्य करती है। यह सभी नदियाँ अस्थायी (मौसमी) हैं। इन पर्वतों के कारण संपूर्ण राजस्थान दो भागों में बंट गया है– उत्तर-पश्चिमी और दक्षिण-पूर्वी।

**मेवाड़ और मारवाड़ के विभाजक के रूप में अरावली**

राजस्थान के लगभग मध्य में दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर अरावली पर्वतशृंखला फैली हुई है। यह पर्वतशृंखला मेवाड़ (उदयपुर, चित्तौड़गढ़, भीलवाड़ा एवं डुंगरपुर) एवं मारवाड़ (जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, नागौर, पाली आदि) को भौगोलिक, जलवायविक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से दो भागों में विभाजित करता है। मेवाड़ प्रदेश में अति आर्द्र जलवायु पायी जाती है। इस प्रदेश का औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 34°C से 36°C तक तथा शीत ऋतु में 14°C से 17°C के मध्य पाया जाता है। प्रदेश में वर्षा का औसत 80 सेमी. तक रहता है। यह प्रदेश प्राकृतिक वनस्पति की दृष्टि से राज्य का सर्वाधिक समृद्ध भाग माना जाता है। मारवाड़ी प्रदेश में अर्द्धशुष्क जलवायु पायी जाती है। इस प्रदेश का औसत तापमान ग्रीष्म ऋतु में 32°C से 36°C तथा शीत ऋतु में 10°C से 17°C तक पाया जाता है। इस प्रदेश में अनिश्चित एवं तूफानी वर्षा होती है। इस प्रदेश में कांटेदार पेड़ पाये जाते हैं।

- अरावली के पश्चिमी क्षेत्र में मारवाड़ी भाषा बोली जाती है एवं पूर्वी क्षेत्र में मेवाड़ी भाषा बोली जाती है।

- ***सौराष्ट्र और कच्छ का रन***- थार के मरुस्थल के दक्षिण-पश्चिम में गिरनार स्थित है। इसकी लहरदार धरती मध्य में प्रायः 914 से 1220 मीटर ऊँची है। सौराष्ट्र के उत्तर में कच्छ का उजाड़ रेतीला और पहाड़ी भाग है। दक्षिण-पश्चिम मानसून के लौटने के समय तक यह खाड़ी कीचड़ से भरा रहता है। खारे दलदल से भरा हुआ यह प्रदेश सूर्य की गर्मी पाकर सफैद नमक के कठोर तल का रूप धारण कर लेता है।

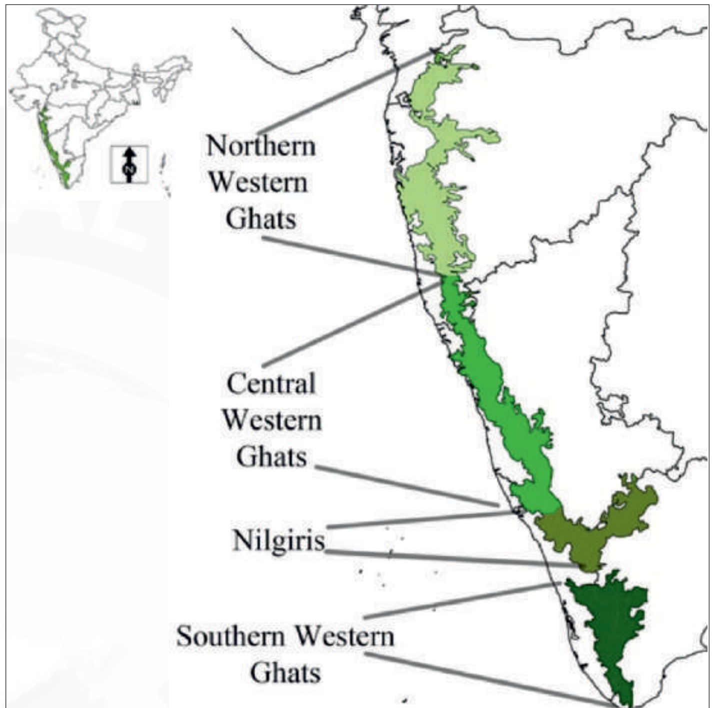


**पश्चिमी घाट**

- ***हरिश्चन्द्र श्रेणी***- दक्षिणी महाराष्ट्र के उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व दिशा में विस्तृत यह पर्वतीय श्रेणी पुणे व उस्मानाबाद जिलों में विस्तृत है।
- ***कुद्रेमुख श्रेणी***- कर्नाटक स्थित इस श्रेणी में लौह अयस्क (हेमेटाइट एवं मैग्नेसाइट) की प्रचुरता है। यहाँ से प्राप्त लौह अयस्क का मंगलौर बंदरगाह से निर्यात किया जाता है।
- ***पुष्पागिरी***- यह पश्चिमी घाट की सर्वोच्च चोटियों में से एक है। इसकी ऊँचाई 1714 मीटर है। यहाँ द्रविड़ जनजातियाँ निवास करती हैं।
- ***सल्हर***- यह महाराष्ट्र में मालेगाँव नासिक के बीच स्थित एक चोटी है। इसकी ऊँचाई समुद्र तल से 1567 मीटर हैं।
- ***कल्सुवाई***- यह महाराष्ट्र में स्थित पश्चिमी घाट में है इसकी ऊँचाई समुद्रतल से 1696 मीटर हैं।
- ***पश्चिम घाट या सह्याद्री***- पश्चिमी घाट, दक्कन पठार की पश्चिम सीमा से पश्चिमी तट के समानांतर विस्तृत है। यह उत्तर में ताप्ती नदी घाटी से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक 1,600 किमी. की लंबाई में विस्तृत है। भौगोलिक संरचना की दृष्टि से पश्चिमी घाट को तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है- उत्तरी सह्याद्री, मध्य सह्याद्री और दक्षिणी सह्याद्री। उत्तरी सह्याद्री ताप्ती नदी से शुरू होकर मालप्रभा नदी के उद्गम स्थल तक 650 किमी. की लंबाई में विस्तृत है। उत्तरी सह्याद्री की औसत ऊँचाई 550 मीटर है। यहीं से गोदावरी, भीमा, कृष्णा एवं पूर्वा नदियों का उद्गम होता है। कलसुबाई, सालहेर तथा महाबलेश्वर उत्तरी सह्याद्री की प्रमुख चोटियाँ हैं। **थालघाट** और **भोरघाट** उत्तरी सह्याद्री के दो प्रमुख दर्रे हैं। मुम्बई से पूणे का मार्ग भोरघाट दर्रे से ही बनता है।

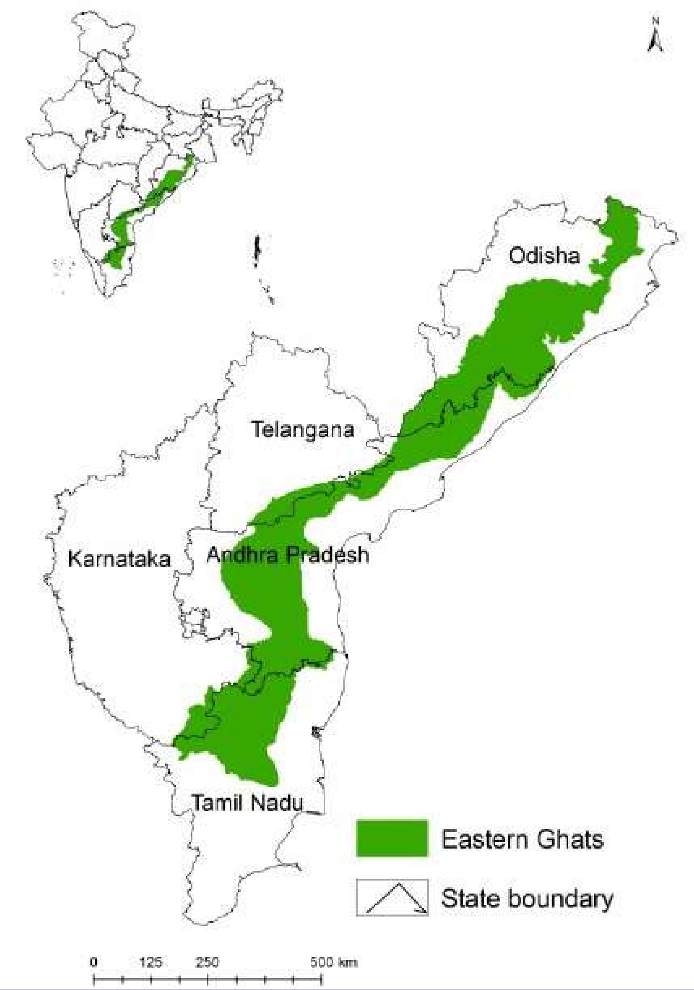


पूर्वी घाट

- मध्य सह्याद्री मालप्रभा नदी के उद्गम स्थल से लेकर पालघाट दर्रे के बीच 650 किमी. की लम्बाई में विस्तृत है। यह भाग काफी उबड़-खाबड़ धरातल वाला है तथा वनों से आच्छादित है। मध्य सह्याद्री की औसत ऊँचाई 1220 मीटर है। कुद्रेमुख और पुष्पगिरि यहाँ की प्रमुख चोटियाँ हैं। मध्य सह्याद्री की चट्टानें ग्रेनाइट और नीस प्रकार की हैं। इसके पूर्व की ओर तुंगभद्रा और कावेरी नदियाँ प्रवाहित होती हैं।
- दक्षिण सह्याद्री नीलगिरि पहाड़ियों से लेकर कन्याकुमारी तक 290 किमी. की लम्बाई में विस्तृत हैं। इस भाग में नीलगिरि पहाड़ी के साथ-साथ अन्नामलाई की पहाड़ी भी हैं। अन्नाईमुड्डी दक्षिणी सह्याद्री की सबसे ऊँची चोटी है। दक्षिणी सह्याद्री के उत्तर-पूर्व में पालनी की पहाड़ियाँ हैं तथा दक्षिण में इलायची की पहाड़ियाँ हैं। पश्चिमी घाट दक्षिण में पूर्वी घाट से मिलकर एक पर्वतीय गाँठ नीलगिरि का निर्माण करता है। जिसकी सर्वोच्च चोटी डोडाबेट्टा (2637 मीटर) हैं।
- ***पूर्वी घाट***- पूर्वी घाट का विस्तार 1300 किमी. की लंबाई में महानदी से लेकर नीलगिरि की पहाड़ियों तक है। पूर्वी घाट की औसत ऊँचाई 615 मीटर है। पूर्वी घाट के अंतर्गत दक्षिण से उत्तर की ओर पहाड़ियाँ को नीलगिरि, पालकोंडा, अन्नामलाई, जावादी और शेवराय की पहाड़ियों के नाम से जाना जाता है। गोदावरी और कृष्णा नदियों के डेल्टा के बीच पूर्वी घाट का स्तर समान हो गया है। विशाखापट्टनम् (1680 मीटर) पूर्वी घाट का सबसे ऊँचा स्थल है और इसके बाद महेंद्रगिरि (1501 मीटर) सबसे ऊँची चोटी है। पूर्वी घाट का निर्माण चार्कोनाइट्स और खोंडालाइट्स चट्टानों से हुआ है। पूर्वी घाट में चंदन के वन भी मिलते हैं। कावेरी नदी द्वारा निर्मित होजेकल जल प्रपात पूर्वी घाट में ही है।

### *प्रायद्वीपीय पठार की विशेषताएँ*

वर्तमान के दक्षिणी प्रायद्वीप की उत्पत्ति लगभग 50 करोड़ वर्ष पूर्व मानी जाती है। भूवैज्ञानिकों के अनुसार यह भाग सदा से ही स्थल खण्ड रहा है और कभी भी पूरी तरह सागर तल के नीचे नहीं डूबा अर्थात् यह पर्वत निर्माणकारी भूसंचलन क्रियाओं के प्रभाव से पूर्णत: मुक्त रहा है। इसी कारण यह एक स्थिर या दृढ़ भूखण्ड बन गया है जहाँ की अधिकतर चट्टानें मोड़दार न होकर क्षैतिज अवस्था में पाई जाती हैं। अपक्षयन के कारण यहाँ पर्वतों की चोटियाँ नुकीली न होकर प्राय: समतल पाई जाती हैं और पर्वत अवशिष्ट पर्वत के रूप में उपस्थित हैं। इनके मुख्य उदाहरण अरावली पर्वत, पूर्वी घाट तथा राजमहल की पहाड़ियाँ हैं।

- प्रायद्वीपीय भारत में भूगर्भिक हलचलों के प्रमाण लम्बरूप में मिलते हैं जिनके फलस्वरूप कई क्षेत्रों में भ्रंश पाए जाते हैं। इन भ्रंशों की उत्पत्ति से भ्रंशित घाटियों का निर्माण हुआ जिनके बीच का भाग धंस गया और उसमें जो चट्टानें बनीं उन्हें कालांतर में गोंडवाना चट्टानें कहा गया। इनका विस्तार, दामोदर, सोन, महानदी और गोदावरी की घाटियों में भी हुआ। इन चट्टानों में ही तत्कालीन वनस्पति के दब जाने से कोयले की उत्पत्ति हुई।
- दूसरी भूगर्भिक क्रिया ज्वालामुखी के उद्गार के रूप में हुई जिसमें भूगर्भ का पिघला हुआ पदार्थ धरातल पर बहकर फैल गया। इसकी मोटाई 3,000 मीटर तक आंकी गई है। कहीं-कहीं तो यह इससे भी अधिक गहरा हो गया है। इन लावा के जमावों ने प्रायद्वीप के अधिकांश भाग को पठार का रूप दे दिया। पश्चिमी घाट और अजंता की पहाड़ियाँ इसी लावा के पठार के रूप में अवस्थित पाई जाती है। इस क्षेत्र की अधिकांश चट्टानें बेसाल्ट हैं।
- इस प्राचीनतम भूखण्ड की रचना अत्यंत कठोर चट्टानों से हुई है जो आर्कियन और पूर्व केम्ब्रियन युगों में मानी जाती हैं। कालांतर में ये चट्टानें गरमी और दबाव पाकर परिवर्तित हो गई। जहाँ-तहाँ इनमें ग्रेनाइट और नीस चट्टानें भी पाई जाती है। उत्तरी भाग में स्लेट और संगमरमर की चट्टानें, पश्चिम की ओर लावा मिट्टी तथा पूर्वी भाग में लाल लैटेराइट, ग्रेनाइट मिट्टी, चूने का पत्थर और कोयला प्रधान चट्टानें मिलती है।
- वर्तमान में दक्षिणी प्रायद्वीप का अधिकांश भाग काफी घिस गया है जिसमें इसकी आधार शिलाएँ (आग्नेय और कायांतरित) धरातल पर दृष्टिगोचर होने लगी है। इस पर बहने वाली नदियाँ भी अपने आधार तल तक पहुँच गई हैं।

### *प्रायद्वीपीय पठार का महत्त्व*

खनिज संपदाओं से परिपूर्ण प्रायद्वीपीय भारत की देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। अपनी अवस्थिति और चट्टानों के संघटन (Formation) के कारण प्रायद्वीपीय भारत को निम्न महत्ता प्राप्त हैं-

- भारत का प्रायद्वीपीय प्रदेश धात्विक और अधात्विक दोनों ही प्रकार के खनिजों से परिपूर्ण है। यहाँ पाये जाने वाले खनिज अयस्कों में लोहा, मैगनीज, ताँबा, बॉक्साइट, क्रोमियम, सोना, चाँदी, जस्ता, शीशा और पारा शामिल हैं। साथ ही यहाँ कोयले, हीरे, अभ्रक, बहुमूल्य पत्थर, संगमरमर, इमारती और सजावटी पत्थर की प्रचुरता है। भारत का 98 प्रतिशत गोंडवाना कोयला भंडार प्रायद्वीपीय प्रदेश में ही पाया जाता है।
- प्रायद्वीपीय भारत का एक बहुत बड़ा भाग काली मृदा (रेगर मृदा) से ढका है। इस मृदा के विशेष गुण इस पर कपास, मिलेट, मक्के, दलहनों, नारंगी

और नींबूजात फलों की खेती को प्रोत्साहित करते हैं। वैसे इस प्रदेश के कुछ हिस्सों में चाय, कॉफी, रबड़, काजू, मसालों, तंबाकू, मूंगफली और तिलहनों की खेती की जाती है।

- प्रायद्वीपीय भारत के दक्षिणी भाग तथा पूर्वी भागों में आर्कियन, धारवाड़, कुडप्पा और विंध्यन शैलों से निर्मित विस्तृत क्षेत्र विद्यमान है जिन पर समयांतराल में लाल, भूरी एवं लेटेराइट मृदाओं का विकास हुआ है। ये मृदाएँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधार है।
- पश्चिमी घाट, नीलगिरि और पूर्वी घाट घने ऊष्णकटिबंधीय आर्द्र पर्णपाती और आर्द्र-चीर हरित वनों से ढके हैं। इन वनों से सागवान, सखुआ, चंदन, एबोनी, महोगनी, बांस, बेंत, रोजवुड, आयरन वुड और विभिन्न वन संपदाओं की प्राप्ति होती है।
- पूरब दिशा की ओर बहने और बंगाल की खाड़ी में प्रवाहित होने वाली नदियाँ इस प्रदेश में महाखण्डों, जलप्रपातों, क्षिप्तिकाओं का निर्माण करती हैं, जिन्हें जगह-जगह पनबिजली उत्पादन के लिए उपयोग में लाया गया है। पश्चिमी घाट से उद्गमित नदियाँ पनबिजली उत्पादन के लिए विशेषकर उपयोगी हैं तथा इनसे कृषिगत फसलों एवं फलोद्यानों को सिंचाई सुविधा भी उपलब्ध होती है।
- इस प्रदेश में अनेक पहाड़ी पर्यटन स्थल एवं शरणस्थलियाँ (Resorts) विद्यमान हैं, जिनमें उद्मंडलम् (ऊटकमंड), ऊटी, कोडाइकनाल, महाबालेश्वर, खण्डाला, मेथेरॉन, पंचमढ़ी और माऊंट आबू सबसे महत्त्वपूर्ण हैं।
- पश्चिमी एवं पूर्वी घाटों में उच्च कोटि के औषधीय गुण वाले पौधे पाये जाते हैं।
- प्रायद्वीप के पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्रों में अन्यान्य अनुसूचित जनजातियों का निवास है। विंध्य केदक्षिण में द्रविड़ संस्कृति की प्रमुखता हैं।

| भारत के तटीय मैदान |
|---|
| • भारत की तटरेखा लगभग 6000 किमी. लम्बी है जो पश्चिम में कच्छ के रन से पूर्व में गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा तक विस्तृत है। प्रायद्वीपीय पठार की पश्चिमी एवं पूर्वी सीमा तथा भारतीय तटरेखा के बीच स्थित मैदान को पश्चिमी तटीय मैदान तथा पूर्वी तटरेखा एवं पूर्वी घाट के बीच स्थित मैदान को पूर्वी तटीय मैदान कहते हैं। ये मैदान या तो क्रिया से बने हैं या नदियों द्वारा निक्षेप क्रिया से बने हैं। |
| • इन मैदानों में धरातल तथा संरचना संबंधी विभिन्नताएँ स्पष्ट दिखाई देती है। प्राय्द्वीपीय पठार की पूर्वी व पश्चिमी सीमाओं पर तटीय मैदान हैं। |

## भारत के तटीय मैदान

### पूर्वी तट

पूर्वी तट पर महानदी, गोदावरी, कृष्णा व कावेरी नदियों के डेल्टा हैं। इसका उत्तरी भाग काकीनाडा तट तथा दक्षिणी भाग कोरोमंडल तट कहलाता है।

- ***काकीनाडा तट***- यह गंगा के डेल्टा से लेकर कृष्णा नदी के डेल्टा तक विस्तृत है। यहाँ कई नदियों द्वारा अपने डेल्टाओं का निर्माण किया गया है। इस छिछले तट पर प्रवाल भित्ति का अभाव पाया जाता है। काकीनाडा, विशाखापत्तनम, गोपालपुर, गंजाम, पुरी, पारादीप, हल्दिया तथा कोलकाता आदि इस तट के प्रमुख बंदरगाह हैं।
- ***कोरोमंडल तट***- यह कृष्णा के डेल्टा से कुमारी अंतरीप तक फैला हुआ है। इस छिछले तथा बलुई तट पर कांप मिट्टी के मैदान है। वानटीबू, पामवन तथा श्रीहरिकोटा यहाँ स्थित प्रमुख द्वीप हैं। मन्नार, पाक, आदमसेतु तथा पाक जलसंधि इस तट की मुख्य खाड़ियाँ हैं। इस तट पर स्थित प्रमुख बंदरगाहों में चेन्नई, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी, धनुषकोटि, नागापट्टनम, कराईकल, पोर्टोनोवा व कुड्डलूर, आदि शामिल हैं।

### पश्चिमी तट

खंभात की खाड़ी से कुमारी अंतरीप तक विस्तृत पश्चिमी तट का उत्तरी भाग कोंकण तट तथा दक्षिणी भाग मालाबार तट कहलाता है। पश्चिमी घाट को सामान्यत: चार भागों में विभाजित किया गया है-

1. ***काठियावाड़ तट***- सौराष्ट्र से सूरत तक विस्तृत इस तट पर कोरी, क्रीक व खंभात की खाड़ियाँ हैं। ये तट अत्यंत कटा-फटा है। कारुम्भर, नोरा, शियाल, वारभे तथा वेदी पिरोटिन (कच्छ की खाड़ी) इसके प्रमुख द्वीप हैं। तथा मांडवी, कांडला, द्वारका, सिक्का, पोरबन्दर, सोमनाथ, भड़ौच, सूरत, ओखा आदि इस तट के प्रमुख बंदरगाह है। पूर्वी गुजरात का अरासुर पर्वत, सतपुड़ा की राजपीपला पहाड़ियाँ, बलसाड़ जिले की परनेरा पहाड़ियाँ, दक्षिणी भाग की सहयाद्री, गिरनार पहाडियाँ तथा काठियावाड़ की महादेव पहाड़ियाँ इसकी प्रमुख उच्च भूमियाँ है।
2. ***कोंकण तट***- यह सूरत से गोवा तक एक संकरी पट्टी के रूप में फैला है। सालसेट तथा एलीफेंटा नामक द्वीप मुम्बई के निकट स्थित हैं। माहिम, रत्नगिरि, मुम्बई, मालवन, मार्मगोवा आदि इस तट के प्रमुख बंदरगाह हैं।
3. ***मालाबार तट***- यह मंगलुरू से कुमारी अंतरीप तक फैला हुआ है। अत्यंत कटे-फटे इस तट पर पश्चिमी घाट से उद्गमित होने वाली छोटी-छोटी तीव्र वेग वाली नदियों द्वारा बहाकर लाए गए अवसादों से कांप मिट्टी के कई मैदानों का निर्माण हुआ है। इसकी लम्बाई 500 किमी. है। इस समस्त तट पर अनेक बालुका स्तूप निर्मित हो गये हैं। इस तट पर खाड़ियों, झीलों व लैगूनों की बहुलता है। कोच्चि, कोंझीकोड, अलेखी, मंगलूरू, कोल्लम, होनावर, भटकल, एर्णाकुलम, तिरूवनंतपुरम् आदि इस तट के प्रमुख बंदरगाह हैं। तट के सहारे निर्मित लैगूनों को यहाँ कयाल कहा जाता है। बेम्बनाद व अष्टमुडी प्रमुख लैगून है।
4. ***दक्षिणी तट***- महाद्वीपीय मग्नतट पर समुद्र की औसत गहराई 92 मीटर हैं। यहाँ द्वीपों का नितांत अभाव है। श्रीलंका को मुख्य भूमि से जोड़ने वाला सेतुबंध लहरों एवं धाराओं के प्रभाव से निर्मित एक भित्ति (दीवार) है।

| भारत के तटीय मैदान की विशेषताएँ |
|---|
| 1. यह क्षेत्र अत्यंत प्राचीन चट्टानों से बना होने के कारण खनिज पदार्थों में धनी है। कर्नाटक में सोना, मध्य प्रदेश व छत्तीसगढ़ में हीरा, संगमरमर, चूने का पत्थर, मैंगनीज, आंध्रप्रदेश में कोयला, सोना, लोहा, क्रोमियम, मध्य प्रदेश, झारखंड और ओडिशा में लोहा पाया जाता है। |
| • संगमरमर, कोयला, बलुआ पत्थर, चीनी मिट्टी, अग्नि मिट्टी, अभ्रक, ग्रेफाइट, कोरंडम, रॉक फॉस्फैट, ताँबा आदि भी यहाँ पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। |
| 2. लावा मिट्टी रासायनिक तत्वों में धनी होने के कारण, कपास के उत्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण में लेटेराइट मिट्टी वाले पहाड़ी भागों में चाय, कहवा तथा रबड़ का उत्पादन होता है। पहाड़ी ढालों पर गरम मसाले, काजू, केला और आम भी पैदा किए जाते हैं। निम्न भागों में नारियल, गन्ना, धान, कपास, सुपारी, साबूदाना, अन्नास, तम्बाकू, मूंगफली और तिलहन पैदा किये जाते हैं। |
| 3. प्रायद्वीप में साल, सागवान, शीशम तथा चंदन के बहुमूल्य वन मिलते हैं। लाख, बीड़ी बनाने के लिए चौड़ी पत्ती वाले टीमरू और तेंदू वृक्ष, महुआ, अग्नि घास, रोशा घास, हरे बहेड़ा, शहद, आंवला, चिरोंजी आदि उपजें भी प्राप्त की जाती हैं। |
| 4. यहाँ अब ढाक, अरण्ड, शहतूत, पलास, आदि वृक्षों के कुंज लगा कर विविध प्रकार के रेशम के उत्पादन में तेजी से वृद्धि की जा रही है। |
| 5. मुख्य पठारों पर उटकमण्ड, पंचमढ़ी, महाबलेश्वर, आदि स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान पायें जाते हैं। |
| 6. भारत का उत्तम श्रेणी का 98 प्रतिशत कोयला पठारी भाग में मुख्यत: दामोदर, बराकर एवं दामुदा शृंखलाओं के जमावों में पाया जाता है। इन जमावों के साथ-साथ कठोर क्वार्ट्जाइट, अग्नि मिट्टियाँ एंव बालू शिलाएँ भी पाई जाती हैं। |

7. पठारी भागों से नीचे उतरते समय अनेक नदियाँ अपने मार्ग में झरने (शरावती पर जोग या गरसोप्पा, पेरियार पर पेरियार, कावेरी पर शिवसमुद्रम) बनाती हैं जिनसे जलविद्युत् शक्ति उत्पन्न की जाती है। इनमें काली नदी, काबिनी, मोटार, कुन्दा परम्बिकुलम्, इदीकी, कोयना और टाटा जल विद्युत शक्ति योजनाएँ उल्लेखनीय हैं। पश्चिमी घाटों पर होने वाली अधिक वर्षा को बाँध बनाकर रोका गया है। परन्तु आज भी यहाँ के संसाधनों का समुचित विकास नहीं हो पाया है, क्योंकि उपजाऊ भूमि सीमित होने और धरातल ऊँचा-नीचा होने के कारण यातायात के साधनों का समुचित विकास पूरी तरह संभव नहीं है। सतपुड़ा पर्वत प्राचीनकाल से ही उत्तरी भारत और दक्षिणी पठार के बीच सांस्कृतिक अवरोध रहा है।

- अब अधिकांश पठार पर सड़क व रेल यातायात का विस्तार कर नदी घाटियाँ में विकसित सघन कृषि फल व सब्जियों की फार्मिंग कृषि को बढ़ावा देकर एवं खनिजों पर आधारित धातु शोधन, लौह इस्पात इंजीनियरिंग एवं पूंजीगत माल के उद्योगों की स्थापना कर दक्षिण के पठार पर विकसित अर्थतंत्र के क्षेत्रों को तेजी से विकसित किया जा रहा है।

## तटीय प्रदेशों का आर्थिक महत्त्व

- भारत की मुख्यभूमि की तटरेखा लगभग 5700 किमी. लंबी है और यदि द्वीपों की तटरेखाओं को मिला लें तो ये 7500 किमी. से अधिक हो जाती है।
- भारत की जनसंख्या का लगभग एक चौथाई भाग तटीय भागों में ही निवास करता है जो अपने आपमें यह सिद्ध करता है कि तटीय भाग आर्थिक विकास की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्रों में से एक है। भारत के समुद्री व्यापार हेतु सभी बंदरगाह तटीय प्रदेशों में ही स्थित हैं। इनके अतिरिक्त भारत के तटीय भागों में खनिज एवं पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस के व्यापक भंडार भी पाए जाते हैं। भारत के कई महत्त्वपूर्ण भारी उद्योग तटीय प्रदेशों में ही स्थित हैं। भारत के चार में से तीन महासागर तटीय भागों पर ही स्थित हैं, जो यह संकेत करते हैं कि तटीय प्रदेश आर्थिक विकास की दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त प्रदेश हैं।

## भारतीय द्वीप

- भारत में मुख्य स्थल के अतिरिक्त हिंद महासागर में बहुत से द्वीप हैं। भारत में कुल 247 द्वीप हैं जिनमें से 204 द्वीप बंगाल की खाड़ी में तथा शेष 43 द्वीप अरब सागर में हैं। बंगाल की खाड़ी के द्वीप जलमग्न टर्शियरी पर्वतमाला के ऊपरी भाग हैं, जबकि अरब सागर के द्वीप प्राचीन भू-खण्ड के अवशिष्ट भाग हैं और प्रवाल भित्तियों द्वारा बने हैं।

### बंगाल की खाड़ी के द्वीप

बंगाल की खाड़ी के तट के निकट कई द्वीप हैं। गंगा के डेल्टाई भाग में द्वीपों की संख्या अधिक है। हुगली नदी के सामने 20 किमी. लम्बा गंगा सागर नामक द्वीप है। चौबीस परगना के तट पर अनेक मग्नतटीय द्वीप पाये जाते हैं। हाल ही में यहाँ पर न्यूमर द्वीप का निर्माण हुआ है। महानदी-ब्राह्मणी डेल्टा के निकट भी छोटे-छोटे द्वीप पाए जाते हैं। नेल्लौर के निकट श्रीहरिकोटा द्वीप 50 किमी. लम्बा है जहाँ पर भारत का अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र है। तमिलनाडु तथा श्रीलंका के बीच मन्नार की खाड़ी में अनेक छोटे-छोटे प्रवाल द्वीप पाए जाते हैं।

- तट से दूर अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह स्थित हैं। अंडमान द्वीप समूह का विस्तार 10º उत्तर से 14º उत्तरी अक्षांश तथा 92º से 93º पूर्वी देशांतरों के बीच है। इस समूह के द्वीप लगभग 300 किमी. लम्बे 8,300 वर्ग किमी. क्षेत्र में फैले हुए हैं। ये तीन मुख्य समूहों में बंटे हुए हैं। इनमें उत्तरी अंडमान, मध्यवर्ती अंडमान तथा दक्षिणी अंडमान सम्मिलित हैं। यह द्वीप टर्शियरी युग के बलुआ पत्थर, चूना-पत्थर तथा शैल के बने हुए हैं। ये काफी कटे-फटे हैं। यहाँ पर अधिकतम ऊँचाई 730 मीटर है। ये प्रवाल भित्तियों से घिरे हुए हैं। यहाँ पर घने वन उगे हुए हैं। अंडमान द्वीप समूह के दक्षिण में निकोबार द्वीप समूह है।

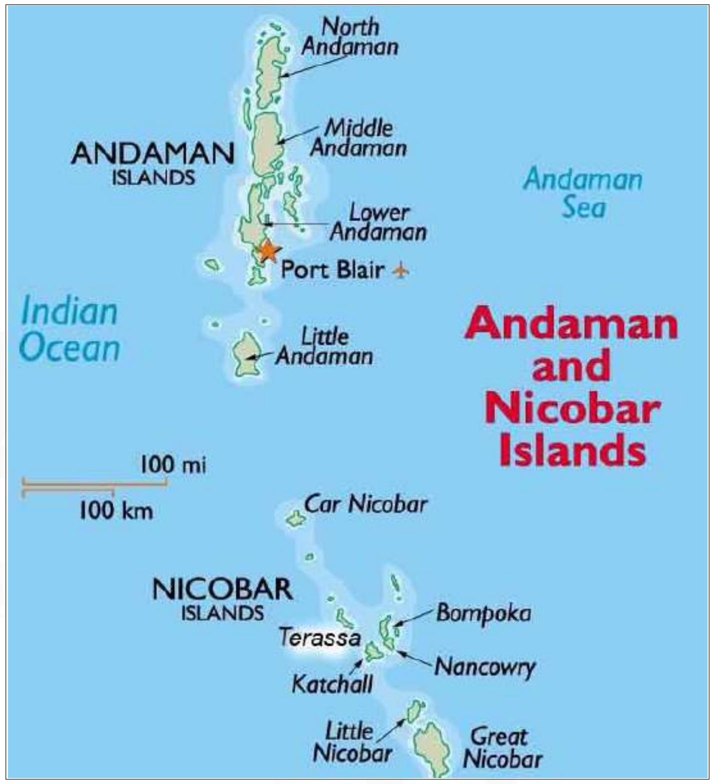


- यह 19 द्वीपों का समूह है जो 6º30' उत्तर से 9º30' उत्तरी अक्षांश के बीच स्थित है। इस द्वीप समूह के उत्तरी भाग को कार निकोबार तथा दक्षिणी भाग को महान् निकोबार कहते हैं। इनका क्षेत्रफल 168 वर्ग किमी. तथा 200 वर्ग किमी. है। इस समूह का सबसे बड़ा द्वीप समूह महान् निकोबार है, जिसका क्षेत्रफल 862 वर्ग किमी. है। अन्य महत्त्वपूर्ण द्वीपों का नाम तिलानचोंग, चनूम्ता, टैरेसा, कमोरटा, कचाल, नानकरोड़ी, ट्रिकेंट आदि हैं। पोर्टब्लेयर के उत्तर में स्थित बैरन तथा नारकोडम द्वीप ज्वालामुखी हैं। ओंग, जारवा तथा सेंटीनलीज अण्डमान व निकोबार द्वीपसमूह की बची हुई मूल जनजातियाँ हैं।

### अरब सागर के द्वीप

अरब सागर में काठियावाड़ के दक्षिणी तथा पूर्वी तटों के निकट कई चट्टानी द्वीप मिलते हैं। यहाँ पर **पीरम** तथा **भौंसल** द्वीप प्रमुख हैं। मुम्बई के निकट **हैनरे, केनरे, बुचर, स्वेलीफैण्टा** तथा **अरनाला द्वीप** प्रमुख हैं। मंगलौर के उत्तर में **भटकल द्वीप** है। चट्टानी द्वीपों के अतिरिक्त कांप बिछे द्वीप भी हैं। खम्भात की खाड़ी में डयू द्वीप 12 किमी. लम्बा है। कच्छ की खाड़ी में **वैद, नोरा, पिरटान** तथा **करुभार द्वीप** है। नर्मदा तथा तापी नदियों के मुहाने के निकट **खादियावेट, अलियावेट** आदि द्वीप भी कांपयुक्त द्वीप हैं।

- केरल तट से कुछ दूरी पर पश्चिम की ओर लक्षद्वीप समूह है। पहले इस द्वीप समूह को लक्षद्वीप, मिनीकाय तथा अमीनदीवी नामों से पुकारा जाता था। ये द्वीप 8º उत्तरी अक्षांश से 12º13' उत्तरी अक्षांशों के बीच फैले हुए हैं। ये छोटे-छोटे द्वीप हैं और इनका कुल क्षेत्रफल केवल 32 वर्ग किमी. है। सबसे बड़ा द्वीप लक्षद्वीप है। यहाँ की राजधानी कावरती इसी द्वीप पर स्थित है। अमीनदीवी एक छोटा सा द्वीप है। सुदूर दक्षिण में मिनीकाय द्वीप है जिसका क्षेत्रफल 45 वर्ग किमी. है।

# अपवाह प्रणाली
# (Drainage System)

## परिचय (Introduction)

भारत में मानव सभ्यता के विकास एवं देश की आर्थिक प्रगति में नदियों का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है जो यहाँ आदि काल से ही मानव के जीवन और गतिविधि का साधन रहीं हैं। भारतीय नदियों द्वारा न केवल सिंचाई की जाती है, वरन् बाँधों द्वारा इनके मार्गों में पड़ने वाले जलप्रपातों के माध्यम से जल-विद्युत शक्ति भी प्राप्त की जाती है। नदियाँ आवागमन की प्रमुख साधन भी हैं। प्राचीन काल में इन्हीं नदियों के द्वारा आंतरिक व्यापार होता था, किंतु रेलमार्गों के निर्माण और जलमार्गों के प्रति उपेक्षा भाव होने से इस महत्त्वपूर्ण साधन का विकास कम हो गया। चूँकि भारत की प्राचीन सभ्यता के केंद्र इन्हीं नदियों की घाटियों में रहे हैं, अतएव आज भी भारत के अधिकांश प्राचीन मंदिर, धार्मिक और व्यावसायिक केंद्र इन्हीं नदियों के तट पर पाये जाते हैं। ये नदियाँ मानव को मछली के रूप में भोजन देती रही हैं। उत्तर भारत में (विशेषकर पंजाब, हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश में) नहरों का जाल सा बिछा है। गंगा-ब्रह्मपुत्र मैदान तथा दक्षिणी भारत में उर्वर नदी घाटियों का विकास नदियों द्वारा ही हुआ है।

## अपवाह तंत्र के प्रकार

***अपवाह तंत्र के प्रमुख रूप से चार प्रकार होते हैं-***

1. ***वृक्षाकार अपवाह तंत्र***- जब अपवाह की आकृति वृक्ष के समान होती है तो उसे वृक्षाकार अपवाह तंत्र कहा जाता है।
2. ***अभिकेंद्री अपवाह तंत्र***- जब नदियाँ प्रवाहित होते हुए किसी गर्त अथवा झील में समाहित हो जाती हैं तो इस प्रकार के अपवाह तंत्र को अभिकेंद्री अपवाह तंत्र कहा जाता है।
3. ***आरीय अपवाह तंत्र***- जब नदियाँ किसी पर्वत के चारों ओर विकीर्ण होती हैं तो इस प्रतिरूप को अरीय प्रतिरूप कहते हैं।
4. ***जालीनुमा अपवाह तंत्र***- इस प्रतिरूप में प्रमुख सहायक नदियाँ एक-दूसरे के लगभग समानांतर बहती हैं।

## भारत में नदी प्रणाली

**उत्पत्ति, प्रकृति एवं स्वरूप के आधार पर भारत की नदी प्रणाली को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-**

1. ***हिमालयी नदियाँ***- हिमानियों में उद्गम स्रोत होने के कारण हिमालयी नदियाँ सदाबहार हैं। हिमालयी नदियाँ का घाटियों के निर्माण, डेल्टा के निर्माण, मैदानी भाग की सिंचाई इत्यादि में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

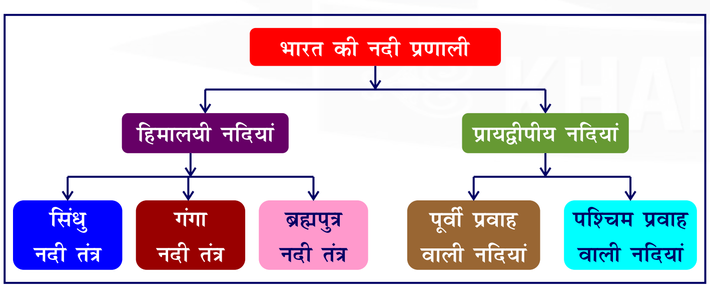


## सिंधु नदी तंत्र

सिंधु नदी तंत्र के अंतर्गत सिंधु, चिनाब, रावी, झेलम, व्यास, सतलज व सरस्वती नदियों को शामिल किया जा सकता है। ये नदियाँ अरब सागर में प्रवाहित होती है।

- ***सिंधु नदी***- इसका उद्गम स्रोत लद्दाख श्रेणी के उत्तरी भाग में केलाश चोटी की दूसरी ओर 5000 मीटर की ऊँचाई पर है। सिंधु नदी पहले उत्तर-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती है तथा फिर हिमालय पर्वत को काटकर जम्मू-कश्मीर के समीप **दमचौक** से भारत में प्रवेश करती है। लद्दाख, गिलगिट इत्यादि स्थलों से प्रवाहित होते हुए यह चिल्लास के समीप पाकिस्तान में प्रवेश कर जाती है।
- सिंधु नदी की कुल लम्बाई 2880 किमी. है, जबकि भारत में इसकी लंबाई 709 किमी. है। सिंधु नदी **माशेरब्रुम (7,821 मीटर)**, **नंगा पर्वत (7,114 मीटर)**, **राकापोशी (7,888 मीटर)** तथा **तिरिच मिर (7,690 मीटर)** आदि ऊँची पर्वत चोटियों के बीच से होकर प्रवाहित होती है। सतलज, व्यास, झेलम, चिनाब, रावी, शिगार, गिलगिट, स्योक, जॉस्कर आदि सिंधु की प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। ग्रीष्म ऋतु में हिम के ज्यादा पिघलने से इस नदी में बाढ़ आ जाती है। सिंधु नदी सिंधु के शुष्क प्रदेश में प्रवाहित होती हुई अंततः अरब सागर में विलीन हो जाती है।

## हिमालयी अपवाह प्रणाली की विशेषताएँ

- हिमालय क्षेत्र का अपवाह अनुगामी नहीं है। अनुगामी अपवाह के अंतर्गत जब नदियाँ पर्वतों से निकलती हैं तो उनका प्रारंभिक अपवाह-पथ उसके अपवाह-प्रदेश के ढाल के अनुसार ही होता है अर्थात जल अपवाह नए प्रकट हुए भूखण्ड के ढाल के अनुरूप होने लगता है। ऐसी नदियों का बहाव मोड़ के बीच की घाटियों में उनकी रचना के अनुरूप होता है, अतः इनका अपवाह जल-विभाजकों के समानांतर होता है और नदी के निचले भागों तक पहुँचने में उसे पर्वतीय क्षेत्रों का लम्बा चक्कर लगाकर बाहर निकलना पड़ता है। किंतु हिमालय की कुछ नदियों का अपवाह अधिकांशतः पूर्वगामी अपवाह भी है, क्योंकि नेपाल की अरुण व कोसी एवं भारत की सिंधु, ब्रह्मपुत्र, सतलज तथा तिस्ता नदियाँ हिमालय पर्वत के निर्माण के पूर्व भी उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवाहित होती थीं। बाद में हिमालय के निर्माण के बाद भी वे पूर्ववत् बहती रहीं क्योंकि हिमालय के ऊँचे उठने और नदियों के अपरदन की गति लगभग समान रही है।
- इसका प्रमाण यह है कि जहाँ ये नदियाँ हिमालय को पार करती हैं वहाँ इनकी घाटियाँ काफी गहरी, तंग और तीव्र ढाल वाली होती हैं। इन नदियों द्वारा बनने वाले खण्ड सामान्यतः 1,800 से 3,600 मीटर गहरे हैं। इन नदियों में से भी सतलज, कोसी, गंडक आदि नदियाँ अपनी ऊपरी घाटी एवं पहाड़ियों को शीर्ष कटाव की ओर काटकर निरंतर पीछे की ओर बढ़ती रही है।

## सिंधु तंत्र की सहायक नदियाँ

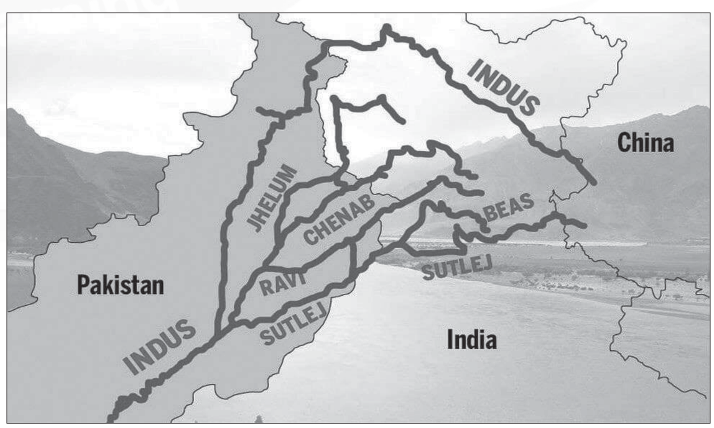


- ***झेलम***- इसका उद्गम स्रोत कश्मीर घाटी में स्थित **शेषनाग झील** है। प्राचीन काल में इसे वितस्ता नदी कहा जाता था। यह वेरीनाग से शुरू होकर

उत्तर-पश्चिम दिशा में 112 किमी. तक प्रवाहित होती हुई वुलर झील में मिल जाती है। इसके पश्चात यह हिमालय एवं पीर पंजाल श्रेणी के मध्य से प्रवाहित होती हुई कश्मीर की घाटी को सींचते हुए एक अत्यंत गहरे महाखण्ड का निर्माण करती हुई पाकिस्तान में प्रविष्ट होती है।

- इस घाटी को **बासमंगल** के नाम से जानते हैं और इसकी गहराई 2,130 मीटर है। झेलम नदी की कुल लम्बाई 725 किमी. है और भारत में इसकी लम्बाई 400 किमी. है। यह नदी सिंधु की सहायक नदियों में सबसे छोटी है, परंतु कश्मीर में यह एक महत्त्वपूर्ण नदी है, क्योंकि यह यहाँ का प्रमुख जलमार्ग है।
- ***चिनाब***- यह सिंधु की सबसे बड़ी सहायक नदी है। इसकी दो प्रमुख सहायक नदियाँ **चंद्रा** एवं **भागा** हैं, जो लाहुल में **बड़ा लाचा दर्रे ( 4880 मीटर )** से निकलती है और केलॉग के समीप तंडी में मिलती है। भारत में चिनाब नदी की लम्बाई 1180 किमी. है। इस नदी में महत्त्वपूर्ण जलबिजली परियोजनाएँ बगलिहार, सेलाल व दुलहस्ती बनायी जा रही है।
- ***रावी***- चिनाब के पश्चात यह सिंधु की सबसे बड़ी सहायक नदी है। यह पंजाब की सबसे छोटी नदी है और इसे **लाहौर की नदी** के रूप में भी जाना जाता है। इसका उद्गम स्थल हिमाचल प्रदेश की कुल्लू पहाड़ियों का रोहतांग दर्रा (400 मीटर) है। यह रोहतांग दर्रे के पश्चिम से निकलती है तथा चम्बा घाटी से होकर बहती है। भारत में इसकी कुल लम्बाई 725 किमी. है। रावी नदी धौलाधर पर्वतमाला के उत्तरी और पीर पंजाल श्रेणी के पश्चिम ढालों का जल बहाकर अपने साथ ले जाती है। पठानकोट के समीप यह मैदानी भाग में पहुँच जाती है। पंजाब के गुरूदासपुर एवं अमृतसर जिलों की पश्चिमी सीमा बनाती हुई रावी नदी पाकिस्तान में प्रविष्ट हो जाती है।
- ***व्यास***- इसका उद्गम स्थल रावी नदी के उद्गम स्थल रोहतांग दर्रा के पास **व्यास कुण्ड** है। जहाँ रावी रोहतांग दर्रे के पश्चिम से निकलती है वहीं व्यास नदी रोहतांग दर्रे के दक्षिणी किनारे से निकलती है। यह नदी हिमाचल प्रदेश में कुल्लू, मण्डी और कांगड़ा जिलों में प्रवाहित होती हुई पठानकोट के पूर्व में मैदानी भाग में उतरती है। इससे थोड़ा-सा आगे बढ़ने पर यह नदी एक बड़ा मोड़ बनाती है और कपूरथला के निकट सतलज नदी में मिल जाती है। व्यास नदी की कुल लम्बाई 470 किमी. है।
- ***सतलज***- सतलज नदी का उद्गम स्थल तिब्बत में 4630 मीटर की ऊँचाई पर स्थित **राक्षसताल झील** है। इस नदी को तिब्बत में **लांग चेन खम्बाब** के नाम से जाना जाता है। यह सिंधु नदी की प्रमुख सहायक नदियों में से है। तिब्बत में इसकी घाटी अत्यंत संकरी है। यह जॉस्कर श्रेणी को **शिपकीला दर्रे** नामक स्थान पर पार कर भारत में प्रविष्ट होती है तथा हिमाचल प्रदेश में स्पीती नदी से इसका संगम होता है। सतलज नदी धौलाधार श्रेणी में रामपुर के निकट संकरी घाटी से होकर गुजरती है। तत्पश्चात् यह नदी कपूरथला के दक्षिण-पश्चिम किनारे पर व्यास नदी से मिलती है तथा फिर ये दोनों नदियाँ सम्मिलित होकर पठानकोट के समीप सिंधु नदी में समाहित हो जाती है। भारत में सतलज नदी की कुल लम्बाई लगभग 1050 किमी. है।
- ***सरस्वती***- सरस्वती नदी का उद्गम हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले की शिवालिक पर्वत श्रेणी है। 175 किमी. की दूरी तक प्रवाहित होने के बाद पटियाला में रासुला के समीप घग्घर नदी सरस्वती में मिल जाती है। घग्घर से मिलने के बाद सरस्वती को हाकरा अथवा सुतार के नाम से जाना जाता है।

## *गंगा नदी तंत्र*

गंगा नदी तंत्र के अंतर्गत गंगा, यमुना, काली, रामगंगा, करनाली, गंडक, चम्बल, शारदा इत्यादि नदियाँ आती हैं।

- ***गंगा***- भारत की सांस्कृतिक विरासत की वाहक गंगा नदी का उद्गम स्थल उत्तराखंड के उत्तरकाशी जिले के समीप गंगोत्री हिमानी है। गंगोत्री केदारनाथ चोटी के उत्तर में गोमुख नामक स्थान पर 6000 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। उद्गम स्थल के समीप गंगा को भागीरथी कहा जाता है। देवप्रयाग नामक स्थल पर अल्का हिमनद से निकलने वाली अलकनंदा भागीरथी से मिलती है तथा यहीं से मध्य हिमालय और शिवालिक श्रेणी को काटती हुई गंगा नदी की उत्पत्ति होती है तथा यह ऋषिकेश और हरिद्वार में अवतरित होती है। मुख्य हिमालय के उत्तर से निकलकर जह्नावी नदी भागीरथी से गंगोत्री के समीप मिलती है। ये दोनों नदियाँ सम्मिलित रूप से बंदरपूछ और श्रीकांत चोटियों के बीच 4870 मीटर गहरी घाटी बनाती हुई प्रतीत होती है। गंगा का अपवाह पूर्वगामी है तथा यह हिमालय की श्रेणियों से भी पुरानी है। कर्ण प्रयाग के समीप पिण्डर नदी गंगा में मिलती है। **गंगा की सहायक नदियों में रामगंगा, घाघरा, गण्डक, बूढ़ी गण्डक, बागमती और कोसी नदियाँ बाएं किनारे से मिलती हैं, जबकि यमुना, पुनपुन और दामोदर, सोन नदियाँ इसमें दायें किनारे से मिलती हैं।** इनमें से सोन और दामोदर प्रायद्वीपीय भारत की नदियाँ है। इलाहाबाद से आगे वाराणसी, बक्सर, पटना, भागलपुर आदि में पूर्व की दिशा में प्रवाहित होती हुई गंगा नदी फरक्का के समीप दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और यहाँ पर यह कई शाखाओं में बंट जाती है। हुगली प्रमुख शाखा है, जो पश्चिम बंगाल में बहती है। इसकी एक शाखा जमुना के नाम से बांग्लादेश में प्रवेश कर जाती है और अंततः मेघना नदी में मिलकर बंगाल की खाड़ी में समाहित हो जाती है। गंगा नदी 8,38,200 वर्ग किमी. की घाटी या द्रोणी का निर्माण करती है, जो भारत की सबसे बड़ी नदी घाटी है। दुनिया का सबसे बड़ा डेल्टा गंगा नदी द्वारा निर्मित सुंदरवन डेल्टा है जो कि भारत और बांग्लादेश में संयुक्त रूप से पाया जाता है। यहाँ सुन्दरी नामक पेड़ बहुत ज्यादा संख्या में पाते जाने के कारण ही इसका नाम सुंदरवन डेल्टा पड़ा। गंगा नदी की कुल लम्बाई 2,510 किमी. है, जबकि भारत में इसकी लम्बाई 2,071 किमी. है।

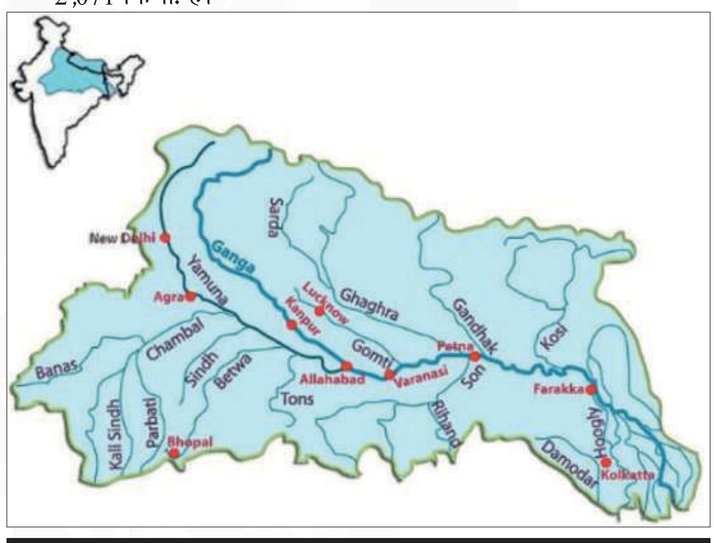


### *गंगा स्वच्छता अभियान*

14 जून, 2011 को भारत ने गंगा नदी को स्वच्छ बनाने के उद्देश्य से विश्व बैंक के साथ तीन समझौतों पर हस्ताक्षर किए, साथ ही ग्रामीण आजीविका को मजबूत करने तथा भारत में जैव विविधता संरक्षण के लिए भी हस्ताक्षर किए गए। गंगा नदी को स्वच्छ बनाने के लिए विश्व बैंक एक अरब अमेरिकी डॉलर (4600 करोड़ रुपए) देने पर सहमत है। साथ ही ग्रामीण आजीविका के सुदृढ़ीकरण एवं भारत में जैव विविधता के संरक्षण हेतु 24 मिलियन डॉलर की राशि देने पर विश्व बैंक सहमत (विश्व बैंक जैव-विविधता प्रोजेक्ट्स के लिए वित्तीय दाता की भूमिका निभाता है) है। गंगा नदी प्रोजेक्ट का उद्देश्य 2020 तक गैर-उपचारित म्यूनिसिपल सीवेज तथा औद्योगिक कचरे को गंगा नदी में जाने से रोकना था।

## राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण (NGRBA)

- पर्यावरण संरक्षण कानून, 1986 के तहत गंगा नदी के लिए योजना, वित्त, निगरानी एवं नियामक हेतु फरवरी, 2009 में 'राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण का गठन किया गया। (अध्यक्ष- प्रधानमंत्री)

### उद्देश्य

- गंगा नदी का संरक्षण तथा इसकी घाटी की व्यापक योजना तथा प्रबंधन के माध्यम से पर्यावरणीय मित्र बहाव को सुनिश्चित करना। इसके तहत पर्यावरणीय नियमों का कड़ाई से पालन, औद्योगिक प्रदूषण, कचरे एवं नदी के आस-पास के क्षेत्रों का बेहतर प्रबंधन करना शामिल है।
- यहाँ उल्लेखनीय है कि केंद्र सरकार ने 28 अप्रैल, 2011 को राष्ट्रीय गंगा नदी प्राधिकरण द्वारा गंगा नदी को स्वच्छ करने संबंधी परियोजना को मंजूरी दी गई।

### कार्यप्रणाली

- विश्व बैंक की सहायता से केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा शक्ति प्राप्त एवं समन्वयकारी संस्था के रूप में राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी प्राधिकरण ने राष्ट्रीय गंगा नदी घाटी परियोजना लागू करने का निर्णय लिया है जिसकी कार्य प्रणाली को निम्न बिंदुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है–
  - ✓ केंद्र एवं राज्य स्तर की संस्थाओं की स्थापना एवं सुदृढ़ीकरण।
  - ✓ विश्व स्तरीय गंगा ज्ञान केंद्र की स्थापना।
  - ✓ नदी घाटी प्रबंधन को बढ़ावा।
  - ✓ प्रदूषक प्रजनक केंद्रों में निरंतर कमी हेतु वित्तीय सहायता।
  - ✓ गुजरात एवं उत्तराखंड संरक्षित क्षेत्रों हेतु एक नया प्रबंधन मॉडल तैयार करना जिससे कि स्थानीय समुदायों की आजीविका भी सुरक्षित रहे।

## भारत सरकार की नई पहल

- गंगा को प्रदूषण मुक्त करने के मुद्दे पर केंद्र सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय से कहा है कि सीवेज ट्रीटमेंट प्लान (STP) को नियमित रूप से संचालित करने के लिए राज्य सरकारों को निर्बाध बिजली आपूर्ति का निर्देश दिया जाए, ताकि उनमें 24 घंटे नियमित काम हो सकें यहाँ उल्लेखनीय है कि STP के संचालन एवं रख-रखाव की जिम्मेदारी राज्य सरकारों की है तथा बिजली की नियमित आपूर्ति न होने के कारण अधिकतर STP तथा पंपिंग स्टेशन काम नहीं कर रहे हैं।
- केंद्र ने STP एवं पंपिंग स्टेशन के रख-रखाव एवं संचालन में लगने वाली राशि को योजना आयोग से केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच 70 एवं 30 के अनुपात में बाँटने की सिफारिश की। यह बंटवारा पाँच साल के लिए होगा, तीन साल बाद इसकी समीक्षा की जाएगी।
- सीवेज शोधन क्षमता विकसित करने में खर्च किए गए धन से अपेक्षित नतीजे नहीं मिले, जिसके कारण थे–
  - ✓ योजनाओं का धीमा कार्यान्वयन (कार्यान्वयन में राज्य प्रदूषण बोर्डों का ढीला रवैया)।
  - ✓ STP का क्षमता से कम उपयोग।
- गंगा जल की सबसे खराब स्थिति-कन्नौज से वाराणसी के बीच।
- अत: राष्ट्रीय गंगा नदी प्राधिकरण के निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप इस क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान दिया जाएगा, साथ ही पश्चिमी एवं मध्य उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों, शराब कम्पनियों, पेपर मिलों एवं चमड़ा मिलों के प्रदूषण पर भी ध्यान दिया जाएगा।

## समीक्षा

- गंगा भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नदी है। गंगा की पवित्रता के आधार पर इस नदी का भारत में पारंपरिक एवं धार्मिक महत्त्व रहा है। आज भी गंगा के जल का प्रयोग विभिन्न धार्मिक मान्यताओं के आधार पर किया जाता है। परंतु विगत वर्षों में औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा पर्यावरण प्रदूषण के अन्य कारकों में संयुक्त रूप से गंगा नदी के जल को अस्वच्छ कर दिया है। गंगा की स्वच्छता की प्रतीक डाल्फिन मछलियाँ समाप्ति के कगार पर हैं। अत: भारत में गंगा नदी की स्वच्छता हेतु एक व्यापक कार्य योजना तथा अभिप्राय अपरिहार्य था।
- इसी तथ्य को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने गंगा स्वच्छता अभियान की पहल की है। हाल ही में विश्व बैंक द्वारा प्रदत्त राशि गंगा की स्वच्छता के समक्ष विद्यमान वित्तीय समस्या के समाधान की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। निश्चिततः आने वाले वर्षों में देश गंगा को स्वच्छ बनाने के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सफल होगा। परंतु साथ ही यह भी आवश्यक है कि गंगा तथा अन्य नदियों की स्वच्छता के प्रति जागरूकता को व्यापक किया जाएँ इसके अतिरिक्त पर्यावरण संरक्षण से संबंधित कानूनों को कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए तथा अन्य नदियों की स्वच्छता हेतु भी व्यापक अभियान प्रारंभ किया जाना चाहिए।

## गंगा तंत्र की सहायक नदियाँ

- ***यमुना***– यमुना नदी का उद्गम स्थल 6,315 मीटर की ऊचांई पर स्थित यमुनोत्री हिमनद (बंदरपूंछ चोटी के पश्चिमी ढाल पर स्थित) है, जो गंगा के उद्गम स्थल से पश्चिम में स्थित है। यह नदी जगाधरी के निकट मैदानी भाग में प्रविष्ट होती है और आगरा तक गंगा के समानांतर दक्षिण-पश्चिम दिशा में प्रवाहित होती हुई इलाहाबाद में गंगा से मिल जाती है। चम्बल, सिंध, बेतवा और केन यमुना की प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। यमुना नदी की कुल लम्बाई 1,375 किमी. है।
- ***चम्बल***– यह नदी मध्य प्रदेश के मालवा पठार पर स्थित महू के समीप से निकलती है। राजस्थान के कोटा, बूँदी व धौलपुर में बहकर यह उत्तर प्रदेश के इटावा जिले के दक्षिणी क्षेत्र में यमुना में मिल जाती है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं- काली सिंध, सिप्ता, बनास व पार्वती। चम्बल नदी की कुल लम्बाई 965 किमी. है। यह नदी अपने विस्तृत बीहड़ भूमि हेतु प्रसिद्ध है।
- ***घाघरा***– इस नदी का उद्गम स्थल गंगोत्री के पूर्व में **मापचा चुंगो हिमनद** है। घाघरा नदी को पहाड़ी क्षेत्र में **करनाली** के नाम से जाना जाता है। यह नदी दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रवाहित होकर दक्षिण-पश्चिम की ओर से हिमालय को लांघती है। मैदानी भाग में पहुँचने पर इसकी दो शाखाएँ बन जाती हैं- पश्चिम की ओर करनाली तथा पूर्व की ओर शिखा, परंतु कुछ दूरी के बाद दोनों शाखाएँ फिर से एक हो जाती हैं। उत्तर प्रदेश में अवध में प्रवाहित होती हुई बिहार में छपरा के निकट यह नदी गंगा में समाहित हो जाती है। घाघरा नदी का अपवाह तंत्र 1,080 किमी. लंबा है।
- ***गंडक***– गंडक नदी धौलागिरि व एवरेस्ट पर्वत के मध्य नेपाल हिमालय से निकलती है। नेपाल के पर्वतीय क्षेत्रों में इसे **सालिग्रामी** तथा मैदानी क्षेत्रों में **नारायणी** नाम से पुकारा जाता है। चम्पारण जिले के समीप से यह बिहार में प्रवेश करती है। गंडक नदी महाभारत श्रेणी को पार कर दक्षिण-पश्चिम भाग में बहती हुई शिवालिक श्रेणी को पारकर मैदानी भाग में प्रवेश करती है तथा तत्पश्चात् आगे प्रवाहित होते हुए यह सोनपुर के निकट गंगा में मिल जाती है। गंडक नदी की लम्बाई 425 किमी. है।
- ***शारदा***– शारदा नदी कुमाऊँ के उत्तर-पूर्वी भाग में **मिलाम हिमानी** से निकलती है। उद्गम स्थल के प्रारंभिक स्थलों पर इसे **गौरी** कहा जाता है। भारत-नेपाल सीमा पर इसे **काली** नदी कहते हैं। जब बाराबंकी जिले में यह घाघरा नदी से मिलती है तो इसे **चौक** कहा जाता है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ धर्मा एवं लीसड़ हैं, जो अपने ऊपरी भागों में दक्षिण-पूर्वी दिशा में बहती हैं। शारदा व पूर्वी रामगंगा नदियाँ उत्तर-पश्चिम से आकर पंचमेश्वर के समीप मिलती हैं। यहीं से यह नदी **सरयू या शारदा** के नाम से पहाड़ियों में घूमती हुई ब्रह्मदेव के समीप मैदानी भाग में प्रविष्ट होती है। बहरामघाट के समीप यह घाघरा नदी में मिल जाती है।
- ***सोन***– इसका उद्गम अमरकंटक पहाड़ियों (600 मीटर) में है और उत्तर की ओर प्रवाहित होते हुए यह नदी केमूर श्रेणी में मिलती है तथा उत्तर-पूर्व में मुड़ जाती है। संस्कृत साहित्य में इसे स्वर्ण नदी कहा जाता है। बनास,

गोपद, रिहन्द, कुन्हड़ इत्यादि इसकी सहायक नदियाँ हैं। अपने मार्ग में सोन नदी कई जल-प्रपातों का निर्माण करती है। सोन नदी की कुल लम्बाई 780 किमी. है। यह आरा के निकट गंगा में जाकर मिल जाती है।

- ***रामगंगा***– इस नदी का उद्‌गम स्थल कुमाऊँ हिमालय क्षेत्र के अंतर्गत नैनीताल के समीप है। यह कालागढ़ के समीप मैदानी भाग में प्रविष्ट होती है। रामगंगा बिजनौर, बरेली तथा मुरादाबाद में मुख्य रूप से प्रवाहित होती है। कन्नौज के समीप यह गंगा नदी में मिल जाती है। रामगंगा की कुल लम्बाई लगभग 600 किमी. है।
- ***दामोदर***– इस नदी का उद्‌गम स्थल छोटानागपुर पठार के दक्षिण पूर्व में पलामू जिले में तोरी नामक स्थान है। **कोनार, जमुनिया** और **बराकर** इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं। बराकर के मिलने के बाद यह बड़ी नदी का रूप ले लेती है। आसनसोल के निकट यह दक्षिण-पूर्वी दिशा में मुड़ जाती है। डायमंड हार्बर के समीप यह हुगली नदी में मिल जाती है और यहीं पर रूपनारायण नदी भी हुगली में मिलती है। दामोदर नदी 541 किमी. लम्बी है और इसका कुल जलग्रहण क्षेत्र 22,000 वर्ग किमी. है। "दामोदर नदी को **बंगाल का शोक** कहते हैं।"
- ***कोसी***– कोसी नदी गंगा की सबसे बड़ी सहायक नदी है। इसकी मुख्य धारा अरुण, एवरेस्ट शिखर के उत्तर में तिब्बत से निकलती है। यह नदी बार-बार अपना मार्ग परिवर्तन करती रहती है, जिससे प्रायः बाढ़ व विनाश की आशंका सदैव बनी रहती है। इसलिए कोसी नदी को **बिहार का शोक** कहा जाता है।
- यह नदी बिहार के सहरसा जिले में विभिन्न मार्गों में प्रविष्ट होती है। इसकी मुख्य धारा अरुणा (पुंग्चु) के नाम से गोसाईं थान के उत्तर से निकलकर बहुत दूर तक पूर्व दिशा में प्रवाहित होती है। भारत में कोसी नदी की लम्बाई 730 किमी. है। भागलपुर के समीप यह गंगा नदी में समाहित हो जाती है।
- ***राप्ती***– नेपाल के पिछले भाग से उद्‌गमित राप्ती नदी पहले दक्षिण तथा फिर पश्चिम की ओर प्रवाहित होती है। राप्ती नदी बहराइच, गोरखपुर, गोंडा एवं बस्ती इत्यादि जिलों में प्रवाहित होती हुई बरहज के समीप घाघरा नदी में मिल जाती है।
- ***महानंदा***– यह गंगा के उत्तरी तट के अंतिम सहायक नदी है। यह दार्जिलिंग पहाड़ियों से निकलकर गंगा में मिलती है।

## ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र

ब्रह्मपुत्र नदी तिब्बत में केलाश पर्वत पर मानसरोवर झील से 80 किमी. की दूरी पर 5150 मीटर की ऊँचाई से निकलती है। दक्षिण तिब्बत में 1290 किमी. तक प्रवाहित होने के पश्चात् यह असम हिमालय को पार करती है और आगे बढ़ते हुए नामचा बरवा पर्वत तक पूर्व दिशा में हिमालय के समानांतर प्रवाहित होती है। इसके पश्चात् दक्षिण की ओर मुड़कर अरूणाचल प्रदेश में प्रविष्ट होती है तथा फिर असम घाटी में प्रवाहित होते हुए बांग्लादेश में प्रवेश कर जाती है। ब्रह्मपुत्र की सहायक नदियाँ है- मानस, भरेली, लोहित, सुबनसिरी, कामेंग, अमो, संकोश, तीस्ता, दिबांग, धनसिरी, कोपिली, मेघना इत्यादि। इसकी कई अन्य सहायक नदियाँ इसके प्रवाह के विपरीत बहती हैं।

### ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र

#### *ब्रह्मपुत्र सहायक नदी तंत्र*

- ***तीस्ता***– कंचनजंघा से निकलते हुए दार्जिलिंग से बहते हुए यह नदी बांग्लादेश में जाकर ब्रह्मपुत्र नदी से मिलती है। इसकी सहायक नदियाँ **रांगपो, रंगित** व **सेबक** है।
- ***रंगित***– सिक्किम से निकलने वाली यह नदी रॉफ्टिंग हेतु प्रसिद्ध है।
- ***संकोश***– यह भूटान की प्रमुख नदी है जो धुबरी के पास बह्मपुत्र से मिलती है।
- ***मानस***– यह एक पूर्ववर्ती नदी है जो तिब्बत से निकलकर वृहत् हिमालय में महाखण्ड का निर्माण करते हुए ब्रह्मपुत्र में मिल जाती है।
- ***सुबनसिरी***– पर्वतों से निकलने के पश्चात ऊपरी असम मैदान में 160 किमी. की दूरी तय करने के पश्चात यह नदी ब्रह्मपुत्र में जाकर मिल जाती है। यह मिरी व अबोर पहाड़ियों को विभाजित करती है।
- ***धनश्री***– यह नागा पहाड़ियों से निकलने के पश्चात 300 किमी. बहकर ब्रह्मपुत्र में मिल जाती है।

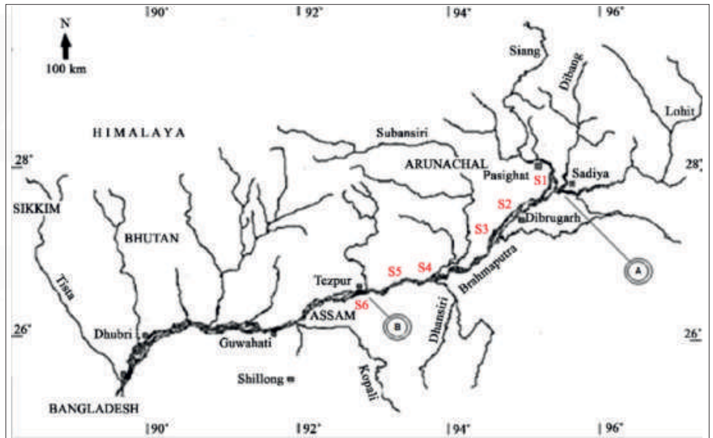


ब्रह्मपुत्र नदी तंत्र

#### *अन्य महत्त्वपूर्ण नदियाँ*

- ***मणिपुर नदी***– यह नदी मणिपुर के उत्तरी भाग से निकलते हुए दक्षिण की ओर बहती है। इम्फाल से निकलते हुए यह नदी लोकटक झील को अपवाहित करती है तथा इरावती की सहायक नदी चिदविन नदी में मिल जाती है।
- ***कालदान नदी***– मणिपुर के दक्षिणी भाग के अपवाहित करते हुए यह नदी बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है।
- ***बराक नदी***– नागालैंड के माउंट जायोब से निकलते हुए यह नदी मणिपुर के दक्षिण की ओर बहती है तथा एक कैंची मोड़ लेते हुए बांग्लादेश की ओर बहती है जहाँ यह **सुरमा नदी** कहलाती है। ढाका के निकट चाँदपुर में यह नदी पद्मा से मिलती है जहाँ यह संयुक्त रूप से **मेघना** कहलाती है। इसी के बेसिन में **मासिनराम** व **चेरापूंजी** भी स्थित है।

2. ***प्रायद्वीपीय नदियाँ***– प्रायद्वीपीय नदी तंत्र हिमालयी नदी तंत्र से अधिक प्राचीन है। इस समूह की नदियाँ मैदानी भाग की नदियाँ की अपेक्षा छोटी हैं। ये नदियाँ अधिकांशतः मौसमी हैं तथा वर्षा पर निर्भर हैं। वर्षा ऋतु में इनका जल-स्तर बढ़ जाता है, किंतु शुष्क ऋतु में यह काफी कम हो जाता है। प्रायद्वीपीय नदियाँ कम गहरी हैं परंतु इनकी घाटियाँ चौड़ी हैं तथा इनकी अपरदन क्षमता भी लगभग समाप्त हो चुकी हैं।

**प्रायद्वीपीय भारत की मुख्य नदियाँ**

| | नदी | स्रोत | लंबाई (किमी.) | मुख्य सहायक नदियाँ |
|---|---|---|---|---|
| 1. | गोदावरी | त्रिम्बक पठार नासिक के नजदीक (महाराष्ट्र) | 1465 | मंजरी, पेनगंगा, वरधा, वेनगंगा, इंद्रावती, साबरी, प्राणहिता |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| 2. | कृष्णा | महाबलेश्वर के नजदीक (महाराष्ट्र) | 1400 | कोयना, घाटप्रभा, माल प्रभा, भीमा, तुंगभद्रा, मूसी, मुनेरू |
| 3. | नर्मदा | अमरकंटक | 1310 | हिरण, ओरसांग, बर्ना, कोलार, बुरहनार, तावा, कुंडी |
| 4. | महानदी | दंडाकारण्य पठार, रायपुर के नजदीक | 857 | इब, मंद, हसदेव, शिवनाथ, ओग, जोंक, तेल |
| 5. | कावेरी | ताल कावेरी | 800 | हेरांगी, हेमवती, लाकेपावणी, शिमसा, अर्कावाती, काबानी, भवानी, अमरावती |
| 6. | तापी | बैतूल जिले में मुल्ताई (मध्य प्रदेश) | 730 | पूर्णा, बेतुल, पाटकी, गांजल, धातरंज, बोकाड, अमरावती |

- अपवाह की दिशा के आधार पर प्रायद्वीपीय नदियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- पूर्वी प्रवाह वाली नदियाँ तथा पश्चिमी प्रवाह वाली नदियाँ।

### *पूर्वी प्रवाह वाली नदियाँ*

**पूर्वी प्रवाह वाली नदियाँ बंगाल की खाड़ी की ओर प्रवाहित होती है। पूर्वी प्रवाह वाली प्रमुख नदियों का विवरण निम्नानुसार हैं-**

- ***महानदी***- इसका उद्गम स्थल छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले की अमरकंटक पहाड़ियों का सिहाबा नामक स्थल है। इसकी लम्बाई 885 किमी. है। यहाँ से पूर्व व दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होती हुई महानदी ओडिशा में कटक के निकट बड़े डेल्टा का निर्माण करती है।
- **शिवनाथ, हसदेव, मांद** और **डूब** नदियाँ उत्तर की ओर से आकर महानदी में मिलती हैं। तेल नदी बांयी ओर से इसकी प्रमुख सहायक नदी है। संभलपुर के समीप महानदी एक विशाल नदी का रूप धारण कर लेती है।
- ***गोदावरी***- गोदावरी को **दक्षिण की गंगा** भी कहा जाता है। यह प्रायद्वीपीय नदियों में सबसे बड़ी है। कुल लम्बाई 1,465 किमी. है। गोदावरी नदी का उद्गम स्थल नासिक की पहाड़ियों में त्र्यम्बक नामक स्थल है। उद्गम स्थल से दक्षिण-पूर्व दिशा में प्रवाहित होती हुई और अनेक छोटी नदियों को अपने में समाहित करते हुए यह आगे बढ़ती है। उत्तर में इसकी सहायक नदियाँ हैं- प्राणहिता, शबरी, इंद्रावती, मंजरी, पेनगंगा, वर्धा, ताल, प्रवरा, मूला एवं वेनगंगा। दक्षिण में इसकी मुख्य सहायक नदी मंजीरा है, जो हैदराबाद के समीप गोदावरी नदी में मिलती है। धलेश्वरम् के पश्चात गोदावरी दो भागों में विभक्त हो जाती है- पूर्वी शाखा एवं पश्चिमी शाखा। इन दोनों शाखाओं के मध्य एक अन्य शाखा वैष्णव गोदावरी नदी के नाम से प्रवाहित होती है।
- गोदावरी नदी के निम्न भाग में प्राय: बाढ़ आती रहती है। वर्तमान में इस नदी पर अनेक प्रकार की जल विद्युत परियोजनाएँ कार्यान्वित की जा रही हैं।
- ***कावेरी***- कावेरी नदी का उद्गम कर्नाटक के **कुर्ग जिले के ब्रह्मगिरि पर्वत** में 1341 मीटर की ऊँचाई से होता है। मैदानी भाग में अवतरित होने के पूर्व यह नदी मैसूर के पठार में प्रवाहित होती है। यह नदी दक्षिण-पूर्व दिशा में कर्नाटक और तमिलनाडु राज्यों में 805 किमी. की लंबाई में प्रवाहित होती है। उत्तर की ओर **हेमावती, लोकपावनी, शिमसा** और **अरकावती** इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं, जबकि दक्षिण की ओर इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं- **लक्ष्मणतीर्थ, कुबानी, स्वर्णरेखा, भवानी** और **अमरावती।** श्रीरंगम् के पास यह नदी उत्तरी कावेरी और दक्षिण कावेरी के नाम से दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। बंगाल की खाड़ी में गिरने के पूर्व कावेरी विशाल डेल्टा का निर्माण करती है। कावेरी नदी अपने प्रवाह मार्ग में शिवसमुद्रम् और होकेनागल नामक दो विशाल जल-प्रपातों का निर्माण करती है। प्राचीन काल का प्रसिद्ध कावेरीपट्टनम् बंदरगाह कावेरी नदी के तट पर ही था।
- ***कृष्णा***- यह प्रायद्वीपीय भारत की दूसरी सबसे बड़ी नदी है। कृष्णा नदी का उद्गम पश्चिमी घाट में महाबलेश्वर के उत्तर में 1327 मीटर की ऊँचाई से होता है। कृष्णा नदी की कुल लम्बाई 1400 किमी. है। कोयना, भीमा, घाटप्रभा, मालप्रभा व तुंगभद्रा इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ है।
- ***तुंगभद्रा***- कृष्णा की सबसे बड़ी सहायक नदी है। इस नदी का कुल जलग्रहण क्षेत्र 71,417 वर्ग किमी. है। तुंगभद्रा का निर्माण दो श्रेणियों- तुंग और भद्रा के मिलने से होता है। तुंगभद्रा का उद्गम स्थल कर्नाटक के चिकमंगलूर जिले में पश्चिमी घाट में 1200 मीटर की ऊँचाई पर स्थित गंगामूल नामक चोटी है। तुंगभद्रा 640 किमी. की लम्बाई पूर्ण करने के बाद कुर्नूल के समीप कृष्णा में समाहित हो जाती है। कृष्णा भीमा नदी का जलग्रहण क्षेत्र 76,614 वर्ग किमी. है। यह नदी दक्षिण महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश में बहती है तथा विजयबाड़ा के नीचे डेल्टा का निर्माण करती है। कृष्णा नदी डेल्टा बनाती हुई बंगाल की खाड़ी में विलीन हो जाती है। कृष्णा नदी का डेल्टा गोदावरी के डेल्टा से मिला हुआ है।
- ***स्वर्ण रेखा***- स्वर्ण रेखा नदी का उद्गम स्थल झारखंड में छोटानागपुर पठार पर रांची के पश्चिम में है। इसका प्रवाह सामान्यत: पूर्वी दिशा में है। इसका विस्तार प्रमुखत: झारखंड के सिंहभूमि, ओडिशा के मयूरभंज तथा पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जिलों के मध्य है। स्वर्णरेखा नदी की कुल लम्बाई 395 किमी. है। यह नदी अंत में बंगाल की खाड़ी में गिरती है।
- ***पेन्नार***- पेन्नार नदी का उद्गम कर्नाटक के कोलार जिले से होता है। इस नदी की दो शाखाएँ हैं,
  1. ***उत्तरी पेन्नार***- यह 560 किमी. लंबी है तथा कुड़प्पा, अनंतपुर के मार्ग से प्रवाहित होती हुई नेल्लौर के दक्षिण में बंगाल की खाड़ी में विलीन हो जाती है।
  2. ***दक्षिणी पेन्नार***- यह 620 किमी. लंबी है तथा तमिलनाडु में सेलम और दक्षिणी अर्काट जिलों में प्रवाहित होती हुई कुलाडोर के उत्तर में बंगाल की खाड़ी में विलीन हो जाती है।
- ***वैतरणी***- वैतरणी नदी ओडिशा के क्योंझर पठार से उद्गमित होती है। इसकी कुल लम्बाई 333 किमी. है। यह भी पूर्वी प्रवाह वाली अन्य नदियों की भांति बंगाल की खाड़ी में गिरती है।
- ***ब्राह्मणी***- यह भी स्वर्णरेखा नदी के उद्गम स्रोत झारखंड में छोटानागपुर पठार से राँची के दक्षिण-पश्चिम से निकलती है। ब्राह्मणी नदी का निर्माण कोयल और सांख नदियों के मिलन से होता है। ये दोनों नदियाँ गंगपुर के समीप एक-दूसरे से मिलती हैं। इसका अपवाह क्षेत्र बोनाई, तलचर एवं बालासोर जिले हैं। वैतरणी व ब्राह्मणी नदियाँ बंगाल की खाड़ी में गिरने से ठीक पहले मिलती हैं।
- ***ताम्रपर्णी***- इस नदी का उद्गम पश्चिमी घाट के अगस्त्यमलय ढ़ाल (1838 मीटर) से होता है। यह नदी तिरुनेलवेल्ली जिले से शुरू होकर समाप्त भी यहीं होती है। इस नदी की कुल लंबाई 120 किमी. है। ताम्रपर्णी नदी कल्याणतीर्थम् नामक स्थल पर 90 मीटर ऊँचे जल-प्रपात का निर्माण करती है। यह नदी मन्नार की खाड़ी में गिरती है।

## प्रायद्वीपीय अपवाह प्रणाली की विशेषता

प्रायद्वीप की सभी नदियाँ अरब सागर के निकट पश्चिमी घाट से निकल कर पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व की ओर बहती हैं। केवल दो बड़ी नदियाँ नर्मदा और तापी (ताप्ती) ही पश्चिम की ओर बहती हैं। इसका कारण भूगर्भशास्त्री यह मानते हैं कि नर्मदा और तापी अपनी बनायी हुई घाटियों में नहीं बहतीं किंतु उन्होंने अपनी धाराओं के लिए दो ऐसी घाटियाँ चुन ली हैं, जहाँ की निम्न भूमि भ्रंश क्रिया के परिणामस्वरूप बन गयी। ये गहरी कांप भूमि से भरी हुई घाटियाँ उन चट्टानों में बन गयी हैं, जो विंध्याचल पर्वत श्रेणी के समानांतर चली गयी हैं। इन भ्रंश घाटियों की उत्पत्ति काल उस समय से संबंधित है जबकि हिमालय के ऊपर उठने के साथ-साथ प्रायद्वीप का उत्तरी भाग आगे की ओर झुक गया था। उसी उथल-पुथल के साथ इस प्रदेश के दक्षिण की ओर स्थित प्रायद्वीप थोड़े से पूर्व की ओर झुक गये। पश्चिमी भाग समुद्र में डूब गया एवं पूर्वी भाग का ढाल पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व की ओर हो गया।

- प्रायद्वीप के अपवाह प्रदेश के बारे में दूसरा मत है कि प्रायद्वीप उस बड़े भू-भाग का शेष अर्ध भाग यह है जिसका कि पश्चिमी घाट जल विभाजक था। यह जल विभाजक स्थिर रह गया किंतु इसके पश्चिम का बहुत सा भाग अरब सागर में डूब गया। इसी कारण पश्चिमी तट पर समुद्र की गहराई केवल 182 मीटर हैं।
- दक्षिणी प्रायद्वीप की अधिकांश नदियाँ अनुगामी हैं अर्थात् इनका बहाव धरातल के स्वाभाविक ढाल के अनुरूप ही हुआ है। यहाँ की अधिकतर नदियाँ वृक्षाकार अपवाह क्रम का निर्माण करती हैं। केवल तटीय भागों में, विशेषत: पश्चिमी घाट के पश्चिम में, समानांतर अपवाह क्रम मिलता है।

## प्रवाह प्रणाली में पश्चिमी तट की नदियों के द्वारा डेल्टा न बनाने का कारण

- पश्चिमी समुद्र तट में गिरने वाली नदियाँ डेल्टा की बजाय एश्च्युरी का निर्माण करती हैं। अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ जैसे- नर्मदा, ताप्ती तथा पश्चिमी घाट से पश्चिम की ओर निकलने वाली नदियाँ भ्रंश घाटी से होकर बहती हैं। ये नदियाँ बहुत कम अवसादों का निर्माण करती हैं तथा तीव्र वेग से बहने के कारण डेल्टा का निर्माण कर पाती हैं। तीव्र वेग से बहती हुई ये नदियाँ जब अपने मुहाने के पास पहुँचती हैं तो अपने अवसादों का निक्षेपण नहीं कर पातीं। फलत: अवसाद तीव्र वेग से बहते हुए जल के साथ समुद्र में गिर जाते हैं।
- पश्चिमी घाट पर्वत से भी अनेक छोटी-छोटी नदियाँ निकलती हैं जो अरब सागर में गिरती हैं। ये नदियाँ पश्चिमी घाट के तीव्र ढाल से उतरने के कारण काफी तेज कटाव वाली होती हैं तथा अपने अवसादों का निक्षेपण नहीं कर पाती हैं। कड़ी चट्टानी क्षेत्र से होकर बहने के कारण इसमें अवसादों की मात्रा भी कम होती है।

## हिमालयी तथा प्रायद्वीपीय नदियों में अंतर

| | |
|---|---|
| | **हिमालयी नदियों के अभिलक्षण** |
| 1. | हिमालय पर्वत की नदियाँ अधिक लंबी हैं। |
| 2. | इनके जलग्रहण क्षेत्र काफी बड़े हैं। |
| 3. | इनकी संख्या अधिक है। |
| 4. | ये हिमाच्छादित प्रदेशों से निकलती हैं और वर्षा तथा बर्फ के पिघलने से जल प्राप्त करती हैं। अत: ये पूरे वर्ष बहती रहती हैं। |
| 5. | ये गहरे गार्ज बनाती हैं। |
| 6. | ये नदियाँ विसर्प बनाती हैं और मार्ग भी बदलती हैं। |
| 7. | हिमालय की नदियाँ जहाजरानी तथा सिंचाई के अनुकूल हैं। |
| 8. | ये अभी अपने विकास की बाल्यावस्था में हैं। |
| 9. | हिमालय की नदियाँ पूर्ववर्ती हैं। |
| 10. | हिमालय की नदियाँ बड़े-बड़े डेल्टा बनाती हैं। गंगा-ब्रह्मपुत्र विश्व का सबसे बड़ा डेल्टा है। |
| | **प्रायद्वीपीय नदियों के अभिलक्षण** |
| 1. | प्रायद्वीपीय पठार की नदियाँ कम लंबी हैं। |
| 2. | इनके जलग्रहण क्षेत्र अपेक्षाकृत छोटे हैं। |
| 3. | इनकी संख्या कम है। |
| 4. | प्रायद्वीपीय नदियाँ वर्षा पर निर्भर करती हैं। इसलिए ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं। |
| 5. | ये उथली घाटियाँ में बहती हैं। |
| 6. | प्रायद्वीपीय नदियाँ अपेक्षाकृत सीधा मार्ग अपनाती हैं और अपना मार्ग नहीं बदलती। |
| 7. | ये जहाजरानी तथा सिंचाई के अनुकूल नहीं हैं। |
| 8. | प्रायद्वीपीय नदियाँ प्रौढ़ अवस्था में पहुँच चुकी हैं। |
| 9. | प्रायद्वीपीय नदियाँ अनुवर्ती हैं। |
| 10. | प्रायद्वीपीय नदियाँ अपेक्षाकृत छोटे डेल्टा बनाती हैं। नर्मदा तथा ताप्ती नदियों ने डेल्टा के स्थान पर नदमुख बनाते हैं। |

## पश्चिमी प्रवाह वाली नदियाँ

**पश्चिम की ओर प्रवाह वाली नदियाँ अरब सागर में मिलती हैं। इन नदियों में प्रमुख हैं-**

- ***नर्मदा***- इस नदी का उद्‌गम स्थल **मैकाल पर्वत** की 1057 मीटर ऊँची अमरकंटक चोटी है। प्रायद्वीप की पश्चिमी प्रवाह वाली नदियों में नर्मदा सबसे बड़ी है। इसके उत्तर में विंध्याचल और दक्षिण में सतपुड़ा पर्वत है। नर्मदा हंडिया और मांधाता के बीच तीव्र गति से प्रवाहित होती है और जल प्रपात का निर्माण करती है। मध्य प्रदेश में जबलपुर के नीचे भेड़ाघाट की संगमरमर की चट्टानों पर कपिलधारा प्रपात का सुंदर दृश्य देखने को मिलता है। कपिलधारा जल प्रपात को धुआंधार के नाम से भी जाना जाता है और इसका निर्माण नर्मदा नदी करती है। **बंजर, शेर, शक्कर, तवा, गंवाल, छोटी तवा, हिरण** आदि नर्मदा की सहायक नदियाँ हैं। नर्मदा की कुल लम्बाई 1312 किमी. है। भडौच के निकट यह खम्भात की खाड़ी में विलीन हो जाती है।

- ***ताप्ती***- ताप्ती नदी मध्य प्रदेश के बेतूल जिले के मुल्ताई नामक स्थान से 762 मीटर की ऊँचाई से निकलती है। यह प्रायद्वीप की पश्चिमी प्रवाह वाली दूसरी सबसे बड़ी नदी है। इसकी प्रमुख सहायक नदियाँ हैं- लावदा, गज्जल, पटकी, बोदक, अम्भोरा, खुरसी, खाण्डू, इतौली, खपरा, मोना, खेकरी, बोरी, पंझारा, भारे, हरकी, मनकी, गुली, इत्यादि। ताप्ती नदी नर्मदा के समानांतर सतपुड़ा के दक्षिण में बहकर खंभात की खाड़ी में गिरती है। सूरत नगर ताप्ती के मुहाने पर स्थित है। ताप्ती नदी की कुल लम्बाई 724 किमी. है।
- ***लूनी***- इसका उद्‌गम राजस्थान में अजमेर जिले के दक्षिण-पश्चिम में

अरावली पर्वत का अन्ना सागर है। यह नदी 450 किमी. लंबी अरावली के समानांतर पश्चिम दिशा में बहती है। अजमेर के पुष्कर झील से निकलने वाली सरस्वती इसकी मुख्य सहायक नदी है। यह नदी कच्छ के रन के उत्तर में साहनी कच्छ में समाप्त हो जाती है।

- ***साबरमती***– इस नदी का उद्‌गम स्थल राजस्थान के उदयपुर जिले में अरावली पर्वत पर स्थित जयसंमद झील है। साबरमती प्रायद्वीप में प्रवाहित पश्चिमी प्रवाह वाली नदियों में तीसरी सबसे बड़ी नदी है। सांबर और हाथमती इसकी मुख्य सहायक नदियाँ हैं। साबरमती नदी की कुल लम्बाई लगभग 300 किमी. है।
- ***माही***– इस नदी का उद्‌गम मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले से होता है और यह नदी धार, रतलाम तथा गुजरात में प्रवाहित होती हुई अंततः खम्भात की खाड़ी में विलीन हो जाती है। यह नदी 560 किमी. लंबी है, जिसमें से अंतिम 65 किमी. ज्वार के रूप में हैं।

## भारत के जलप्रपात

जब किसी पर्वत इत्यादि की अत्यंत ऊँचाई से बड़ी मात्रा में जल गिरता है तो जल-प्रपात की सृष्टि होती है। यह कई कारकों, जैसे शैलों की सापेक्ष प्रतिरोधकता, भू-पृष्ठीय उभारों के सापेक्ष विभेदता, समुद्र तल से ऊँचाई, पुनरूत्थान की प्रतिक्रियाएँ तथा भू-संचलन इत्यादि पर निर्भर करता है।

- भारत के अधिकांश जल प्रपात दक्षिणी भारत में पाए जाते हैं। इनका निर्माण प्रायः पश्चिमी घाट से अरब सागर में प्रवाहित होने वाली नदियों द्वारा हुआ है। प्रमुख जल-प्रपातों का विवरण निम्नानुसार है–
  - ***जोग***– यह महाराष्ट्र व कर्नाटक की सीमा पर शरावती नदी पर है। इसकी ऊँचाई लगभग 250 मीटर है।
  - ***पायकारा***– यह नीलगिरि के पर्वतों में पायकारा नदी पर है। इस प्रपात में पानी लगभग 90 मीटर की ऊँचाई से गिरता है।
  - ***शिवसमुद्रम्***– यह कावेरी नदी पर है तथा इसमें पानी लगभग 100 मीटर की ऊँचाई से गिरता है।
  - ***गोकक***– यह बेलगाँव में गोकक नदी पर है तथा इसकी ऊँचाई 54 मीटर है।
  - ***येन्ना***– यह महाबलेश्वर के निकट है तथा इसकी ऊँचाई 180 मीटर है।
  - ***चूलिया***– यह चम्बल नदी में कोटा के समीप निर्मित है। इसकी ऊँचाई लगभग 18 मीटर है।
  - ***मंधार एवं पुनासा***– ये दोनों प्रपात नर्मदा नदी पर जबलपुर के समीप है। इनकी ऊँचाई लगभग 12 मीटर हैं।
  - ***बिहार प्रपात***– जब दक्षिणी टोंस नदी विंध्याचल के पठार को पार करके निकलती है तो बिहार प्रपात का निर्माण होता है। यह लगभग 110 मीटर ऊँचाई पर है।
- उपरोक्त उल्लिखित प्रपातों के अतिरिक्त भी भारत में कई जल प्रपात, जल विद्युत के उत्पादन के प्रमुख स्रोत हैं।

## भारत की प्रमुख झीलें

- ***वुलर*** (जम्मू-कश्मीर) झेलम नदी पर बना गोखुर झील है। इस पर विवर्तनिक क्रिया का भी प्रभाव है। यह भारत में मीठे पानी की सबसे बड़ी झील है। तुलबुल परियोजना इसी पर स्थित है। डल झील कश्मीर की अत्यधिक खूबसूरत झील है।
- ***सांभर, लूनकरसर, पंचभद्रा एवं डीडवाना*** राजस्थान की लवणीय झीलें हैं। इनसे नमक का उत्पादन भी किया जाता है। ***उदयसागर, पिछौला, जयसमंद एवं राजसमंद*** राजस्थान की अन्य महत्त्वपूर्ण झीलें हैं। ***सांभर झील*** राजस्थान के जयपुर में स्थित है। भारत के कुल नमक उत्पादन का लगभग 8-7 प्रतिशत नमक इसी से प्राप्त होता है।
- ***उकाई*** (गुजरात) ताप्ती नदी पर स्थित मानव निर्मित झील है।
- ***राणाप्रताप सागर व जवाहर सागर*** (राजस्थान) एवं ***गाँधी सागर*** (मध्य प्रदेश) चंबल नदी पर स्थित झीलें हैं।
- ***गोविंद सागर*** हिमाचल में भाखड़ा बाँध के पीछे निर्मित विशाल झील है।
- ***नागार्जुन सागर*** (आंध्रप्रदेश) कृष्णा नदी पर, ***निजामसागर*** (आंध्रप्रदेश) मंजरी नदी पर एवं तुंगभद्रा (कर्नाटक) तुंगभद्रा नदी पर मानव निर्मित झील है।
- ***गोविंद बल्लभ पंत सागर*** (छत्तीसगढ़ व उत्तर प्रदेश) सोन की सहायक नदी रिहन्द पर बनाई गई झील है।
- ***स्टेनले जलाशय*** तमिलनाडु में कावेरी नदी पर मेट्टूर बाँध के पीछे बनी झील है।
- ***लोकटक झील*** (मणिपुर) पूर्वोत्तर भारत में मीठे पानी की सबसे बड़ी झील है। इस झील में **केबुललामजाओ** नाम का तैरता हुआ राष्ट्रीय पार्क है।
- ***चिल्का झील*** (ओडिशा) भारत की सबसे बड़ी लैगून (खारे पानी की) झील है। इस झील के जल का प्रयोग मत्स्य पालन हेतु किया जाता है।
- ***कोल्लेरू झील*** आंध्रप्रदेश के डेल्टाई प्रदेश में बनी बड़ी झील है।
- ***पुलीकट झील*** (आंध्रप्रदेश व तमिलनाडु की सीमा पर) एक लैगून झील है। श्री हरिकोटा द्वीप यहीं पर है जहाँ सतीश धवन उपग्रह प्रक्षेपण केंद्र है।
- ***बेम्बानाड झील*** केरल में स्थित है। इसी झील में वेलिंगटन द्वीप है जहाँ पर राष्ट्रीय नौकायन प्रतियोगिताएँ होती हैं। भारत का सबसे छोटा राष्ट्रीय राजमार्ग NH-47A वेलिंगटन द्वीप पर ही है। अष्टमुडी केरल की एक अन्य महत्त्वपूर्ण लैगून झील है।
- ***लोनार झील*** महाराष्ट्र के बुलढाना जिले में एक क्रेटर झील है जो उल्कापिंड के गिरने से बनी है।
- ***हुसैन सागर*** आंध्र प्रदेश में स्थित एक कृत्रिम झील है, जिसे 1562 ई. में यहाँ के शासक कुली कुतुब शाह ने बनवाया था। यह झील हैदराबाद तथा सिकंदराबाद शहर को आपस में जोड़ती है।

# भारत की जलवायु
# (Climate of India)

## परिचय (Introduction)

किसी एक निश्चित क्षेत्र की दीर्घकालीन मौसमी दशाओं को उस क्षेत्र की जलवायु कहा जाता है। भारत में इसके अपने विशाल उपमहाद्वीपीय स्वरूप एवं विशाल अक्षांशीय विस्तार के कारण विविध जलवायु दशाएँ दिखायी देती हैं। इस विशाल देश का एक भाग कर्क रेखा के उत्तर में और दूसरा उसके दक्षिण में स्थित है।

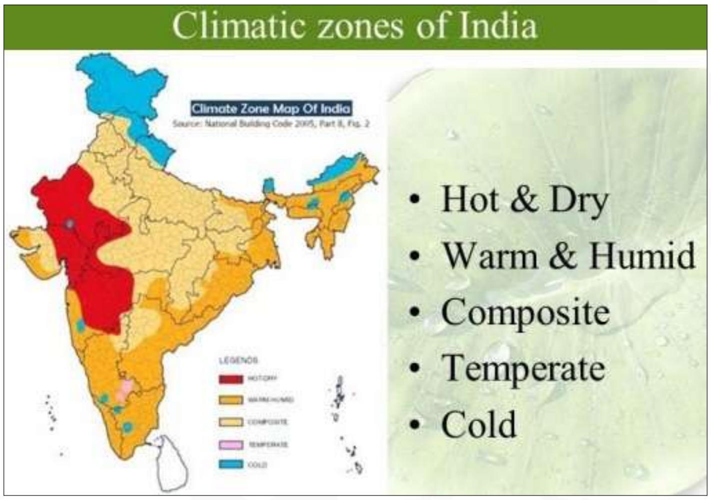


- उत्तर-पश्चिमी भागों में थार का विशाल मरुस्थल है जहाँ वर्ष भर में 25 सेमी. से भी कम वर्षा होती है। जबकि उत्तरी और पूर्वी भाग में खासी की पहाड़ियों में चेरापूंजी नामक स्थान पर 1087 सेमी. वर्षा का औसत रहता है। कश्मीर में द्रास नामक स्थान पर न्यूनतम तापमान -9ºC तक और लेह में यह –45ºC पहुँच जाता है, जबकि राजस्थान में श्रीगंगानगर का उच्चतम तापमान अनेक बार 50.2ºC से अधिक अंकित किया जा चुका है। कोच्चि एवं तिरुवनंतपुरम् का मध्यम औसत तापमान 27ºC से ऊपर नहीं बढ़ता है और न ही न्यूनतम तापमान 23ºC से नीचे उतरता है। जबकि पंजाब व पश्चिमी राजस्थान के आंतरिक भागों में वार्षिक तापांतर इससे 6 से 8 गुणा रहता है। भारत में जलवायु की दशा में देश के विभिन्न भागों में बहुरूपीय अंतर पाया जाता है।

## भारत की ऋतुएँ

भारतीय मौसम विभाग ने भारत की वार्षिक जलवायु की अवस्थाओं के आधार पर वर्ष को चार ऋतुओं में बाँटा है-

| 1. | उत्तर-पूर्वी मानसून का समय | |
|---|---|---|
| | (क) | शीत ऋतु (Winter Season) |
| | (ख) | ग्रीष्म ऋतु (Summer Season) |
| 2. | दक्षिण-पश्चिमी मानसून का समय | |
| | (ग) | वर्षा ऋतु (Rainy Season) |
| | (घ) | शरद् ऋतु (Autumn Season) |

## शीत ऋतु

यह ऋतु नवंबर के मध्य से शुरू होकर मार्च में समाप्त हो जाती है। इस ऋतु का सबसे ठंडा महीना जनवरी होता है। इस ऋतु में उत्तरी भारत में तापमान विशेष रूप से नीचा रहता है। उत्तरी भारत के अधिकांश भागों में औसत दैनिक तापमान 21ºC से नीचे रहता है और कई क्षेत्रों में रात्रि का तापमान हिमांक से भी नीचे गिर जाता है। जनवरी तथा फरवरी के महीने साल के सभी महीनों से ठंडे होते हैं। तटीय भागों में तापमान के ऋतुवत् परिवर्तन का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

- इस ऋतु में भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में तापमान कम होने के कारण उच्च वायुदाब पाया जाता है। जबकि दक्षिण भारत, अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में अपेक्षाकृत कम वायुदाब पाया जाता है। इसके परिणामस्वरूप उत्तर-पश्चिमी उच्च वायुदाब वाले क्षेत्र से दक्षिण-पूर्वी न्यून वायुदाब वाले क्षेत्र की ओर वायु चलने लगती है। वायुदाब प्रवणता कम होने के कारण ये पवनें मंद गति से चलती है। इस ऋतु में पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर तथा उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में पश्चिमी विक्षोभों के आगमन के कारण वायुदाब तथा पवनों की दिशा में परिवर्तन आ जाता है। ये विक्षोभ पश्चिमी एशिया तथा भूमध्य सागर के निकटवर्ती प्रदेश में उत्पन्न होते हैं और ईरान तथा पाकिस्तान को पार करके भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में प्रवेश करते हैं। इन विक्षोभों को भारत लाने में जेट प्रवाह का बहुत बड़ा योगदान है। ये दिसंबर से मार्च तक सक्रिय होते हैं। सामान्यत: एक माह में 4 से 6 चक्रवात आते हैं।
- शीतकालीन पवनें स्थल से समुद्र की ओर चलने के कारण वर्षा नहीं करती। ये पवनें पश्चिम बंगाल को पार करने के पश्चात् बंगाल की खाड़ी से नमी प्राप्त करती है और पश्चिमी घाट से टकराकर तमिलनाडु, दक्षिणी आंध्रप्रदेश, दक्षिणी-पूर्वी कर्नाटक तथा दक्षिण-पूर्वी केरल में वर्षा करती है। उत्तर-पश्चिमी भारत में पश्चिमी विक्षोभों द्वारा हल्की वर्षा होती है। वर्षा की यह मात्रा उत्तर एवं उत्तर-पश्चिम से पूर्व की ओर कम होती जाती है। भारत के उत्तर-पूर्वी भागों में भी शीत ऋतु में थोड़ी बहुत वर्षा होती है।

## जलवायु को प्रभावित करने वाले कारक

जलवायु को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं-

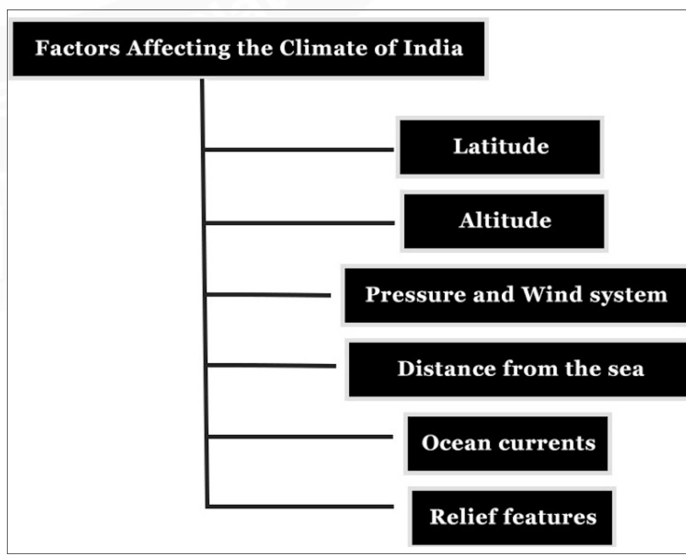

| | |
|---|---|
| *(i)* | ***अक्षांश***– अक्षांशीय स्थिति के साथ तापमान में परिवर्तन होता रहता है। कर्क रेखा भारत के मध्य से गुजरती है जिसके कारण क्षेत्र का तापमान सापेक्षतया अधिक रहता है। |
| *(ii)* | ***समुद्र से निकटता***– सामान्यत: जो प्रदेश अथवा क्षेत्र समुद्र के समीप होते हैं वहाँ की जलवायु प्राय: एक समान होती है। जबकि समुद्र से दूर के भागों में मौसमी बदलाव जल्दी होते हैं। |
| *(iii)* | ***मानसूनी पवनें***– मानसूनी पवनें ग्रीष्मकाल में दक्षिण-पश्चिम दिशा में बहती हैं व शीत काल में इनके बहने की दिशा उत्तर-पूर्व हो जाती है। ये मानसूनी पवनें वर्षा की मात्रा, आर्द्रता व तापमान को प्रभावित करती हैं। |
| *(iv)* | ***उच्चावच***– हिमालय, पश्चिमी घाट एवं पूर्वांचल की पहाड़ियाँ की ऊँचाई, तापमान तथा वर्षा की मात्रा को प्रभावित करती हैं। |
| *(v)* | ***मिट्टी की प्रकृति***– विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ तापमान को भिन्न-भिन्न दरों से अवशोषित करती हैं। राजस्थान की रेतीली मिट्टी की बजाय निम्न गंगा बेसिन क्षेत्र की कांप मिट्टी तापमान को अधिक तीव्रता से अवशोषित कर सकती है। |

- भारत की जलवायु पर दो बाहरी कारकों का विशेष प्रभाव पड़ता है- (i) उत्तर की ओर हिमालय की ऊँची हिमाच्छादित श्रेणियाँ इसको मध्य एशिया की ओर से आने वाली शीतल वायु से बचाकर संशोधित महाद्वीपीय जलवायु का रूप देती है। एवं (ii) दक्षिण की ओर हिंद महासागर की निकटता इसको उष्ण मानसूनी जलवायु स्वरूप प्रदान करती है, जिसमें उष्ण कटिबंधीय जलवायु की आदर्श दशाएँ होती है।

### *उत्तर भारत में शीत-ऋतु की जलवायु पर हिमालय की अवस्थिति का प्रभाव*

- हिमालय पर्वतमाला सिंधु नदी के मोड़ से ब्रह्मपुत्र नदी के मोड़ तक 2400 किमी. तक पूर्व-पश्चिम लंबाई में चापाकार में फैला हुआ है। इसकी चौड़ाई 150 से 400 किमी. और औसत ऊँचाई 2000 मी. है। किंतु यह पूर्वी भाग में 1500 मी. और मध्यवर्ती भाग में 8000 मी. ऊँचा है। इसका कुल विस्तार 5 लाख वर्ग किमी. क्षेत्र में है। यह एक नवीन पर्वतमाला है जो उस विशाल पर्वत श्रेणी का भाग है, जो मध्य एशिया से मध्य यूरोप तक फैली हुई है।
- हिमालय निश्चित रूप से एक महत्त्वपूर्ण भू-आकृतिक रचना है। वस्तुत: भारत को उष्ण कटिबंधीय मानसूनी चरित्र प्रदान करने में हिमालय का बहुत बड़ा योगदान है। इसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान है जाड़े के मौसम में मध्य एशिया से आने वाली ठंडी पवनों को रोकने में यदि हिमालय नहीं होता, तो मध्य एशिया की ठंडी पवनें आसानी से भारत में प्रविष्ट कर जातीं और यहाँ की शीतऋतु में मौसम को और भी अधिक ठंडा बना देती। ठंडी में इस वृद्धि का असर न सिर्फ यहाँ के लोगों पर होता, बल्कि पशु-पक्षी और वनस्पति पर भी पड़ता। इस प्रकार लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता।

### *ग्रीष्म ऋतु*

यह ऋतु मार्च से जून तक होती है। उच्च तापमान तथा कम आर्द्रता इस ऋतु की प्रमुख विशेषताएँ हैं। अत: इसे उष्ण शुष्क ग्रीष्म ऋतु भी कहते हैं।

- ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें कर्क रेखा पर लम्बवत पड़ती हैं। कर्क रेखा भारत के ठीक बीचों-बीच से गुजरती है और भारत को लगभग दो बराबर जलवायविक भागों में बांटती है। इस प्रकार मार्च के माह से तापमान बढ़ना आरंभ हो जाता है और मई माह में तापमान 41ºC से 42ºC तक पहुँच जाता है। मई-जून में कई स्थानों पर तो तापमान 45ºC तक हो जाता है।
- ग्रीष्म ऋतु में लगभग संपूर्ण देश में तापमान अधिक होने के कारण वायुदाब कम होता है। उत्तर-पश्चिमी भारत में तापमान बहुत अधिक हो जाता है जिस कारण वहाँ पर वायुदाब अत्यंत कम हो जाता है।
- मार्च से मई तक वायु की दिशा एवं मार्ग में विशेष रूप से परिवर्तन होते हैं। इस समय शीतकालीन मानसून पवनों की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। उत्तर-पश्चिमी भारत में अधिक तापमान के कारण स्थानीय रूप से बहुत ही शुष्क एवं उष्ण हवाएँ चलती हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में लू (Loo) कहते हैं। जब कभी इन शुष्क एवं उष्ण हवाओं के साथ आर्द्र हवाएँ मिलती हैं तो भीषण आंधियाँ और तूफान आते हैं। इनका वेग कभी-कभी 100 से 125 किमी. प्रति घंटा तक हो जाता है। इनसे कभी-कभी वर्षा भी हो जाती है और तापमान में कमी आती है। बंगाल में इन्हें **काल बैशाखी** कहते हैं।
- उत्तरी भारत में ग्रीष्म ऋतु शुष्क होती है। परंतु पूर्णत: वर्षारहित नहीं होती है। स्थानीय रूप से आने वाली धूल भरी आंधियाँ तथा गरज वाले तूफान कहीं-कहीं छुट-पुट वर्षा करते हैं। राजस्थान, गुजरात व मध्यप्रदेश में 2.5 सेमी. से कम वर्षा होती है।
- उत्तर पश्चिमी भारत के उपहिमालयी क्षेत्रों उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा ओडिशा से लेकर प्रायद्वीप के विस्तृत भागों में 14 से 50 सेमी. तक वर्षा होती है। छोटा नागपुर पठार में पैदा होने वाली **नारवेस्टर हवाएँ** पछुआ पवनों के प्रभाव में पूर्व की ओर चली जाती है और असम में लगभग 50 सेमी. वर्षा करती हैं। इसके अतिरिक्त, ओडिशा तथा पश्चिम बंगाल में भी नारवेस्टर से वर्षा होती है। असम में मई में होने वाली वर्षा जून में होने वाली वर्षा का लगभग दो तिहाई भाग होती है। यह चाय, पटसन, तथा चावल की कृषि के लिए बहुत उपयोगी होती है। असम में इसे **चाय वर्षा** कहते हैं। गरजते हुए तूफानों से केरल तथा कर्नाटक के तटवर्ती भागों में 25 सेमी. तक वर्षा हो जाती है। दक्षिण भारत के भीतरी भागों में लगभग 10 सेमी. वर्षा हो जाती है। यह आम की फसल के लिए बहुत लाभदायक होती है, जिसके कारण इसे **आम्र वर्षा** कहते हैं। कर्नाटक तथा अन्य निकटवर्ती कहवा उत्पादक क्षेत्रों में यह वर्षा कहवा की फसल को बहुत लाभ पहुँचाती है। अत: इसे **फूलों वाली बौछार** कहा जाता है।

### *वर्षा ऋतु*

वर्षा ऋतु दक्षिण-पश्चिमी मानसून के साथ मध्य जून में आरंभ होती है और मध्य सितंबर तक समाप्त होती है। दक्षिण-पश्चिमी मानसून के साथ समस्त भारत का मौसम पूर्णत: परिवर्तित हो जाता है। इसे गर्म आर्द्र ऋतु भी कहते हैं। अधिक आर्द्रता तथा अधिक तापमान इस ऋतु की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

- मानसून की वर्षा होने के साथ ही तापमान में कमी आने लगती है। दक्षिण भारत में जून का तापमान मई के तापमान की अपेक्षा 3ºC से 6ºC कम होता है। उत्तर-पश्चिमी भारत में जुलाई माह में 2ºC से 3ºC तापमान की कमी हो जाती है। अगस्त में तापमान और भी नीचे गिर जाता है। इन दिनों यदि लंबी अवधि तक वर्षा न हो तो तापमान में वृद्धि हो जाती है। वर्षा की समाप्ति पर तापमान में पुन: वृद्धि होने लगती है। इस ऋतु में थार मरुस्थल का तापमान 38ºC तथा उत्तरी मैदान के अन्य भागों में 30ºC से 32ºC के बीच रहता है।
- इस ऋतु में उत्तरी भारत में तापमान अधिक होने के कारण वायुदाब कम होता है। जुलाई माह के वायुदाब के वितरण मानचित्र को देखने से पता चलता है कि भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में कम वायुदाब है और 997 मिलीबार की समदाब रेखा राजस्थान में पाकिस्तान की सीमा के साथ है। ऐसा राजस्थान की मरुभूमि में तापमान की अधिकता के कारण होता है। 998 मिलीबार की समदाब रेखा पंजाब, हरियाणा तथा राजस्थान में से गुजरती है। इसके विपरीत दक्षिणी भारत में तापमान कम होने के कारण वायुदाब अधिक है। 1009 मिलीबार की समदाब रेखा अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी के अतिरिक्त केरल तथा तमिलनाडु में से होकर गुजरती है।
- वायुदाब की इस व्यवस्था के अधीन पवनों की दिशा अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में दक्षिणी-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की ओर होता है। प्रायद्वीपीय पठार के अधिकांश भाग में भी पवनों की यही दिशा होती है परंतु उत्तरी मैदान में पवनें मुख्यत: पूर्व से पश्चिम की ओर चलती है।

- भारत में 75 प्रतिशत वर्षा दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनों द्वारा होती है। वर्षा अकस्मात् ही शुरू होती है। मानसून के इस अकस्मात् आरंभ को **मानसून विस्फोट** कहते हैं। भारत के तटीय भागों में मानसून का प्रस्फोट जून के प्रथम सप्ताह या इसके भी पहले हो सकता है जबकि देश के आंतरिक भागों में दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनें जुलाई तक ही आ पाती है।

## *शरद् ऋतु*

यह ऋतु मध्य सितंबर में शुरू होकर मध्य नवंबर में समाप्त हो जाती है। मध्य सितंबर में दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनें उत्तर-पश्चिमी भारत से लौटना शुरू कर देती हैं, इसलिए इसे मानसून प्रत्यावर्तन अर्थात् मानसून के लौटने की ऋतु भी कहते हैं। देश के सुदूर दक्षिणी भागों में मानसून के लौटने का क्रम दिसंबर तक जारी रहता है। ग्रीष्मकालीन मानसून प्रस्फोट के विपरीत शरद ऋतु में मानसून का प्रत्यावर्तन क्रमिक होता है।

- जिस प्रकार दक्षिणी-पश्चिमी मानसून के आने का समय भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार उसकी वापसी का समय भी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न है। उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में मानसूनी पवनें सबसे बाद में पहुँचती है और सबसे पहले वापस लौट जाती हैं। इस प्रकार इन क्षेत्रों में मानसून की अवधि बहुत ही कम है। इसके विपरीत तटवर्ती क्षेत्रों में मानसून की पवनें जल्दी पहुँचती हैं और देर से वापस लौटती हैं। पंजाब में मानसूनी पवनें जुलाई के पहले सप्ताह में पहुँचती है और सितंबर के मध्य में लौट आती है। इस प्रकार पंजाब में मानसून की अवधि केवल ढाई महीने हैं। इसके विपरीत, कोरोमंडल तट पर ये पवनें जून के पहले सप्ताह में पहुँचती हैं और दिसंबर के मध्य में लौटती हैं। इस प्रकार कोरोमंडल तट पर मानसून की अवधि लगभग साढे छः महीने हैं।
- उत्तरी भारत में मानसून के लौटने के साथ तापमान में थोड़ी सी वृद्धि होती है। परंतु कुछ ही दिनों में तापमान तेजी से गिरने लगता है। अक्टूबर में औसत तापमान 26ºC रहता है। नवंबर में न्यूनतम तापमान 10ºC तक गिर जाता है। परंतु औसत तापमान 22ºC के आस-पास रहता है। उच्च पर्वतीय प्रदेशों में कभी-कभी रात्रि के समय तापमान हिमांक तक गिर जाता है। दैनिक तापांतर अधिक हो जाता है। दक्षिण भारत में अब भी प्रायः उच्च तापमान बना रहता है।
- मानसून के लौटने के साथ ही उत्तर-पश्चिमी भारत का निम्न वायुदाब क्षेत्र समाप्त होने लगता है और बंगाल की खाड़ी की ओर बढ़ने लगता है। पवनों की दिशा दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व में परिवर्तित होने लगती है। चक्रवातों का स्थान प्रतिचक्रवात ले लेते हैं।
- मानसून के लौटते ही वायु में आर्द्रता कम हो जाती है और वर्षा समाप्त हो जाती है। सितंबर के अंत तक जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, उत्तराखंड तथा उत्तरप्रदेश में वर्षा समाप्त हो जाती है। 15 अक्टूबर तक उत्तर-पूर्वी भारत में भी वर्षा समाप्त हो जाती है। लौटती हुई मानसूनी पवनें जब बंगाल की खाड़ी के ऊपर से गुजरती हैं तो वे आर्द्रता ग्रहण कर लेती हैं और ओडिशा, आंध्र प्रदेश के तटीय भागों तथा तमिलनाडु के विस्तृत भागों में वर्षा कराती है। केरल में भी कुछ वर्षा हो जाती है। उत्तरी भागों में कुछ वर्षा भूमध्य सागर से आने वाले चक्रवातों द्वारा हो जाती है। बंगाल की खाड़ी तथा अरब सागर में पैदा होने वाले उष्ण कटिबंधीय चक्रवात तटीय भागों में भारी वर्षा कराते हैं।

## *दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनें*

दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनों को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है- अरब सागर की मानसून पवनें तथा बंगाल की खाड़ी की मानसून पवनें।

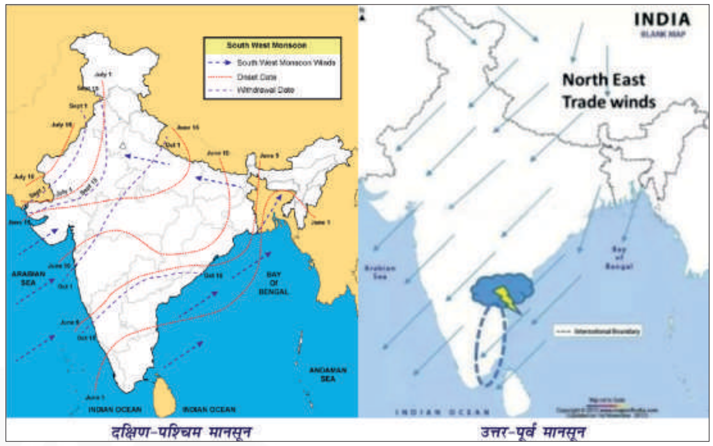


*दक्षिण-पश्चिम मानसून* *उत्तर-पूर्व मानसून*

- ***अरब सागर की मानसूनी पवनें***- अरब सागर की मानसून की उत्पत्ति अरब सागर में होती है। जब ये भारत के तट पर पहुँचती है तो तीन शाखाओं में विभाजित हो जाती है। पहली शाखा पश्चिमी घाट से टकराकर पश्चिमी तटीय मैदान में 250 सेमी. से भी अधिक वर्षा कराती है। पश्चिमी घाट को पार करने के बाद जब यह नीचे उतरती है, तब इसका तापमान बढ़ जाता है और इसकी आर्द्रता में कमी आ जाती है। इससे दक्षिणी पठार के वृष्टि छाया क्षेत्र में बहुत ही कम वर्षा होती है। यही कारण है कि इस ऋतु में मंगलौर में वर्षा 280 सेमी. होती है जबकि बंगलुरु में केवल 50 सेमी. ही होती है।
- इसकी दूसरी शाखा नर्मदा तथा ताप्ती की घाटियों से होकर भारत के मध्यवर्ती क्षेत्र में प्रवेश करती है। तट के निकट कोई रूकावट न होने के कारण यह दूर तक चली जाती है और वर्षा कराती है। नागपुर में इन पवनों के द्वारा 60 सेमी. वर्षा होती है। इसकी तीसरी शाखा उत्तर-पूर्वी दिशा में अरावली पर्वत के समानांतर जाती है। रास्ते में कोई रूकावट न आने के कारण यह पूरे राजस्थान में वर्षा नहीं करती। आगे चलकर यह हिमालय की पहाड़ियों से टकराकर पर्याप्त वर्षा कराती है।
- ***बंगाल की खाड़ी की मानसूनी पवनें***- बंगाल की खाड़ी की मानसूनी पवनें दो शाखाओं में विभाजित होती है।
- इसकी पहली शाखा गंगा के डेल्टा प्रदेश को पार करके मेघालय की गारो, खासी तथा जयन्तिया की पहाड़ियों से टकराती है। इन पहाड़ियों की आकृति कीप जैसी है, जिससे वायु को एकदम ऊँचा उठना पड़ता है और इससे भारी वर्षा होती है। यहाँ पर चेरापूंजी के 16 किमी. पश्चिम में स्थित मासिनराम स्थान पर 1221 सेमी. वार्षिक वर्षा होती है, जो विश्व में अधिकतम है।
- इसकी दूसरी शाखा सीधे हिमालय पर्वत से टकराती है। यह हिमालय पर्वतों की ऊँची श्रेणियों को पार करने में असमर्थ होती है और पश्चिम की ओर हिमालय पर्वत के समानांतर चलना शुरू कर देती है। ज्यों-ज्यों यह पश्चिम की ओर बढ़ती हैं, त्यों-त्यों इसकी वर्षा कराने की शक्ति कम होती जाती है।
- दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनों द्वारा होने वाली वर्षा अनिश्चित तथा अनियमित है। ऐसा उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों के अंतर्वाह के कारण होता है। इन चक्रवातों के आने से मानसूनी पवनों का क्रम भंग हो जाता है। मानसून वर्षा की मात्रा के साथ-साथ इसकी तीव्रता भी इन चक्रवातों की आवृत्ति से निर्धारित होती है। सितंबर के प्रथम सप्ताह में वर्षा-ऋतु समाप्त हो जाती है। भारत का पूर्वी तट, विशेषतः तमिलनाडु तट, दक्षिण-पश्चिमी मानसून द्वारा वर्षा प्राप्त नहीं करता और शुष्क रह जाता है। इसका कारण यह है कि तमिलनाडु का तट बंगाल की खाड़ी की मानसून के समानांतर है और अरब सागर की धारा के वृष्टि छाया के क्षेत्र में स्थित है।

## *मानसून की उत्पत्ति*

मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा के '**मौसिम**' शब्द से हुई है। मानसून शब्द

का सर्वप्रथम प्रयोग अरब सागर में चलने वाली पवनों के लिए किया गया, जो ग्रीष्मकाल में दक्षिण-पश्चिम तथा शीतकाल में उत्तर-पूर्व की ओर से चलती है। तत्पश्चात् ग्लोब पर मौसमी क्रम से चलने वाली सभी पवनों को मानसून कहा गया। भारतीय मानसून की उत्पत्ति की प्रक्रिया अत्यंत ही जटिल है।

***मानसून की उत्पत्ति और उसकी क्रियाविधि को समझने में निम्नलिखित संकल्पनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं-***

- ***तापीय संकल्पना***- इस सिद्धांत के विकास में ब्रिटिश भूगोलवेत्ता बेकर एवं स्टैम्प ने योगदान दिया। यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि सूर्य जब उत्तरायण होता है, तब भारतीय उप महाद्वीप तेजी से गर्म हो जाता है और निम्न भार (दाब) का निर्माण होता है, जिसका केंद्र उत्तर-पश्चिम की ओर होता है। इस संकल्पना के अनुसार मानसूनी पवनों को जलीय और स्थलीय समीर का ही वृहत् रूप माना जाता है जो जल एवं स्थल के विषम वितरण के कारण उत्पन्न होती हैं। ग्रीष्म काल में अत्यधिक सूर्यातप के कारण स्थल भाग न्यून वायुदाब के केंद्र बन जाते हैं, तब सागरों की ओर से स्थल की ओर पवनें चलती हैं, जिन्हें **'ग्रीष्मकालीन मानसून'** कहते हैं। इसके विपरीत शीतकाल में स्थल भाग सागरों की अपेक्षा अधिक ठण्डे होने से उच्च वायुदाब के केंद्र होते हैं तथा पवनें स्थल से समुद्र की ओर चलती हैं जो **'शीतकालीन मानसून'** कहलाती है।
- ***गतिक संकल्पना***- इस गतिक संकल्पना के प्रवर्तक फ्लोन के अनुसार मानसूनी पवनों की उत्पत्ति वायुदाब एवं पवन पेटियों के स्थानांतरण के कारण होती है। विषुवत रेखा के निकट व्यापारिक हवाओं के मिलने से अभिसरण उत्पन्न होता है, जिसे अंत: उष्णकटिबंधीय अभिसरण (ITC) कहते हैं। इसकी उत्तरी सीमा, अंत: उष्णकटिबंधीय अभिसरण सीमा तथा दक्षिणी सीमा अंत: उष्णकटिबंधीय अभिसरण सीमा कहलाती है। सूर्य के उत्तरायण होने पर उत्तरी अभिसरण सीमा 30º उत्तरी अक्षांश तक विस्तृत हो जाती है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में विषुवत रेखीय शांत पवनें चलने लगती है, यही दक्षिणी-पश्चिमी ग्रीष्मकालीन मानसून होता है। इसके साथ ही चक्रवात, तूफान आदि भी सक्रिय हो जाते हैं। इसके विपरीत शीतकाल में पवन पेटियां दक्षिण की ओर खिसकती हैं। सूर्य के दक्षिणायन होने पर दक्षिण-पूर्वी एशिया से उत्तरी अभिसरण सीमा हट जाती है तथा वहाँ उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवनें विस्तृत हो जाती हैं, यही शीतकालीन मानसून है।
- ***जेट धारा सिद्धांत***- मानसून की उत्पत्ति के परंपरागत सिद्धांत प्रादेशिक कारकों के महत्त्व पर आधारित हैं। इन सिद्धांतों के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में सूर्यातप के प्रभाव से स्थल भाग तापजन्य निम्न वायुदाब क्षेत्र को जन्म दे देता है। यह न्यून वायुदाब का क्षेत्र महासागरीय क्षेत्र से आर्द्र हवाओं को अपनी ओर आकर्षित करता है, क्योंकि इस समय महासागर पर उच्च वायुदाब रहता है। स्पष्ट है कि ग्रीष्म ऋतु में हवाएँ समुद्र से स्थल की ओर प्रवाहित होती हैं। शीतऋतु में हवाओं का यही क्रम उल्टा हो जाता है। स्थल भाग पर उच्च वायुदाब एवं महासागरों पर निम्न वायुदाब होने से हवाएँ स्थल से समुद्र की ओर प्रवाहित होती है।
- इन सिद्धांतों के द्वारा मानसून की उत्पत्ति और उसके विस्तार क्षेत्र की साक्ष्य युक्त व्याख्या नहीं होती है। उदाहरण के लिए, तापजन्य निम्न वायुदाब का क्षेत्र उत्तरी भारत में स्थित होता है, लेकिन मानसूनी पवनों का विस्तार सुदूर उत्तर में मंगोलिया तक हो जाता है। इस प्रकार के तापजन्य निम्न वायुदाब का क्षेत्र उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका में भी निर्मित होता है, लेकिन वहाँ इसके प्रभाव की परिणति मानसून के रूप में नहीं होती है। स्पष्ट है कि मानसून पवनों की दिशा में ऋतुओं के अनुसार व्युत्क्रमण होता है, लेकिन यह व्युत्क्रमण वायुमंडलीय सामान्य संचार प्रणाली की ऋतुओं के अनुसार उत्तर तथा दक्षिण की ओर स्थानांतरण के साथ-साथ तापीय और भू-आकृतिक कारकों से भी प्रभावित होता है।

***दक्षिण-पश्चिम मानसून के विकास में हिमालयी और तिब्बती उच्चभूमियों की भूमिका***

- शीतऋतु में प्रायद्वीपीय भारत सहित संपूर्ण एशिया महाद्वीप में ऊपरी वायुमंडल में पछुआ हवाएँ प्रवाहित होती हैं। इस समय उपोष्ण कटिबंधीय जेट स्ट्रीम की अवस्थिति हिमालय पर्वतमाला से प्रभावित होती है। फलत: एक शक्तिशाली जेट स्ट्रीम की अवस्थिति हिमालय गिरिपाद के दक्षिण में तथा दूसरी जेट स्ट्रीम की अवस्थिति तिब्बत पठार के उत्तर में होती है। ये दोनों ही जेट स्ट्रीम हिमालय के पूर्व में चीन में आपस में मिल जाती हैं। हिमालय के गिरिपाद के दक्षिण में जेट स्ट्रीम की अवस्थिति वहाँ
- विद्यमान ताप प्रवणता से संबंधित है। शीतऋतु में उत्तरी भारत में आने वाले अवदाब इसी जेट स्ट्रीम की उपस्थिति से आते हैं। इस समय दक्षिण-पूर्वी एशिया में वायु उत्तर दिशा से चलती है। ये ऊपरी वायुमण्डल में प्रवाहित होने वाली पछुआ हवाओं के नीचे वायु के अवतलन से विकसित होती हैं। ग्रीष्मकाल में सूर्यातप की मात्रा बढ़ने के कारण तापजन्य निम्न वायुदाब का क्षेत्र उत्तरी भारत में विकसित हो जाता है, लेकिन इससे ऊपर पछुआ हवाओं का प्रवाह प्रभावित नहीं होता है। मई माह में सबसे निम्नतम वायुदाब वाला क्षेत्र विकसित होने के उपरांत भी कई सप्ताह तक मानसून का प्रवाह टूटता नहीं है।
- इससे इस बात की पुष्टि होती है कि स्थानीय स्थलाकृतिक कारकों की अपेक्षा मानसूनी प्रवाह पर ग्रहीय संचार प्रणाली को नियंत्रित करने वाले कारकों का प्रभाव अधिक पड़ता है। आधुनिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्रीष्मकालीन मानसून तभी सक्रिय होता है जब जेट स्ट्रीम अपनी शीतकालीन अवस्थिति से हट जाती है। जेट स्ट्रीम के हट जाने से ऊपरी वायुमण्डल की संचार प्रणाली में परिवर्तन आ जाता है। फलत: ग्रीष्मऋतु में ऊपरी वायुमण्डल में विषुवतरेखीय पूर्वी हवाएँ चलने लगती हैं जो धरातल पर चलने वाली दक्षिण-पश्चिमी हवाओं से मिलकर मानसूनी वर्षा कराती हैं। ग्रीष्मऋतु में तापीय भूमध्यरेखा और अंतर उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र का उत्तर की ओर स्थानांतरण हो जाता है। फलत: हिंद महासागर से गर्म एवं आर्द्रता युक्त पवनों का प्रवाह उत्तर भारत की ओर होने लगता है।
- प्रारंभ में ये हवाएँ उत्तर-पूर्व हो जाती है। ये हवाएँ ऊपर उठकर, ठण्डी होकर संवहन धाराओं को जन्म देती हैं जो पूर्वी व्यापारिक पवनों से मिलकर वर्षा कराती हैं। उपर्युक्त प्रकार की दशा लगभग तीन चार माह तक बनी रहती हैं। सितंबर के अंत और अक्टूबर के प्रारंभ में जब अंतर उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र कमजोर होकर पुन: भूमध्यरेखा की ओर खिसकने लगता है तब दक्षिण-पश्चिम हवाओं के स्थान पर उत्तर-पूर्वी व्यापारिक पवनें चलना प्रारंभ हो जाती है। ऊपरी वायुमण्डल में भी हिमालयन जेट स्ट्रीम मध्य अक्टूबर तक अस्तित्व में आ जाती है।
- कुछ विद्वानों का मानना है कि भारतीय मानसून के समय पर आगमन तथा उसके विस्तार क्षेत्र को प्रभावित करने में दक्षिणी गोलार्द्ध की वायुमण्डलीय संचार प्रणाली की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

## मानसून प्रस्फोट

जून के प्रारंभ में अत्यधिक निम्न वायुदाब एवं उष्ण कटिबंधीय पूर्वी जेट के विशिष्ट प्रभाव से दक्षिणी-पश्चिमी मानसून बड़ी तेजी से हिंद महासागर की ओर से देश की ओर बढ़ते हैं। इस समय अचानक ही तीव्र मेघ गर्जन होता है तथा बिजली चमकती है। इसके साथ ही तेज वर्षा आरंभ हो जाती है। इसी स्थिति को **मानसून का फटना** कहते हैं। अत: मानसून की पहली वर्षा प्राय: भारी एवं व्यापक होती है।

- जब मानसून फटते हैं तो उत्तरी गोलार्द्ध में वायुमण्डल के संचालन में बड़ा परिवर्तन होता है। निम्न अक्षांशीय ऊपरी वायु के अगाध की स्थिति में गत्यात्मक परिवर्तन होने के साथ-साथ जेट स्ट्रीम के उपर्युक्त प्रकार के परिवर्तन एवं संचरण से मानसून तेजी से फटते हैं। ये निम्न अक्षांशीय निम्न दाब केंद्र 90º पूर्वी देशांतर की अपेक्षा 80º पूर्वी देशांतर की ओर खिसक जाने से भी मानसून शीघ्र फट पड़ते हैं। इस अगाध (निम्न दाब केंद) का स्थानांतरण पश्चिम की ओर होने का मुख्य कारण, शीतकाल में जो उपोष्ण पश्चिमी जेट हिमालय को घेरे रहता है, उसका ग्रीष्मकाल में उत्तर की

ओर खिसक जाना है। इसके खिसकने से ही मानसून फूट पड़ते हैं। जून के आरंभ होने से पूर्व उत्तर की ओर पश्चिमी जेट का प्रभाव रहता है। ज्योंही पश्चिमी जेट की दक्षिणी शाखा उत्तर की ओर बढ़ती है त्योंही इस अगाध का हस्तांतरण तिब्बत की ओर होने लगता है। साथ ही यहाँ पर उष्ण पूर्वी जेट का प्रभाव क्षेत्र तेजी से बढ़ जाता है। फलत: दक्षिण-पश्चिम मानसून फट पड़ता है एवं सारे देश में तेजी से इसका विस्तार होता जाता है।

- मई-जून में अत्यधिक गर्मी के कारण भारत एवं मध्य-एशिया में जो निम्न वायुदाब के केंद्र बन जाते हैं उनके फलस्वरूप दक्षिणी पश्चिमी मानसूनी पवनें दक्षिणी प्रायद्वीप की स्थिति के कारण दो शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं। इनमें से एक बंगाल की खाड़ी से और दूसरी अरब सागर की शाखा के नाम से देश में प्रवेश करती है। बंगाल की खाड़ी का मानसून कोलकाता में 7 जून के लगभग वर्षा करता है जबकि अरब सागर का मानसून केरल में लगभग 1 से 5 जून तक पहुँचता है। देश में इन्हीं पवनों से बड़ी तेजी से गर्जन-तर्जन के साथ वर्षा होती है। चूंकि ये पवनें हिंद महासागर के गरम जल के ऊपर से प्रवाहित होती हुई हजारों किमी. दूर से आती है। अत: इनमें वाष्प की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसी कारण जहाँ-जहाँ ये पवनें पहुँचती हैं वहाँ-वहाँ अधिक वर्षा करती है।
- दक्षिणी केरल प्रदेश में मानसून 1 से 5 जून के मध्य लगभग आरंभ हो जाता है और धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ता है। मुम्बई में यह 10 जून तक तथा उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब तथा राजस्थान में जून के अंतिम सप्ताह या जुलाई के प्रथम सप्ताह तक पहुँच जाता है। बंगाल की खाड़ी का मानसून मध्य बंगाल की खाड़ी से आरंभ होकर असम में जून के प्रथम सप्ताह तक पहुँचता है। कोलकाता में यह लगभग 7 जून तक पहुँच जाता है। इन तिथियों में 5 से 8 दिन का अंतर विशेषकर मध्य व उत्तरी-पश्चिमी भारत में सामान्य घटना मानी जाती है।
- मानसून की अवधि दो से चार महीने तक रहता है। लौटते समय यह और भी धीरे-धीरे लौटता है। सामान्यत: उत्तरी पश्चिमी भारत से यह अक्टूबर के आरंभ में और देश के शेष भागों में नवंबर के अंत तक लौटता है।
- दक्षिण-पश्चिमी मानसून के आरंभ होने से ठीक पहले 20 अप्रैल से मई के अंत तक उष्ण कटिबंधीय चक्रवात आने लगते हैं। ये विशेषकर बंगाल की खाड़ी से उठते हैं और देश के भीतर तक पहुँच जाते हैं। लेकिन जब दक्षिण-पश्चिमी मानसून अच्छी तरह चलने लगता है तो ये चक्रवात नहीं उठते और अक्टूबर तक इनके उठने की संभावना नहीं रहती। प्राय: सभी चक्रवात देश में गंगा, महानदी, गोदावरी तथा कावेरी नदियों के डेल्टाओं से प्रवेश करते हैं। इनके द्वारा एक दिन में 65 सेमी. तक भारी वर्षा एवं तेज आंधियाँ चलती हैं। यह तेज वर्षा भारी हानि व उत्पाती बाढ़ों का कारण बनती है। अरब सागर की अपेक्षा बंगाल की खाड़ी से उठने वाले चक्रवात अधिक बड़े होते हैं। ये सबसे अधिक बंगाल की खाड़ी में मई-जून तथा अक्टूबर-नवंबर से चलते हैं। मानसून का प्रारंभिक काल इन तूफानों के लिए उपर्युक्त समय होता है।

## *मानसून प्रत्यावर्तन की ऋतु*

सितंबर के समाप्त होते-होते सूर्य दक्षिणी गोलार्द्ध में प्रवेश कर जाता है। इसके परिणामस्वरूप जो निम्न वायुदाब क्षेत्र उत्तर-पश्चिम भारत में बना हुआ था। वह समाप्त होने लगता है। अक्टूबर में यह निम्न वायुदाब क्षेत्र बंगाल की खाड़ी की तरफ बढ़ता जाता है। अत: मानसून लौटना प्रारंभ हो जाता है पर मानसून उतनी तेजी से नहीं लौटता जितनी तेजी से वह आता है। वर्षा की गति धीमी पड़ती जाती है और सितंबर के अंत तक उत्तरी मैदानों में बंद हो जाती है। अब इन भागों में चक्रवातीय परिस्थितियों के स्थान पर प्रति चक्रवातीय परिस्थितियाँ बन जाती हैं। तापांतर बढ़ने लगता है। सबसे पहले अरब सागर की शाखा पंजाब तथा राजस्थान के भागों से और बंगाल की खाड़ी की शाखा गंगा के उत्तरी डेल्टा से धीरे-धीरे पीछे हटना प्रारंभ हो जाती है। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है निम्न वायुदाब का क्षेत्र भी क्षीण होने के साथ-साथ दक्षिण की ओर खिसकता रहता है। पंजाब से लगभग 15 सितंबर को, उत्तर प्रदेश से 1 अक्टूबर को और पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र से 15 अक्टूबर को मानसून लौटने लगते हैं। ये आंध्र प्रदेश से 1 नवंबर, तमिलनाडु से 15 नवंबर और केरल से 1 दिसंबर को लौटते हैं। इसी समय पवन की दिशा दक्षिण-पश्चिम से बदलकर उत्तर-पूर्वी हो जाती है। इन्हीं लौटती हुई मानसून पवनों द्वारा तमिलनाडु के कुछ आंतरिक भागों और पूर्वी तट पर तथा अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में सर्वाधिक वर्षा हो जाती है।

- इस प्रकार लौटता हुआ मानसून दिसंबर के प्रारंभ तक दक्षिणी-पूर्वी भारत में अनेक प्रभाव डालता है क्योंकि तमिलनाडु में शीतकाल के प्रारंभ में जो वर्षा होती है वह इन्हीं कारणों से होती है। इसके बाद दिसंबर में निम्न वायुदाब क्षेत्र दक्षिणी गोलार्द्ध में सूर्य के साथ-साथ चला जाता है और उत्तरी भारत में भी पश्चिम से पंजाब, हरियाणा एवं ऊपरी गंगा के मैदानों में चक्रवात आने प्रारंभ हो जाते हैं।
- ज्यों-ज्यों उत्तरी भारत से मानसून लौटने लगते हैं, त्यों-त्यों उत्तरी-पश्चिमी भागों में तापमान एकदम गिरते जाते हैं। अधिकतम औसत तापमान उतने नहीं गिरते जितने कि न्यूनतम क्योंकि अक्टूबर और नवंबर में अधिकतम औसत तापमान 37ºC के आसपास रहते हैं जबकि न्यूनतम तापमान इसी समय 10ºC या इससे भी कम हो जाते हैं। उत्तरी भागों में किसी-किसी रात्रि को तापमान 0ºC से भी कम हो जाते हैं।
- अक्टूबर के प्रारंभ में वर्षा पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा एवं जम्मू कश्मीर के भागों में प्राय: समाप्त हो जाती है। इस समय उत्तर-पूर्वी भारत में वर्षा होती है। यहाँ पर भी 10 अक्टूबर के बाद वर्षा-ऋतु समाप्त हो जाती है। इसी समय अरब सागरीय शाखा दक्षिणी पठार के उत्तरी-पूर्वी मानसूनी पवनें बंगाल की खाड़ी से गुजरते समय विशेष आर्द्र बनकर जब पूर्वी तट पर टकराती हैं तो तमिलनाडु और खाड़ी के तटीय भागों में वर्षा करा देती हैं। इस समय यहाँ के आंतरिक भागों की ओर बढ़ने पर वर्षा कम होती जाती है। इस समय दक्षिणी भारत में तमिलनाडु के आस-पास वर्षा 60-75 सेमी. तक होती है परंतु आंतरिक भागों में यह कम होती जाती है। यदि हम बेंगलूरू से डिब्रूगढ़ तक एक रेखा खींचे तो उसके पश्चिम में वर्षा इस मौसम में 5 सेमी. से भी कम होती है।
- इस काल की वर्षा अधिकांश 12º उत्तरी अक्षांश के दक्षिण में उत्पन्न हुए चक्रवातों से आता है ये चक्रवात जब सागर से किसी बड़े भू-भाग की ओर बढ़ते हैं तो तेजी से समाप्त हो जाते हैं या बहुत ही क्षीण हो जाते हैं किंतु जब तक इनका केंद्र बिंदु सागर के ऊपर रहता है तो सागर तट पर इनके द्वारा भयंकर हानि हो सकती है। ऐसे चक्रवात कभी-कभी बंगाल की खाड़ी से उठकर प्रायद्वीपों को पार कर अरब सागर तक जाते हैं। इनके द्वारा कभी-कभी समुद्र में बड़ी-बड़ी ज्वार तरंगें आती है जिनके द्वारा तट के निकट के निम्नस्थ क्षेत्रों विशेषकर आंध्रप्रदेश व ओडिशा के तट पर बड़ी क्षति पहुँचती है।

- एल नीनो एक गर्म जलधारा है जबकि ला नीनो एक ठंडी जलधारा है। एलनीनो पेरु तट के निकट बहने वाली शीतल जलधारा को प्रतिस्थापित करती है। एल नीनो के प्रभाव से दक्षिणी-पूर्वी प्रशांत महासागर क्षेत्र का तापमान अपेक्षा से अधिक हो जाता है तथा पश्चिम प्रशांत की स्थिति शीतल हो जाती है।
- जिससे मानसूनी वर्षा की उत्पत्ति नहीं हो पाती है तथा आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट, इंडोनेशिया तथा भारत में सूखे की स्थिति दर्ज की जाती है। जबकि ठंडी जलधारा ला-नीनो दक्षिणी प्रशांत महासागर में उच्च वायु दाब क्षेत्र उत्पन्न कर मानसून की गति तेज करती हैं।

## दक्षिणी दोलन व भारतीय मानसून

प्रशांत महासागर तथा हिंद महासागर के बीच देखे गये घटते-बढ़ते मौसमी बदलाव के प्रतिरूप की दक्षिणी दोलन कहते हैं। हिंद महासागर में शीत ऋतु में निम्न वायुदाब (सकारात्मक दक्षिणी दोलन) की स्थिति में आगामी मानसून की अच्छी संभावनाएँ बनती है तथा उच्च वायुदाब (नकारात्मक दक्षिणी दोलन) में आगामी मानसून कमजोर होता है।

इसकी अवधि 2 से 7 वर्ष होती है तथा यह एलनीनो प्रभाव से जुड़ा होता है। एलनीनो के प्रकटन से नकारात्मक दक्षिणी दोलन की उत्पत्ति होती है जो भारत में कमजोर मानसून का कारण बनता है। दक्षिणी दोलन शीत ऋतु में हिंद महासागर के वायुदाब को प्रशांत महासागर की परिस्थिति के अनुसार प्रभावित करता है।

## भारत में वर्षा का वितरण

भारत में वर्षा का वितरण असमान है, कहीं अधिक और कहीं कम। यहाँ वर्षा का औसत लगभग 109 सेमी. है अर्थात् प्रतिदिन लगभग 3670 लाख हेक्टेयर मीटर है। कभी-कभी तो इस सामान्य औसत से वर्षा + 30 सेमी. और - 20 सेमी. तक विचलित हो जाती है। देश में शीतकालीन वर्षा का औसत 3 सेमी., गर्मी की वर्षा का 11 सेमी., वर्षा-ऋतु का 82 सेमी. तथा लौटते हुए मानसून की वर्षा का औसत 13 सेमी. है। भारत का वार्षिक औसत, विश्व के औसत 99.1 सेमी. से कुछ ही अधिक है। किंतु विशेष ध्यान देने की बात यह है कि क्षेत्रीय एवं सामयिक दृष्टि से यह बहुत विषम है। वर्षा की निश्चितता और उसकी अनिश्चितता के आधार पर भारत के प्रदेशों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

1. ***निश्चित वर्षा वाले प्रदेश***- इनके अंतर्गत हिमालय का तराई प्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर, पश्चिमी मालाबार तट, पश्चिमी घाट के पश्चिमी ढाल और नर्मदा की ऊपरी घाटी सम्मिलित किए जाते हैं। यहाँ वर्षा प्राय: 150 सेमी. से भी अधिक होती है।
2. ***अनिश्चित वर्षा वाले प्रदेश***- इन प्रदेशों के अंतर्गत उत्तर प्रदेश, पश्चिमी और ऊपरी राजस्थान, उत्तर प्रदेश का सीमावर्ती भाग, मध्य राजस्थान का पठारी भाग, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र और गुजरात के मध्यवर्ती भाग, पूर्वी घाट के ढाल, संपूर्ण तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश का दक्षिणी और पश्चिमी भाग, कर्नाटक, बिहार, झारखंड और ओडिशा के कुछ जिले हैं। यहाँ पर अधिकांश भागों में वर्षा 100 सेमी. से भी कम होती है।

- भारत के कृषि मंत्रालय द्वारा वर्षा की दृष्टि से भारत के तीन विभाग किये गये हैं-
    - ***निश्चित वर्षा वाले भाग***- जहाँ वर्षा औसत 115 सेमी. होती है। इन भागों के अंतर्गत देश के कुल क्षेत्रफल का 29.6 प्रतिशत भाग सम्मिलित किया गया है। इसके अंतर्गत असम, उत्तरी-पूर्वी सीमांत, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, लक्षद्वीप, बिहार, झारखंड, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, ओडिशा, उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल और अंडमान-निकोबार द्वीपों के क्षेत्र आते हैं।
    - ***मध्यम वर्षा वाले भाग***- जिनमें वर्षा का वार्षिक औसत 76 सेमी. से 114 सेमी. तक होता है। देश के कुल क्षेत्रफल का 21.2 प्रतिशत भाग इनके अंतर्गत आता है, जो आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखंड, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पंजाब, हरियाणा, पूर्वी व दक्षिणी राजस्थान, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड राज्यों में फैला है।
- ***शुष्क प्रदेश***- इस प्रदेश में वर्षा का वार्षिक औसत 76 सेमी. से कम का है। देश के कुल क्षेत्रफल का 49.6 प्रतिशत इसके अंतर्गत है। आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, केरल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, महाराष्ट्र, कर्नाटक, ओडिशा, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और दिल्ली राज्यों में ये क्षेत्र पाये जाते हैं।

## जलवायु का भारत के आर्थिक और सामाजिक जीवन पर प्रभाव

भारत की जलवायु की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनका भारत के आर्थिक जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। शायद ही किसी देश में वर्षा का जीवन पर इतना अधिक प्रभाव पड़ता हो जितना कि भारत में क्योंकि 70 प्रतिशत जनता भरण-पोषण के लिए खेती एवं पशुपालन पर निर्भर करती है, जो मुख्यत: दक्षिण-पश्चिम मानसून पर आधारित है। वास्तव में मानसून वह धुरी है जिस पर भारत का समस्त जीवन चक्र एवं राष्ट्रीय वार्षिक बजट घूमता है क्योंकि वर्षा का अभाव खेती को ही नष्ट नहीं करता अपितु किसान एवं देश के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को भी झकझोर देता है। जलवायु के भारत के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव इस प्रकार हैं-

- शीतकाल में भी भारत का तापमान बहुत नीचे नहीं गिरता वरन् प्रत्येक भाग में यथेष्ट गर्मी रहती है। इस कारण कृषि कार्यों के लिए अधिक समय मिलता है। अधिकांश भागों में पाला और कोहरा नहीं पड़ता। अत: भारत में इस काल में शीतोष्ण कटिबंध की फसलें पैदा की जा सकती है और गर्मियों में उष्ण कटिबंध तथा अर्ध उष्ण कटिबंध की फसलें। अत: भारत में विश्व की सभी प्रकार की फसलें या कृषि उपजें पैदा की जा सकती है।
- ग्रीष्मकाल में तापमान अचानक बढ़ता है। अत: फसलें शीघ्र पक जाती हैं, शीघ्रता से पकने के कारण उनकी किस्म अच्छी नहीं होती है। भारत गुणात्मक उत्पादक नहीं वरन् परिमाणात्मक उत्पादक देश माना जाता है। यह बात दोनों ऋतुओं की ही फसलों पर लागू होती है। निरंतर कृषि शोध के पश्चात् भारतीय गुणात्मक उत्पादकता में भी 1965 के पश्चात् निरंतर सुधार आने लगा है। भारत का बासमती चावल एवं फार्म का गेहूँ अपनी किस्म में विश्व प्रसिद्ध हैं।
- जून, जुलाई और अगस्त के गर्मी के महीनों में ही अधिकांश वर्षा होती है। इससे सभी फसलें शीघ्र ही तैयार हो जाती हैं। इन दिनों की गर्म और नम जलवायु के कारण पौधों की वृद्धि और उत्पत्ति अधिक होती है जिससे पशुओं को यथेष्ट चारा मिल जाता है। परन्तु वर्ष का शेष भाग शुष्क रहता है। इस कारण यहाँ घास के मैदान नहीं पाये जाते। जो कुछ भी घास वर्षा के दिनों में पैदा होती है वह वर्षा के उपरांत धूप की तीव्रता से जल जाती है और चारे की कमी हो जाती है। जो कुछ भी चारा होता है वह पौष्टिक नहीं होता है। अत: पशुओं को जमा किया हुआ चारा खिलाना पड़ता है। वर्षा की सीमित अवधि के कारण शीतकाल में कृषि के लिए सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है।
- भीषण गर्मी के उपरांत वर्षा आने से अनेक व्याधियाँ और रोग उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ भागों में मलेरिया, आन्त्रशोध, आदि का भीषण प्रकोप होता है। इससे जनसंख्या की कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार वर्षा काल तथा ग्रीष्म के आरंभ में अनेक रोगों के कारण बच्चों की मृत्युदर भी ऊँची रहती है।
- भारत में वर्षा बहुत ही अनिश्चित होती है। किसी वर्ष वर्षा कम होने से सूखे की स्थिति में दुर्भिक्ष पड़ जाता है तो किसी वर्ष वर्षा अधिक होने से नदियों में बाढ़ आ जाती है इससे भी फसलें नष्ट हो जाती हैं। इसी कारण भारतीय ग्रामीण निराशावादी और भाग्यवादी बन गया है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण ही भारत सरकार के वित्त विभाग का बजट मानसून का जुआ समझा जाता है क्योंकि अकाल पड़ने या बाढ़ के कारण लगान वसूली बंद हो जाती है और सरकार को अकाल व बाढ़ पीड़ितों की सहायता करनी पड़ती है।
- वर्षा के इस विषम वितरण के कारण ही यहाँ विभिन्न प्रकार की कृषि (आर्द्र कृषि, सिंचित कृषि तथा शुष्क कृषि) की जाती है। इसी भांति मानसून या वर्षा के काल में उष्ण व अर्द्धउष्ण कटिबंध की एवं शीत ऋतु में शीतोष्ण कटिबंध की फसलें पैदा की जाती है।
- अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बाढ़ के कारण अपार जन-धन एवं फसल, पशुओं और रेलमार्गों तथा सड़कों की हानि होती है। इसी प्रकार तूफानी या चक्रवातीय

वर्षा के कारण खड़ी हुई फसलों और पशुओं को भी भारी हानि उठानी पड़ती है।

- मानसूनी जलवायु मानव जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव भी डालती है। व्यक्ति अपने जीवन के लिए कितना संघर्ष करता है यह बात उसके चरित्र को प्रभावित करती है। भारतवासी तो उष्ण कटिबंध का निवासी है। इसलिए वह शीघ्र ही प्रौढ़ हो जाता है और शीघ्र ही वृद्ध भी। एक औसत भारतीय की जीवन अवधि अब 65 वर्ष है जो कि यूरोपीय देशों की तुलना में काफी कम है। लड़कियाँ किशोरावस्था में शीघ्र ही प्रवेश कर जाती है। यह भारत में बाल-विवाह की प्रथा के प्रचलन का एक भौगोलिक कारण है।
- यहाँ का पहनावा भी जलवायु के अनुसार प्रभावित होता है। भारत में अधिक गर्मी पड़ने तथा ग्रीष्म में ही वर्षा होने के फलस्वरूप ढीले एवं महीन सूती वस्त्र अधिक पहने जाते हैं। उत्तरी भारत में विशेषकर शीतकाल में लोग ऊनी वस्त्र पहनते हैं, जिससे शरीर गर्म रहता है। रेशमी कपड़ा भी हल्का होता है। अत: वह हिंदुओं में उत्सवों के अवसरों पर अधिक पहना जाता है, जैसे पीताम्बर, साड़ियां, ऊपरने, कुरते आदि।
- भारत के भिन्न-भिन्न भागों में वनस्पति की विविधता पाई जाती है। अत: वह भी अपना प्रभाव वस्त्रों पर डालती है। यहाँ की स्त्रियां रंगीन छपी हुई साड़ियां अधिक पहनती हैं। मारवाड़ी स्त्रियों के भारी लहंगे तथा सिंधियों के सलवार और कुर्ते तथा मुसलमानों के बुर्के एवं तंग पायजामे व कुर्ते आदि मुख्य वेशभूषा हैं क्योंकि जिन भागों में ये रहते हैं वहाँ शुष्कता एवं गर्मी का साम्राज्य है अतएव धूल और गर्मियों से बचने के लिए ऐसे ही वस्त्र पहने जाते हैं जिससे अधिक सुविधा रह सकें।
- अन्य उष्ण कटिबंधीय देशों की भांति भारत में भी धूप या रोशनी की अपेक्षा हवा की अधिक आवश्यकता रहती है। इसी कारण यहाँ के भवन शीतोष्ण कटिबंधीय देशों की तुलना में भिन्न प्रकार के होते हैं। प्रत्येक भवन में आंगन और सहन होते हैं जिससे शीतल वायु निर्विरोध घरों के भीतरी भागों में पहुँच सकें बड़े-बड़े प्रासादों (महलों) में तो कमरों की छतें बहुत ऊँची रखी जाती हैं ताकि दूषित वायु का रोशनदानों से निकास व शुद्ध वायु का खिड़की-दरवाजों से प्रवेश हो सकें।

## भारतीय जलवायु की मुख्य विशेषताएँ

- ***मानसून पवनों का प्रभाव***- भारतीय जलवायु के संबंध में सबसे मुख्य बात यह है कि यह जलवायु पूर्णत: मानसूनी पवनों से प्रभावित है। यही कारण है कि भारतीय जलवायु को मानसूनी जलवायु कहा जाता है। मानसून पवनों का प्रभाव भारत की जलवायु पर किसी अन्य देश की तुलना में अधिक पड़ता है।
- ***वर्षा की मात्रा तथा समय***- भारत की अधिकांश वर्षा दक्षिण-पश्चिमी मानसूनी पवनों द्वारा होती है। देश की कुल वर्षा का 75 प्रतिशत ग्रीष्मकालीन दक्षिण-पश्चिम मानसून काल में, 13 प्रतिशत मानसून के उपरांत काल में, 10 प्रतिशत पूर्व मानसून काल में तथा शेष 2 प्रतिशत शीतकाल में होता है।
- ***वर्षा का असमान वितरण***- भारत में वर्षा का क्षेत्रीय वितरण समान नहीं है। मासिनराम में 1221 सेमी. वार्षिक वर्षा होती है जबकि जैसलमेर में 10 सेमी. से भी कम वार्षिक वर्षा होती है। भारत का केवल 11 प्रतिशत भाग 200 सेमी. से अधिक वार्षिक वर्षा प्राप्त करता है, जबकि लगभग एक तिहाई भू-भाग में 75 सेमी. से कम वार्षिक वर्षा होती है।
- ***वर्षा की अनिश्चितता***- मानसूनी वर्षा का अधिकांश भाग जुलाई से सितंबर तक प्राप्त होता है। परंतु मानसून वर्षा प्राय: समय पर नहीं आती और काफी अनिश्चित होती है। कभी तो यह वर्षा समय से पहले आ जाती है और कभी काफी देर से आती है। इससे कृषि कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि दस वर्षों की अवधि में केवल दो वर्ष ही मानसून की वर्षा समय पर आरंभ तथा समाप्त होती है। शेष आठ वर्षों में इसके प्रारंभ तथा समापन में अनिश्चितता पाई जाती है।
- ***वर्षा की अनियमितता***- मानसूनी वर्षा अनिश्चित होने के साथ-साथ अनियमित भी होती है। यह अपनी नियमित मात्रा से अधिक अथवा कम हो सकती है जिससे क्रमश: बाढ़ अथवा सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अनियमितता का प्रभाव विशेष रूप से 50 से 100 सेमी. वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पड़ता है। ऊपरी व मध्य गंगा का मैदान तथा प्रायद्वीपीय भारत के अधिकांश भागों में इसका प्रभाव पड़ता है।
- इससे अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अनियमितता के बावजूद भी फसलों के लिए पर्याप्त जल मिल जाता है और इससे कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधाएं उपलब्ध हैं।
- ***मानसून विभंगता***- मानसून की वर्षा निरंतर नहीं होती, बल्कि कुछ दिनों के अंतराल पर रूक-रूक कर होती है। कभी-कभी वर्षा काल के एक माह तक वर्षा नहीं होती है। किसी वर्ष वर्षा-ऋतु के आरंभ में खूब वर्षा हो जाती है और इसके बाद एक लम्बा सूखा अंतराल आ जाता है। इसे मानसून विभंगता कहते हैं। इससे कृषि को हानि पहुँचती है।
- ***मूसलाधार वर्षा***- देश की कुल वार्षिक वर्षा का 75 प्रतिशत भाग मानसूनी पवनों द्वारा वर्ष के केवल चार महीनों में प्राप्त होता है। इन चार महीनों में भी वास्तविक वर्षा के दिन केवल 40 से 45 ही होते हैं। इन दिनों वर्षा बूंदा-बूंदी के रूप में न होकर मूसलाधार रूप में होती है। चेरापूंजी में 180 दिन में 1080 सेमी. तथा श्रीगंगानगर (राजस्थान) में 10-12 दिनों में 12 सेमी. वर्षा हो जाती है।
- ***धरातलीय वर्षा***- मानसूनी वर्षा मूल रूप से धरातलीय वर्षा है। देश में स्थित ऊँचे पर्वत मानसूनी पवनों को रोककर वर्षा करने में सहायता करते हैं। हिमालय पर्वत तथा पश्चिमी घाट इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पवन सम्मुख ढालों पर खूब वर्षा होती है जबकि पवन विमुख ढाल प्राय: शुष्क रह जाते हैं।
- ***तापमान का असमान वितरण***- भारत के विभिन्न भागों में तापमान की भिन्नता पाई जाती है। उत्तर-पश्चिमी भारत में महाद्वीपीय जलवायु है जिस कारण ग्रीष्म ऋतु में तापमान 45° से. तक पहुँच जाता है जबकि शीतऋतु में यह हिमांक से भी नीचे गिर जाता है। दक्षिणी भारत में समुद्र के समकारी प्रभाव के कारण तापमान में अधिक विषमता नहीं पाई जाती है।

## भारत के जलवायु क्षेत्र

भारत की विशालता एवं अनेक स्थलाकृतिक विशेषताओं के कारण भारत का विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में विभाजन कर पाना एक दुष्कर कार्य है तथापि भारत के जलवायु क्षेत्रों को मुख्यत: वर्षा की मात्रा एवं तापमान को आधार बनाकर वर्गीकृत किया गया है। किंतु **कोपेन** तथा **ट्रिवार्था** द्वारा किया गया वर्गीकरण प्राय: सर्वमान्य है। इन्होंने जलवायु क्षेत्रों में विभाजन का आधार प्रमुख रूप से वर्षा की मात्रा एवं तापमान को बनाया है।

### कोपेन का वर्गीकरण

कोपेन ने 1918 में भारत को विभिन्न जलवायु प्रदेशों में विभाजित करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। कोपेन ने जलवायु प्रदेश विभाजन के लिए वार्षिक मासिक तापमान, वर्षा की मात्रा तथा स्थानीय वनस्पति को आधार माना। उन्होंने भारत की जलवायु को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है-

- ***अल्प शुष्क ऋतु वाले मानसून प्रकार के क्षेत्र***- इस क्षेत्र के अंतर्गत मालाबार व कोंकण तट के क्षेत्र आते हैं। शीत ऋतु प्राय: शुष्क होती है परंतु ग्रीष्म ऋतु में 200 सेमी. से अधिक वर्षा होती है व यहाँ उष्णकटिबंधीय सदाबहार वन पाये जाते हैं।
- ***उष्णकटिबंधीय सवाना प्रकार के क्षेत्र***- इसके अंतर्गत प्रायद्वीपीय पठार के अधिकांश भाग आते हैं। यहाँ शीत ऋतु शुष्क एवं ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होती है।
- ***दीर्घावधि ग्रीष्म ऋतु वाले शुष्क मानसून प्रकार के क्षेत्र***- कोरोमण्डल तट पर ऐसी जलवायु मिलती है। शीत ऋतु में इन स्थानों पर वर्षा होती है व उष्ण कटिबंधीय सवाना प्रकार की जलवायु मिलती है।
- ***अर्द्ध शुष्क स्टेपी जलवायु क्षेत्र***- अर्द्ध शुष्क स्टेपी जलवायु क्षेत्र के अंतर्गत राजस्थान व हरियाणा के कुछ भाग आते हैं। यहाँ ग्रीष्मकाल में

साधारण वर्षा होती है व अर्द्ध मरुस्थलीय शुष्क जलवायु पाई जाती हैं।

- ***शुष्क उष्ण मरुस्थलीय जलवायु क्षेत्र***– इसके अंतर्गत पश्चिमी राजस्थान के क्षेत्र आते हैं। इन क्षेत्रों में तापमान अधिक व अत्यंत कम वर्षा होती है।
- ***समशीतोष्ण आर्द्र जलवायु क्षेत्र***– भारत के मैदानी क्षेत्र इस जलवायु क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। यहाँ ग्रीष्म ऋतु में वर्षा व शीत ऋतु शुष्क होती है।
- ***शीतोष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु***– भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों में इस प्रकार की जलवायु पाई जाती है। यहाँ सभी ऋतुओं में वर्षा होती है।
- ***ध्रुवीय प्रकार की जलवायु वाले क्षेत्र***– इसके अंतर्गत कश्मीर व निकटवर्ती पर्वतमालाएं आती हैं। यहाँ सर्वाधिक तापमान $10^o$ से. तक जाता है।
- ***टुण्ड्रा प्रकार की जलवायु वाले क्षेत्र***– उन पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसी जलवायु पाई जाती है जहाँ तापमान $0^o$ से. से $10^o$ से. के मध्य रहता है व ऊँचाई बढ़ने पर तापमान में कमी आती है। उत्तराखंड के पर्वतीय अंचलों में ऐसी जलवायु पाई जाती है।

## ट्रिवार्था का वर्गीकरण

भारतीय जलवायविक क्षेत्रों में किए गए अभी तक के सभी वर्गीकरणों में ट्रिवार्था द्वारा किया गया वर्गीकरण अधिक संतोषजनक है। वस्तुत: ट्रिवार्था द्वारा किया गया वर्गीकरण कोपेन के वर्गीकरण का ही सुधारा हुआ रूप है। ट्रिवार्था ने संपूर्ण भारत को चार वर्गों (A, B, C, H) में विभाजित किया है। उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु, जहाँ का तापमान उच्च बना रहता है, को **A प्रकार** की जलवायु कहा गया है। **B प्रकार** उच्च तापमान किंतु निम्न वर्षा युक्त शुष्क जलवायु की ओर इंगित करता है। **C प्रकार** के क्षेत्र वे हैं जहाँ 0ºC से 18ºC के मध्य के निम्न तापमान युक्त शुष्क सर्दी वाली जलवायु विद्यमान रहती है। **H प्रकार** पर्वतीय जलवायु का संकेतक है। A, B, C प्रकारों को पुन: उप-विभाजित किया गया है। ***इस प्रकार यहाँ सात प्रकार के जलवायविक क्षेत्र हैं।***

1. ***उष्णकटिबंधीय वर्षा वन (Am)*** – ये वन पश्चिमी तटीय मैदानों, सह्याद्रि एवं असम के कुछ भागों में पाए जाते हैं। इन क्षेत्रों का तापमान सदैव उच्च रहता है तथा कभी-भी तापमान सर्दियों में भी 18.2ºC से नीचे नहीं गिरता है। अप्रैल एवं मई में तापमान 29ºC से अधिक हो जाता है। ये दोनों महीने इन क्षेत्रों के सर्वाधिक गर्म महीने माने जाते हैं। यहाँ मई से नवंबर तक लगभग 200 सेमी. वर्षा होती है।
2. ***उष्णकटिबंधीय सवाना (Aw)*** – इस प्रकार की जलवायु पश्चिमी घाट के पवन विमुखी पार्श्व के अर्द्ध-शुष्क क्षेत्र को छोड़कर अधिकांश प्रायद्वीपीय क्षेत्र में पाई जाती है। यहाँ सर्दियों के दौरान औसतन 18.2ºC तथा गर्मियों के दौरान 32ºC तापमान रहता है। यहाँ तापमान कभी-कभी 46ºC से 48ºC तक भी पहुँच जाता है। जून से सितंबर तक वर्षा होती है, यद्यपि दक्षिण में यह दिसंबर माह के अंत तक होती रहती है। वार्षिक वर्षा का वितरण असमान है, पश्चिम में जहाँ 76 सेमी. वर्षा होती है, वहीं पूर्व में 152 सेमी. वर्षा होती है। प्रायद्वीपीय भारत का अधिकांश भाग इसके तहत आता है।
3. ***उष्णकटिबंधीय अर्द्धशुष्क स्टेपी जलवायु (Bs)*** – अत्यधिक वर्षा वाले इस जलवायविक क्षेत्र में मध्य महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंतरिक तमिलनाडु तथा पश्चिमी आंध्रप्रदेश आते हैं। इन क्षेत्रों में तापमान का वितरण विषमतापूर्ण है, जो कि दिसंबर में 20ºC से 23.8ºC तक तथा मई में 32.8ºC तक रहता है। ये दोनों महीने इन क्षेत्रों के क्रमश: सबसे ठंडे और गर्म महीने हैं। यहाँ वार्षिक वर्षा 40 से 75 सेमी. तक होती है। अत: यह क्षेत्र भारत के अकाल प्रभावित क्षेत्र के रूप में जाने जाते हैं।
4. ***उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्ण कटिबंधीय स्टेपी जलवायु (Bsh)***– इस प्रकार की जलवायु पंजाब, थार मरुस्थल, उत्तरी गुजरात एवं पश्चिमी राजस्थान में पाई जाती है। यहाँ 12ºC (जनवरी) तथा 35ºC (जून) के मध्य तापमान रहता है। ये दोनों महीने वर्ष के क्रमश: सबसे ठंडे और गर्म महीने हैं। यहाँ का अधिकतम तापमान 49ºC तक भी पहुँच जाता है। यहाँ 30.5 से 63.5 सेमी. तक वर्षा होती है, साथ ही अत्यधिक अनियमितता भी है।
5. ***उष्णकटिबंधीय मरुस्थलीय (Bwh)*** – यह जलवायु राजस्थान के बाड़मेर, जैसलमेर और बीकानेर जिलों तथा कच्छ के कुछ भागों में पाई जाती है। यहाँ का तापमान औसतन उच्च रहता है (लगभग 34.5ºC) मई और जून यहाँ के सबसे गर्म महीने हैं। सर्दियों में तापमान उत्तर की ओर घटता जाता है। वार्षिक वर्षा औसतन 30.5 सेमी. होती है, किंतु कुछ क्षेत्रों में 12.7 सेमी. से भी कम वर्षापात होता है।
6. ***शुष्क शीत युक्त आर्द्र उपोष्णकटिबंधीय जलवायु (Caw)*** – दक्षिणी हिमालय के बड़े क्षेत्र, उपोष्णकटिबंधीय स्टेपी के पूर्व तथा उष्णकटिबंधीय सवाना के उत्तर में (पंजाब से असम तक) यह जलवायु पाई जाती है। इनके अतिरिक्त राजस्थान में अरावली पर्वत श्रृंखला के पूर्व में भी यह जलवायु पाई जाती है। यहाँ सर्दियाँ सौम्य होती हैं। पश्चिमी क्षेत्र में ग्रीष्म ऋतु अत्यधिक गर्म होती है किंतु पूर्व में थोड़ी सौम्य हो जाती है। मई और जून सर्वाधिक गर्म महीने हैं। वार्षिक वर्षापात 63.5 सेमी. से 254 सेमी. तक रहता है।
7. ***पर्वतीय जलवायु (H)*** – इस प्रकार की जलवायु हिमालय जैसे 6000 मीटर या अधिक की ऊँचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाती है। यहाँ धूपयुक्त तापमान एवं छायित ढालों के तापमान के मध्य स्पष्ट विभाजन रहता है।

- हिमालय पार पट्टी जो कि पश्चिमी हिमालय के उत्तर में स्थित है, की जलवायु शुष्क एवं ठंडी है। यहाँ छितरी हुई और अविकसित प्रकार की वनस्पति पाई जाती है। सर्दियाँ काफी ठंडी होती हैं और वर्षापात अपर्याप्त होता है। प्रतिदिन एवं वार्षिक तापमान उच्च रहता हैं।
- हिमालय की दक्षिणी ढालें जहाँ अत्यधिक ठंड से रक्षा करती हैं, वहीं दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनी पवनों के प्रवेश को भी सुगम बनाती है। यहाँ 1069-2286 मीटर या अधिक की ऊँचाई वाली ढालों पर भारी वर्षापात होता है।

## सूखा (Drought)

साधारण शब्दों में सूखा से अभिप्राय पानी की अल्पता व अनुपलब्धता से उत्पन्न शुष्कता से है। भारतीय मौसम विभाग के अनुसार सूखा वह स्थिति है जब किसी क्षेत्र विशेष में सामान्य से 25 प्रतिशत कम वर्षा होती है। यह सूखे की न्यून स्थिति है। जब वर्षा के स्तर में कमी 26 से 50 प्रतिशत से अधिक होती है तो भयंकर सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

- मानसून की अनिश्चित प्रकृति के कारण भारत में औसतन प्रति पाँच वर्ष में एक बार सूखा पड़ता है। सूखे के कारण अल्प सिंचाई सुविधा वाले भाग अधिक प्रभावित होते हैं। देश के कुल क्षेत्रफल के 35 प्रतिशत भाग ऐसे हैं जहाँ औसतन 75 सेमी. से कम वर्षा होती है। सूखा संभावित क्षेत्रों में पश्चिमी घाट में कृष्णा नदी के साथ तट से 80 किमी. दूर तक के क्षेत्र, अहमदाबाद, जालंधर व कानपुर के मध्य अर्द्ध-शुष्क व मरुस्थली क्षेत्र, तमिलनाडु के कोयम्बटूर व तिरुन्नेलवेल्ली क्षेत्र, कच्छ व सौराष्ट्र, ओडिशा, पुरुलिया, पश्चिम बंगाल व मिर्जापुर पठार इत्यादि आते हैं।
- वस्तुत: विशाल जल स्रोतों की उपलब्धता के बाद भी भारत को प्राय: सूखे का सामना करना पड़ता है। यहाँ लंबी, मध्यम एवं लघु नदियाँ हैं। यहाँ की वार्षिक औसत वर्षा (हिमवर्षण सहित) लगभग 114 सेमी. है, जिससे लगभग 4000 क्यूबिक किमी. जल प्राप्त होता है। वाष्पीकरण तथा अन्य प्रकार की हानि के पश्चात् भी लगभग 1870 क्यूबिक किमी. जल की उपलब्धता होनी चाहिए किंतु यह मात्र 700 क्यूबिक किमी. रहता है।
- भारत में लगभग 68 प्रतिशत क्षेत्र सिंचाई हेतु वर्षा के जल पर निर्भर है। वर्षा के जल के वितरण व मात्रा में भारी विषमताएँ हैं। पश्चिमी राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, तेलंगाना, रायलसीमा, बिहार, सौराष्ट्र एवं कच्छ तथा ओडिशा (कालाहांडी, बलांगीर एवं कोरापुट) के कुछ भाग सूखे से सर्वाधिक ग्रस्त है।

## सूखा प्रबंधन

हालाँकि सूखे को एक प्राकृतिक आपदा माना जाता है, किंतु मानव भी इसके लिए उत्तरदायी है। मानव ने प्रकृति द्वारा प्रदान किये गऐ संसाधनों का अंधाधुंध दोहन किया है। प्रकृति में असंतुलन, वृक्षों के कटाव आदि से भी वर्षा की मात्रा प्रभावित होती है। इस प्रकार सूखा एक प्राकृतिक आपदा के साथ-साथ मानवीय क्रिया-कलापों का प्रतिफल भी है।

- सूखे से निपटने के लिए व्यापक स्तर पर योजनाएँ बनाकर उन्हें समुचित रूप से संचालित किया जाना चाहिए। सुदूर संवेदन विधि उपग्रह मानचित्रण तथा भौगोलिक सूचनातंत्र विधि द्वारा भूजल के भंडारों की खोज की जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त जल संग्रहण हेतु छोटे बाँधों का निर्माण, सूखा रोधी फसलें लगाना तथा वनारोपण करना, इत्यादि अन्य प्रभावी उपाय हैं।

## बाढ़ (Flood)

सामान्यत: जब किसी नदी का जल स्तर इतना बढ़ता है कि आसपास की भूमि पूर्णतया जल प्लावित हो जाती है तो बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी बाढ़ें भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। इनसे फसलों, भवनों, सड़कों तथा रेलवे लाइनों को भारी नुकसान होता है।

### भारत के बाढ़ क्षेत्र

मानसून की अनिश्चितता ने भारत को विश्व का सर्वाधिक बाढ़ ग्रस्त क्षेत्र बना दिया है। भारी वर्षा, चक्रवात, उफनती नदियों, नदी तल के उच्चावच व नदियों के बहाव की दिशा में परिवर्तन और खराब अपवाह व्यवस्था के कारण भारत के कुल 2.42 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में से 25-50 प्रतिशत क्षेत्र में बाढ़ आती है या वे बाढ़ संभावित क्षेत्रों में आते हैं। बाढ़ के लिए मुख्यत: गंगा व ब्रह्मपुत्र तंत्र की नदियाँ उत्तरदायी हैं। राज्यों में कुल क्षति का 33 प्रतिशत उत्तर प्रदेश को, बिहार को 27 प्रतिशत व पंजाब व हरियाणा को 15 प्रतिशत वहन करना पड़ता है। बाढ़ से प्रभावित अन्य राज्यों में पश्चिम बंगाल, ओडिशा, असम, कर्नाटक, मध्यप्रदेश व गुजरात शामिल हैं। दक्षिण में गोदावरी व कृष्णा नदी दोआब में समय-समय पर बाढ़ आती रहती है। बाढ़ आने के अन्य कारणों में नदी के जल ग्रहण क्षेत्र में वनोन्मूलन होना, नदी मुहाने पर अपतट-रोधिका का होना (जो नदी के प्रवाह में बाधा डालती है) इत्यादि हैं।

## बाढ़ नियंत्रण

बाढ़ नियंत्रण के अनेक कार्यक्रमों के अंतर्गत बाढ़ से सुरक्षा प्रदान करने के लिए भण्डारण बाँध, अपवाह चैनल व तटबंध बनाये गये हैं। बाढ़ से सुरक्षा के लिए ''राष्ट्रीय बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम'' 1954 में आरंभ किया गया। इस राष्ट्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत सभी बाढ़ संभावित क्षेत्रों को सुरक्षा प्रदान की जाती है। राष्ट्रीय बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम नीति में तीन चरण निर्धारित किए गये हैं-

1. **पहला चरण,** दो वर्ष का था, जिसमें मूलभूत जल संबंधी आँकड़े एकत्र करना, तटबंधों का निर्माण करना, नदी चैनलों में सुधार करना, ग्रामों के भू-स्तर को बाढ़ स्तर से ऊपर उठाना इत्यादि कार्यों को पूरा करना था।
2. **दूसरा चरण,** अगले 4-5 वर्षों में पूरा किया जाना था, जिसमें धरातलीय अपवाह में सुधार, बाढ़ की पूर्व सूचना देने वाले तंत्र का विकास करना, ग्रामों को बाढ़ स्तर से ऊपर उठाना या विस्थापित करना और अधिक तटबंधों का निर्माण करना व ऊँचे प्लेटफार्मों का निर्माण करना, (ताकि उनका उपयोग बाढ़ आपातकाल में किया जा सके) तथा जल निकासी के लिए चैनल निर्माण करना इत्यादि उपाय शामिल थे।
3. **तीसरा चरण,** दीर्घावधि के लिए विचारित था, जिसमें बाढ़ नियंत्रण के लिए बाँधों व भण्डारण बाँधों का निर्माण, विभिन्न नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र में मृदा संरक्षण इत्यादि कार्यक्रम चलाना विचारित था।

- बाढ़ की पूर्व सूचना देने के लिए ताप्ती (सूरत), नर्मदा (भड़ौच), गंगा (वाराणसी, बक्सर, पटना), ब्रह्मपुत्र (डिब्रूगढ़ व गुवाहाटी), तीस्ता (जलपाईगुड़ी), यमुना (दिल्ली), स्वर्णरेखा (भुवनेश्वर), चंबल इत्यादि नदियों पर सूचना केंद्र स्थापित किये गये हैं।

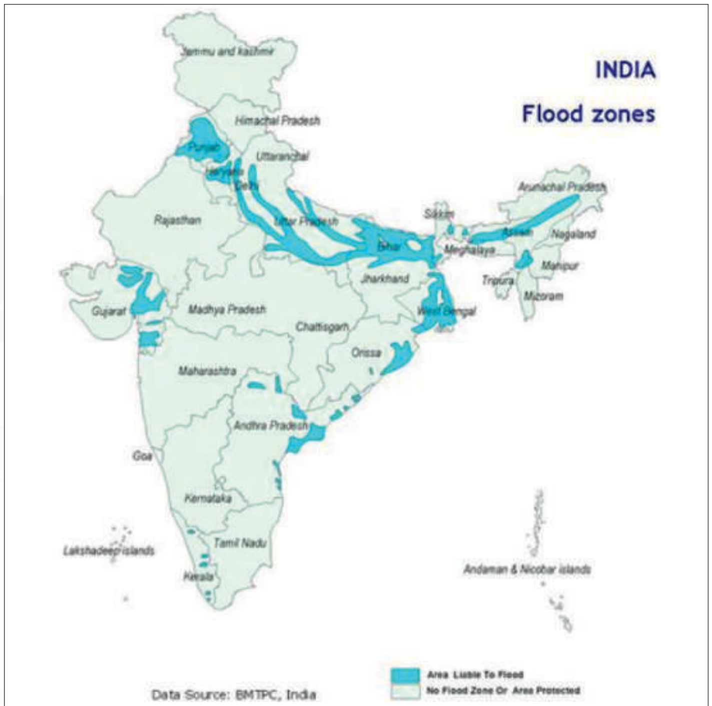


भारत के बाढ़ क्षेत्र

## भारत में चक्रवात

चक्रवात निम्न वायुदाब का वह क्षेत्र है जो चारों ओर से उच्च वायुदाब द्वारा घिरा हुआ होता है। वायु चारों ओर से चक्रवात के निम्न वायुदाब वाले केंद्र की ओर चलती है। पृथ्वी के घूर्णन के कारण पवनें उत्तरी गोलार्द्ध में घड़ी की सूईयों की विपरीत दिशा में चलती हैं जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध में पवनें घड़ी की सूइयों की दिशा के अनुकूल चलती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात विषुवत रेखा के 30° दक्षिण व उत्तर अक्षांशों के आसपास ही सीमित होते हैं। एक उष्ण कटिबंधीय चक्रवात सामान्यत: 500 से 1000 किमी. क्षेत्र में फैला होता है और इसकी उर्ध्वाधर ऊँचाई 12 से 14 किमी. हो सकती है।

- हिंद महासागर के उष्ण कटिबंधीय चक्रवात अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में पैदा होते हैं और भारत के तट को पार करके आंतरिक भागों में प्रवेश करते हैं। जब कमजोर रूप से विकसित कम दबाव के क्षेत्र के चारों ओर तापमान की क्षैतिज प्रवणता बहुत अधिक होती है तब उष्ण कटिबंधीय चक्रवात बन सकता है।
- यद्यपि उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कहना मुश्किल है तथापि इस संबंध में निम्नलिखित प्रारंभिक परिस्थितियों का होना अनिवार्य है-
  - निरंतर तथा पर्याप्त मात्रा में उष्ण (तापमान 26° से अधिक) तथा आर्द्र वायु का उपलब्ध होना, जिनसे बड़ी मात्रा में गुप्त ऊष्मा निर्मुक्त हो।
  - तेज कॉरियोलिस बल जो केंद्र पर स्थित निम्न वायुदाब वाले क्षेत्र को भरने न दे। यहाँ पर बताना आवश्यक है कि भूमध्य रेखा से 5° उत्तर तथा 5° दक्षिण तक उष्ण कटिबंधीय चक्रवात पैदा नहीं होते क्योंकि वहाँ पर कोरियोलिस बल बहुत कम है।

- क्षोभमंडल में अस्थिरता।
- मजबूत ऊर्ध्वाधर वायु 'फान' की अनुपस्थिति, जो नम और गुप्त ऊष्मा युक्त वायु के ऊर्ध्वाधर बहाव को अवरूद्ध करें।

## उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की संरचना

उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में बहुत अधिक दाब प्रवणता (14-17 मि.बा./100 किमी.) होती है। कुछ चक्रवातों में यह इससे भी अधिक ऊँची अर्थात 60 मि. बा./100 किमी. होती है। पवन पट्टी केंद्र से 10 से 150 किमी. या कभी-कभी इससे अधिक दूरी में फैली होती है। धरातल पर पवन का चक्रवातीय परिसंचरण होता है तथा ऊँचाई पर यह प्रतिचक्रवातीय बन जाता है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की क्रोड कोष्ण होती है। चक्रवात का केंद्र सामान्यत: मेघ विहीन होता है। इसे चक्रवात की आँख कहते हैं। चक्रवात की आँख बहुत ऊँचाई तक फैले ऊर्ध्वाधर बादलों से घिरी होती है। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात से सामान्यत: 50 सेमी. से अधिक वर्षा होती हैं। कभी-कभी वर्षा 100 सेमी. से भी अधिक हो जाती है।

- चक्रवात अपने पूरे तंत्र के साथ लगभग 20 किमी. प्रति घंटा औसत गति से आगे बढ़ता है। जैसे-जैसे चक्रवात स्थल पर बढ़ता जाता है, समुद्री जल के अभाव में इसकी ऊर्जा घटती जाती है। इससे चक्रवात समाप्त हो जाता है। चक्रवात की जीवन अवधि 5 से 7 दिनों की होती है।

## भारत में उष्णकटिबंधीय चक्रवातों का स्थानिक एवं कालिक वितरण

अरब सागर की तुलना में बंगाल की खाड़ी में तूफानों की संख्या कहीं अधिक है। बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में अधिकतर तूफान अक्टूबर और नवंबर के महीनों में आते हैं। मानसून ऋतु का प्रारंभिक भाग भी बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में उष्ण कटिबंधीय तूफानों की उत्पत्ति के अनुकूल है। मानसून ऋतु में अधिकतर चक्रवात 10º उत्तरी तथा 15º उत्तरी अक्षांशों के मध्य ही उत्पन्न होते हैं। जून में बंगाल की खाड़ी के लगभग सभी तूफान 92º पूर्वी देशांतर के पश्चिम में 16º उत्तरी और 21º उत्तरी अक्षांश के मध्य जन्म लेते हैं। जुलाई में खाड़ी से तूफानों का जन्म 18º उत्तरी अक्षांश के उत्तर में तथा 90º पूर्वी देशांतर के पश्चिम में होता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जुलाई के सभी तूफान पश्चिमी पथ का अनुसरण करते हैं। ये सामान्यत: 20º उत्तरी तथा 25º उत्तरी अक्षांशों के मध्य तक ही सीमित रहते हैं तथा हिमालय के गिरिपद पहाड़ियों की ओर अपेक्षाकृत बहुत कम मुड़ते हैं।

## उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का विध्वंसकारी प्रभाव

उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का आकार छोटा होता है और दाब प्रवणता तीव्र होने के कारण वायु बड़ी तीव्र गति से चलती है। अत: इससे जान-माल की भारी हानि होती है। लाखों की संख्या में लोग मारे जाते हैं। पेड़, बिजली तथा टेलीफोन के खम्भे उखड़ जाते हैं और भवनों को भी भारी हानि होती है। इन चक्रवातों से भारी वर्षा होती है जिससे बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होने वाले चक्रवात सामान्यतया अक्टूबर से दिसंबर तक पैदा होते हैं। कुछ चक्रवात मई में भी बनते हैं। अरब सागर के चक्रवात प्राय: अप्रैल से जून तक पैदा होते हैं। इनका मार्ग सामान्यतया तट के समानांतर होता है और ये बंगाल की खाड़ी के चक्रवातों की अपेक्षा स्थलीय भाग को कम प्रभावित करते हैं। समुद्र में चक्रवातों के पैदा होने से ऊँची-ऊँची लहरें उठती हैं और मछुआरों तथा नाविकों की जान को खतरा हो जाता है। बहुत से मछुआरे अपनी जान गंवा बैठते हैं। ये चक्रवात ओडिशा, आंध्रप्रदेश तथा बंगाल में भयानक विनाश लीला करते हैं। समुद्र तल में वायु, समुद्र और जमीन की अंत: क्रिया से ये उत्पन्न होते हैं। तूफान में अत्यधिक वायुदाब प्रवणता और अत्यधिक तेज सतही पवनें उफान को उठाने वाले बल हैं। इससे समुद्री जल तटीय क्षेत्रों में प्रविष्ट हो जाता है, वायु की गति तेज होती है और भारी वर्षा होती है।

## क्षति का प्रभाव कम करने के उपाय

अधिकतर चक्रवातीय क्षति, तेज पवनों, मूसलाधार वर्षा और समुद्र में उठने वाली ऊँची तूफानी, ज्वारीय लहरों के द्वारा होती है। पवनों की तुलना में चक्रवातीय वर्षा के कारण आयी बाढ़ अधिक विनाशकारी होती है।

- चक्रवात के संबंध में आगामी सूचना का प्रबंध होना चाहिए जिससे सामयिक कार्यवाही की जा सके और लोग सुरक्षित स्थानों पर पहुँच जाएँ। इससे मृतकों की संख्या कम हो सकती है। उपग्रह से प्राप्त चित्रों तथा कम्प्यूटर द्वारा बनाए गए मॉडलों की सहायता से चक्रवातों की तीव्रता, दिशा तथा उनके पथ के संबंध में काफी हद तक आगामी सूचना प्राप्त की जा सकती है।
- सुरक्षा के आश्रय स्थलों के तटबंधों, जलाशयों आदि के निर्माण से चक्रवातों के प्रभाव से काफी हद तक बचा जा सकता है।
- तटीय क्षेत्रों में वृक्षारोपण से चक्रवातों के प्रभाव को कम करने में सहायता मिलती है।
- फसलों तथा पशुओं के बीमें से भी लोगों को क्षतिपूर्ति में सहायता मिलती है।

## पश्चिमी विक्षोभ

ये शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का एक वर्ग है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में कई सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं परंतु जे. बर्कनीज द्वारा प्रस्तुत किया गया ध्रुवीय वाताग्र सिद्धांत सर्वमान्य है। इस सिद्धांत के अनुसार शीतोष्ण कटिबंधीय इलाकों में दो विभिन्न प्रकार के तापमान तथा आर्द्रता वाली वायु राशियों के आपस में मिलने के कारण शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति होती है। कम तापमान तथा आर्द्रता वाली वायु राशियाँ ध्रुवीय प्रदेशों से तथा अधिक तापमान तथा आर्द्रता वाली वायु राशियाँ उपोष्ण कटिबंध से आती हैं और लगभग 6º अक्षांशों पर एक-दूसरे से मिलती है। ये वायु राशियाँ एक-दूसरे में विलीन नहीं होती बल्कि उनके बीच एक सुनिश्चित सीमा बनी रहती है जिसे ध्रुवीय वाताग्र कहते हैं। अधिक तापमान तथा आर्द्रता वाली वायु राशि हल्की होती है और कम तापमान एवं आर्द्रता वाली भारी वायु राशि के ऊपर चढ़ जाती है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात की उत्पत्ति होती है।

- भारत में आने वाले शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात भूमध्य सागर के ऊपर पैदा होते हैं और पश्चिम से पूर्व दिशा में आगे बढ़ते हुए इराक, ईरान, अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान को पार करने के बाद भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में प्रवेश करते हैं। क्योंकि ये पश्चिमी दिशा से आते हैं इसलिए इन्हें पश्चिमी विक्षोभ कहते हैं। ये शीतऋतु में अधिक सक्रिय होते हैं और समस्त उत्तरी भारत के मौसम को प्रभावित करते हैं। जब ये भारत में प्रवेश करते हैं तो अधिविष्ट वाताग्र के रूप में होते हैं। यद्यपि इन का मुख्य प्रभाव क्षेत्र जम्मू-कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश ही हैं तथापि ये कभी-कभी बिहार, बंगाल, असम तथा अरूणाचल प्रदेश तक मौसम को प्रभावित करते हैं। इनके आगमन से शीतकाल में पर्वतीय प्रदेश में हिमपात होता है और मैदानी भागों में हल्की वर्षा होती है। दिसंबर से फरवरी तक के तीन महीनों में हिमालय क्षेत्र में लगभग 60 सेमी., पंजाब में 12 सेमी., दिल्ली में 5.3 सेमी. तथा उत्तर प्रदेश एवं बिहार में 2.5 से 1.8 सेमी. वर्षा हो जाती है। यह वर्षा कम मात्रा में होने के बावजूद भी उत्तरी भारत में रबी की फसलों, विशेषतया गेहूँ की फसल के लिए बहुत लाभदायक होती है।
- पश्चिमी विक्षोभ का जीवन काल 3-4 दिन का होता है। इस अवधि में शीत लहर चलती है और तापमान सामान्य से 5-10º से. कम हो जाता है। प्रात: व सायं के समय धुंध एवं कुहरा सामान्य सी बात होती है। कई बार 2-3 पश्चिमी विक्षोभ एक-दूसरे के पीछे आते हैं और 8-10 दिन तक मौसम को प्रभावित करते रहते हैं।

# भारत की मृदा
# (Soils of India)

## परिचय (Introduction)

भू-पृष्ठ की ऊपरी सतह जिसका विकास यांत्रिक एवं रासायनिक अपक्षय, अपरदन एवं जलवायु के तत्वों (तापमान एवं जल) के द्वारा होता है मृदा कहलाती है। वस्तुत: प्राकृतिक वातावरण का प्रत्येक तत्व मृदा के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अपक्षय की प्रक्रिया द्वारा चट्टानों के टूट-फूट हो जाने से मिट्टी का निर्माण आरंभ होता है। इसके अतिरिक्त मिट्टी के निर्माण में प्राकृतिक धरातल की प्रकृति, जीव-जंतु एवं वनस्पतियाँ, समय, चट्टानों की स्थिति तथा जलवायु के तत्वों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ये सभी तत्व स्वतंत्र रूप से मृदा निर्माण में अपनी भूमिका निभाते हैं। भारत में अनेक प्रकार की चट्टानें तथा जलवायु, वनस्पतियाँ, जीव-जंतु आदि की भिन्नताओं के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियों का निर्माण हुआ है।

- भारत एक कृषि प्रधान देश है और एक कृषि प्रधान देश के लिए उर्वर मिट्टी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि किसी देश की मिट्टी उर्वर होती है तो वहाँ की कृषि अर्थव्यवस्था समृद्ध होती है। एक ओर भारत के विशाल मैदान और तटीय मैदान दोनों की मिट्टी जो उन्नतिशील कृषि को प्रोत्साहित करती है, तो दूसरी तरफ आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र की कम गहरी एवं मोटे कणों वाली मिट्टी तथा राजस्थान के शुष्क प्रदेश की मिट्टी है, जो समृद्ध कृषि को आधार प्रदान करने में अक्षम है। यही कारण है कि यह प्रदेश कम घने बसे हुए हैं। मिट्टी संबंधी विशिष्टताओं में पाई जाने वाली भिन्नता के कारण दोनों क्षेत्रों के विकास के स्तर में अंतर पाया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि किसी भी प्रदेश के विकास स्तर में मिट्टी की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

### मृदा के निर्माण की प्रक्रिया (Process of Soil Formation)

मृदा निर्माण में पाँच प्रमुख कारकों का योगदान होता है। ये कारक हैं- चट्टानें, स्थानीय जलवायु, प्राकृतिक वनस्पति, धरातलीय स्थिति तथा समय। इनमें से चट्टानें व जलवायु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक हैं।

### चट्टानें (Rocks)

- धरातल पर फैली चट्टानों के अपक्षरण से मिट्टी के निर्माण में सहायक मूल पदार्थों की प्राप्ति होती है। यदि चट्टानों से निर्मित मिट्टी स्थानीय रूप से मिलती है तो इसका रंग गहरा होता है। इस प्रकार की मिट्टी मुख्य रूप से अपनी मूल चट्टान की विशेषता रखती है। लाल लैटेराइट मिट्टी, काली मिट्टी और वनों की भूरी मिट्टियाँ इस प्रकार की मिट्टियों में प्रमुख हैं। दूसरी ओर यदि मिट्टियों का निर्माण, नदियों के निक्षेपण से होता है तो उस स्थिति में मूल चट्टान से मिट्टी का संबंध काफी कम रह जाता है। विशाल मैदानों में जो मिट्टियाँ पाई जाती हैं, वह हिमालय की चट्टानों के नदियों द्वारा अपक्षरण से प्राप्त पदार्थों द्वारा निर्मित हुई हैं। इसलिए ये मिट्टियाँ महीन कण वाली, गहरी और उपजाऊ होती हैं।

### धरातलीय स्थिति (Circumstance of Surface)

- मिट्टी के निर्माण में धरातलीय स्थिति का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। धरातल के ढाल की भिन्नता उस क्षेत्र के जल प्रवाह की दशा और दिशा को तय करती है। किसी भी क्षेत्र में होने वाले अपरदन की मात्रा मुख्य रूप से उच्चावच एवं ढाल की प्रकृति पर निर्भर करती है। इन विशेषताओं में भिन्नताओं के कारण भारतीय मिट्टियों के कई रूप प्राप्त होते हैं। सम-धरातल वाले क्षेत्रों में मिट्टी की परत गहरी, विशाल मैदान तथा तटीय भागों की मिट्टियों की परत मोटी होती है तथा पठारीय व पर्वतीय स्थानों में धरातल पर निक्षेपण कम होने से मिट्टी की पतली परत पायी जाती है।

### जलवायु (Climate)

- जलवायु के तत्व मिट्टियों के निर्माण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जलवायु के तत्वों के अंतर्गत वर्षा और तापमान, मिट्टियों के प्रकार निर्धारित करने में अति महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। मिट्टी के निर्माण की स्थितियों को वर्षा की मात्रा एवं ऋतुवत् वितरण बड़ी सीमा तक प्रभावित करते हैं। यदि किसी स्थान की जलवायु ठण्डी या नम होती है तो वहाँ की मिट्टी में अधिक गहराई तक खनिज एवं रासायनिक पदार्थ प्रवेश कर जाते हैं, जबकि अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में मिट्टियों में घुले हुए पदार्थ बहकर बाहर निकल जाते हैं। यही कारण है कि उनमें खनिज एवं रासायनिक पदार्थों की कमी हो जाती है। जलवायु विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों और सूक्ष्म जीवों के प्रकार को भी निर्धारित करती है, जिसका प्रभाव मिट्टी की विशेषता पर भी पड़ता है।

### प्राकृतिक वनस्पति (Natural Vegetable)

- मिट्टियों के विभिन्न प्रकार के लिए प्राकृतिक वनस्पति भी अत्यधिक उत्तरदायी होती है। मृदा निर्माण की वास्तविक प्रक्रिया और इसका विकास वनस्पति की वृद्धि के साथ ही प्रारंभ होता है। वृक्षों के सड़े हुए पत्ते मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होते हैं और साथ ही अत्यंत आवश्यक जीवांश तत्व प्रदान कर मिट्टी को समृद्ध भी करते हैं। इसलिए सघन वन वाले क्षेत्रों में मिट्टी की उर्वरता काफी अधिक होती है।

### समय (Time)

- मिट्टी का विकास चरणबद्ध क्रम में होता है। मिट्टी शैशवावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती है। इस तरह मिट्टी के विकास में समय अति महत्त्वपूर्ण कारक है। प्राय: समय के साथ मृदा का उपजाऊपन बढ़ता रहता है।

| भारतीय मिट्टियों की विशेषताएँ | |
|---|---|
| भारतीय मिट्टियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं- | |
| 1. | अपनी रचना में भारतीय मिट्टियाँ अनेक देशों की मिट्टियों से भिन्न हैं क्योंकि ये बहुत पुरानी और पूर्णत: परिपक्व हैं। |
| | भारत की अधिकांश मिट्टियाँ प्राचीन जलोढ़ हैं जो न केवल पैतृक चट्टानों के विखंडन से बनी हैं वरन् उनके निर्माण में जलवायु संबंधी कारणों एवं जल परिवहन का भी हाथ रहा है। |
| 2. | पठारी एवं पहाड़ी भाग में मिट्टी का आवरण हल्का और फैला होता है जबकि मैदानी क्षेत्रों और डेल्टाई प्रदेशों में यह गहरा और असंगठित होता है। |
| 3. | प्राय: सभी मिट्टियों में नत्रजन (Nitrogen), जीवांश, वनस्पति अंश और खनिज लवणों की कमी पायी जाती है। हालाँकि फॉस्फैट तथा पोटाश की कमी सामान्यत: नहीं होती। |

| | |
|---|---|
| 4. | मिट्टियों के तापमान ऊँचे पाए जाते हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय मिट्टियों की तुलना में यह 10ºC से 15ºC अधिक होते हैं। इससे चट्टानों के टूटते ही रासायनिक विघटन शीघ्र ही आरंभ हो जाता है। |

## *भारतीय मृदा का वर्गीकरण (Classification of Indian Soil)*

विशाल भू-क्षेत्र होने के कारण भारत में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पाई जाती हैं। भारतीय मिट्टियों का उचित वर्गीकरण करने के कई आधार हो सकते हैं। हालाँकि किसी भी एक आधार पर किया गया वर्गीकरण पूर्णत: उपयुक्त नहीं है। उदाहरणत: रसायनशास्त्री मिट्टियों का वर्गीकरण उनके रासायनिक तत्वों अथवा रासायनिक आवश्यकताओं के आधार पर करते हैं। व्यवहारिक रूप से इसमें मिट्टियों की संरचना पर ध्यान नहीं दिया जाता। वस्तुत: मिट्टी के वर्गीकरण का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार उसकी उपजाऊ शक्ति है। इस आधार पर मिट्टियों को चार वर्गों में रखा गया है- (i) अधिक उपजाऊ, (ii) उपजाऊ, (iii) कम उपजाऊ तथा (iv) अनुपजाऊ मिट्टी। इसी प्रकार कणों के आकार के आधार पर भी मिट्टियाँ का वर्गीकरण किया गया है। इनके नाम हैं- (i) चिकनी मिट्टी, (ii) दोमट मिट्टी, (iii) बलुई मिट्टी तथा (iv) रेतीली मिट्टी। रंग के आधार पर काली, पीली, लाल तथा भूरी मिट्टियाँ को मान्यता प्राप्त है। कुछ मिट्टियाँ किसी विशेष फसल के लिए विख्यात होती हैं। अत: उन्हें उन फसलों के साथ जोड़ा जाता है, जैसे- दक्षिणी पठार की काली मिट्टी को कपास की मिट्टी तथा असम की पहाड़ियों की मिट्टी को चाय की मिट्टी के नाम से भी जाना जाता है।

- भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने 1953 में अखिल भारतीय भूमि उपयोग तथा मृदा सर्वेक्षण संगठन की स्थापना की, जिसने भारतीय मिट्टियों का निम्नलिखित वर्गीकरण प्रस्तुत किया-
  - जलोढ़ मिट्टी
  - वन तथा पर्वतीय मिट्टी
  - काली मिट्टी
  - शुष्क एवं मरुस्थलीय मिट्टी
  - लाल मिट्टी
  - लवण तथा क्षारीय मिट्टी
  - लैटेराइट मिट्टी
  - पीट तथा दलदल युक्त मिट्टी

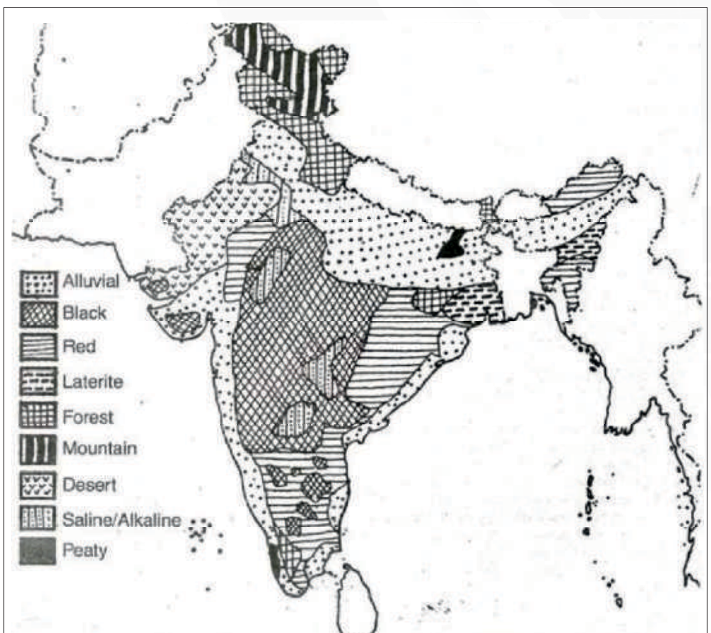


**भारतीय मृदा का वर्गीकरण**

## भारतीय मृदा का वर्गीकरण

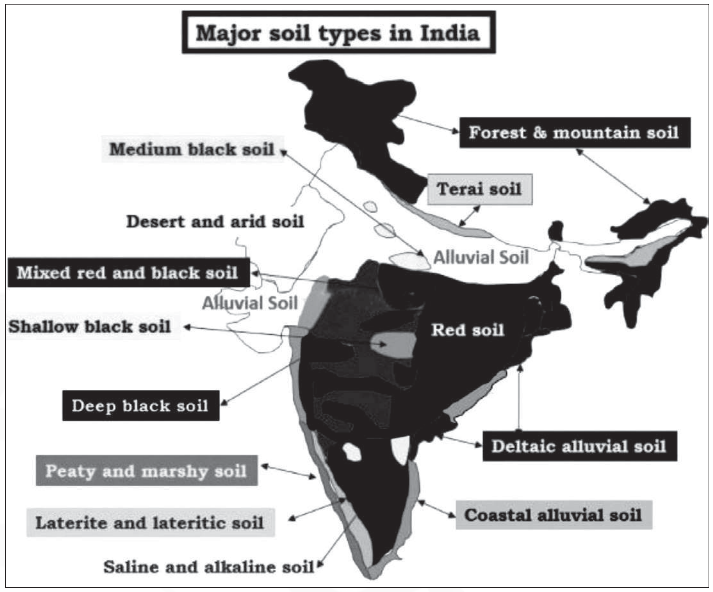


## *जलोढ़ मिट्टी*

इसे **कांप मिट्टी** भी कहते हैं। यह मिट्टी नदियों द्वारा लाकर नदी घाटियों, बाढ़ के मैदानों तथा डेल्टाई प्रदेशों में बिछाई जाती है। यद्यपि इन मिट्टियों में **नाइट्रोजन, फास्फोरस** तथा **वनस्पति के अंश** की कमी होती है फिर भी यह बड़ी उपजाऊ होती है क्योंकि नदियाँ कई प्रकार के शैल चूर्ण बहा कर ले आती हैं, जिनमें बहुत से रासायनिक तत्व मिले हुए होते हैं। गंगा-सतलुज का मैदान इसी मिट्टी का बना हुआ है जिसकी गणना विश्व के सबसे अधिक उपजाऊ मैदानों में की जाती है। महानदी, गोदावरी, कृष्णा एवं कावेरी के डेल्टाई भागों में भी यही मिट्टी पाई जाती है। यहाँ इसे डेल्टाई मिट्टी के नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त यह मिट्टी असम घाटी, गुजरात तथा पश्चिमी तटीय मैदान में भी पाई जाती है। जलोढ़ मिट्टियाँ भारत का सबसे बड़ा मृदा समूह है जो भारत के क्षेत्रफल के लगभग **45.6 प्रतिशत** भाग पर वितरित है।

### *इन मृदाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-*

1. ***खादर मृदा***- यह मृदा वर्षाकाल में बार-बार बाढ़ की चपेट में आती है जिसके कारण नये जमाव होते रहते हैं, इसके कारण इस मृदा की उर्वरता बनी रहती है। इसमें चूनेदार पदार्थों की कमी तथा अशुद्ध केल्शियम कार्बोनेट की मात्रा विद्यमान रहती है। इस मृदा में लवणीय व क्षारीय गुण भी पाये जाते हैं जिन्हें स्थानीय भाषाओं में **रेह, कल्लर** नामों से जाना जाता है।
2. ***भांगर मृदा***- यह बाढ़ के स्तर के ऊपर की मृदा है। इसमें अशुद्ध केल्शियम कार्बोनेट के कंकड़ पाये जाते हैं। यह गेहूँ, चावल, मक्का, गन्ना, दलहन, तिलहन, चारा फसलों, फलों व सब्जियों की उपज हेतु उपयुक्त है। इसमें **ह्यूमस, चूना, फॉस्फोरिक अम्ल व जैविक पदार्थों** की प्रचुरता तथा **पोटाश की कमी** होती है।

**जलोढ़ मिट्टी के प्रकार**

स्थिति, संरचना तथा उपजाऊपन के आधार पर जलोढ़ मिट्टियों को निम्नलिखित उप-विभागों में बाँटा गया है-

1. ***नदीय जलोढ़ मिट्टी***– ये मिट्टियाँ नदी घाटियों में मिलती हैं। इनका अधिकतम विस्तार भारत के उत्तरी मैदानों में पाया जाता है। यहाँ पर सिंधु, गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा उनकी सहायक नदियों ने विस्तृत क्षेत्र में तलछट का निक्षेप किया है जिसके कारण इन मिट्टियों का निर्माण हुआ है। ये उपजाऊ मिट्टियाँ हैं और भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था का आधार हैं।
2. ***तटीय जलोढ़ मिट्टी***– ये भारत के समुद्र तटीय भागों में पाई जाती है। इनका निर्माण मुख्यतया समुद्री लहरों की निक्षेप क्रिया द्वारा किया जाता है। तटीय जलोढ़ मिट्टियाँ चावल तथा नारियल के लिए बहुत उपयुक्त होती हैं। पूर्वी तट का अधिकांश भाग तथा पश्चिमी तट का उत्तरी भाग (खम्भात की खाड़ी से मुम्बई तक) तटीय जलोढ़ मिट्टियों का ही बना हुआ है।
3. ***डेल्टाई जलोढ़ मिट्टी***– भारत की लगभग सभी नदियाँ (नर्मदा तथा ताप्ती को छोड़कर) समुद्र में गिरने से पहले डेल्टा बनाती है। गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा विश्व में सबसे बड़ा डेल्टा है। यह पश्चिम बंगाल तथा बांग्लादेश में विस्तृत है। दक्षिणी भारत में महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी नदियाँ भी डेल्टा बनाती हैं। अत: इन भागों में डेल्टाई मिट्टी प्रचुर मात्रा में मिलती है। डेल्टाई मिट्टियों में चीका की प्रधानता होती है जिससे यह जल को काफी देर तक अपने अंदर संजोये रखने में सक्षम होती है। अत: इन मिट्टियों की गणना विश्व की सबसे उपजाऊ मिट्टियों में की जाती है। गंगा-ब्रह्मपुत्र डेल्टा चावल तथा पटसन की कृषि के लिए विश्व विख्यात है। अन्य डेल्टा क्षेत्रों में चावल की कृषि प्रचुर मात्रा में होती है।
4. ***तराई मिट्टी***– यह उत्तर प्रदेश में भाबर के दक्षिण में तराई प्रदेश के लगभग 56,600 वर्ग किमी. क्षेत्र में पाई जाती है। इन मिट्टियों में **नाइट्रोजन** तथा **जैव पदार्थ** की प्रचुरता होती है परंतु इनमें फॉस्फैट की कमी होती है।

- इन पर ऊँची-ऊँची घास तथा घने वन उगते हैं। यहाँ के अधिकांश वनों को साफ करके, भूमि को कृषि योग्य बनाया गया है। ये मिट्टियाँ गेहूँ, चावल, गन्ना, पटसन तथा सोयाबीन की कृषि के लिए उपयुक्त हैं।

***[ नोट–*** जम्मू-कश्मीर की भू-सीमा में पुरानी दोमट मिट्टी पाई जाती है जिसे कई नदियों द्वारा अलग खंडों में विभाजित किया गया है। इसे करेवा कहते हैं।]

## *काली मिट्टी*

इसे **रेगुर मिट्टी** भी कहते हैं। यह भारत की तीसरी महत्त्वपूर्ण मृदा है। इस मिट्टी का निर्माण ज्वालामुखी विस्फोट से हुआ है जिससे इसमें कई प्रकार के खनिज विद्यमान हैं। इनमें **लोहा, मैग्नीशियम, चूना** एवं **एल्यूमिनियम** प्रमुख हैं। इस प्रकार यह बहुत ही उपजाऊ मिट्टी है तथा कपास की कृषि के लिए बहुत ही उपयोगी है इसलिए इसे काली कपास मिट्टी भी कहते हैं। इसका विस्तार पश्चिमी एवं मध्यवर्ती मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र तथा गुजरात के अधिकांश भाग, कर्नाटक के उत्तरी भाग तथा आंध्रप्रदेश के पश्चिमी भाग में है।

- नमी धारण करने की पर्याप्त क्षमता के लिए सिंचाई की अधिक आवश्यकता नहीं होती। ग्रीष्म ऋतु में यह मिट्टी सूख जाती है और इसमें दरारें पड़ जाती हैं। मिट्टी के कण टूट-टूट कर दरारों में भरने लगते हैं और मिट्टी बारीक हो जाती है। इसमें लोहा, चूना, केल्शियम, पोटाश, एल्यूमीनियम, मैग्नीशियम की प्रचुरता तथा नाइट्रोजन, फास्फोरस व जैविक पदार्थों की निम्नता पाई जाती है।

## *लाल मिट्टी*

ये मिट्टियाँ मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में दक्षिण तक पायी जाती हैं। यह भारत की दूसरी प्रमुख मृदा है जो कुल मृदाओं के 18.6% भाग में फैली है। ये मिट्टियाँ आंध्र प्रदेश और मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग, बिहार, झारखंड के छोटा नागपुर का पठार, पश्चिम बंगाल के दक्षिण पश्चिम भाग के वीरभूमि, बांकुड़ा और मिदनापुर जिलों में, मेघालय की खासी, जयंतिया और गारो पहाड़ियों में, दक्षिण पूर्वी नागालैण्ड में, उत्तर प्रदेश के हमीरपुर, मिर्जापुर, बांदा और झाँसी जिलों में, राजस्थान के अरावली पर्वत के पूर्वी क्षेत्रों तथा दक्षिण-पूर्वी महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु के कुछ भागों में मिलती है।

- लाल मिट्टियों का निर्माण प्राचीन रवेदार तथा रूपांतरित चट्टानों के अपक्षय एवं अपरदन से प्राप्त हुई सामग्री द्वारा हुआ है। इसके लाल रंग का कारण **फैरिक ऑक्साइड** है। इन मिट्टियों में लोहा, एल्युमिनियम तथा चूने की प्रधानता होती है परंतु जीव एवं वनस्पति के अंश तथा फॉस्फोरस की कमी होती है। जहाँ कहीं यह मिट्टी बहुत ही छोटे-छोटे टुकड़ों की बनी है वहाँ यह काफी उपजाऊ है। लेकिन अन्य जगहों में मिट्टी की तहों में पानी न रूकने के कारण यह प्राय: बंजर रह गयी है। इस मिट्टी में अधिकतर बाजरा ही पैदा होता है। किंतु निचले भागों में लाल मिट्टी अधिक गहरी और उपजाऊ होने के कारण कपास, गेहूँ, दालें, मोटे अनाज आदि के लिए उपयुक्त बन जाती है। इस मृदा में चूने, फॉस्फैट, मैग्नीशियम, नाइट्रोजन, ह्यूमस व पोटाश की कमी होती है।

## *लैटेराइट तथा लैटेराइटिक मिट्टी*

- Laterite शब्द लैटिन भाषा के Later शब्द से लिया गया है, जिसका अर्थ ईंट होता है। यह मिट्टियाँ ईंट जैसी लाल रंग की होती हैं। इनका निर्माण मानसून जलवायु की विशिष्ट परिस्थितियों में होता है। मानसून जलवायु के आर्द्र एवं शुष्क ऋतु के क्रमिक परिवर्तन के कारण चट्टानों में सिलिका की कमी आ जाती है। अत: इस मिट्टी में नाइट्रोजन, चूना, फॉस्फोरस तथा मैग्नीशियम की मात्रा कम होती है, जिससे इसकी उपजाऊ शक्ति कम रह जाती है। लोहा के ऑक्साइड की उपस्थिति के कारण इसका रंग लाल होता है। कुछ भागों में यह मिट्टी कंकरीली एवं छिद्र युक्त होती है। यह कृषि के लिए अधिक उपयोगी नहीं है परंतु इसमें घास एवं झाड़ियाँ खूब उगती हैं। यह मिट्टी पश्चिमी घाट, छोटा नागपुर पठार, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, ओडिशा, असम के पर्वतीय क्षेत्रों तथा राजमहल की पहाड़ियों में मिलती हैं। यह मिट्टी कृषि के अधिक योग्य तो नहीं रहती परंतु भवन-निर्माण के लिए बहुत ही उपयोगी होती है। निम्न भागों के बजाय उच्च भागों में ये मृदाऐं अधिक अम्लीय होती है। काजू की खेती हेतु ये मृदाएँ उचित मानी जाती है।

## *वन तथा पर्वतीय मिट्टी*

- ये मिट्टियाँ पर्वतीय भागों के वनाच्छादित क्षेत्रों में पाई जाती हैं। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, सिक्किम तथा अरूणाचल प्रदेश में इन मिट्टियों का विस्तार मिलता है। नागालैण्ड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा तथा मेघालय में भी ये मिट्टियाँ कुछ मात्रा में पायी जाती हैं। अधिकांश पर्वतीय मिट्टियाँ टर्शियरी युग की चट्टानों का अपक्षय होने से बनी हैं। इन मिट्टियों में पत्थर, कंकड़ आदि की प्रचुरता होती है। ये मृदाएँ अम्लीय होती हैं तथा इसमें ह्यूमस की निम्नता होती है।

## *शुष्क एवं मरुस्थलीय मिट्टियाँ*

- ये मिट्टियाँ 50 सेमी. से कम वार्षिक वर्षा वाले इलाकों में मिलती हैं। इस प्रकार की मिट्टियों में रेत की मात्रा अधिक तथा ह्यूमस की मात्रा कम होती है। इसलिए यह अधिक उपजाऊ नहीं होती। ये मिट्टियाँ राजस्थान, दक्षिण-पश्चिमी पंजाब तथा दक्षिण-पश्चिमी हरियाणा में पाई जाती हैं। इनमें नमक अधिक मात्रा में पाए जाते हैं, परंतु शीघ्र ही घुल जाते हैं। जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है वहाँ पर गन्ना, कपास, ज्वार, बाजरा तथा सब्जियाँ आदि पैदा की जाती हैं। इंदिरा गाँधी नहर परियोजना ने यह सिद्ध कर दिया कि जल की उचित व्यवस्था होने पर ये मिट्टियाँ अच्छी फसल दे सकती हैं। इस नहर के कमान क्षेत्र में फसल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि देखी गयी है।

## लवण तथा क्षारीय मिट्टियाँ

- बिहार, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, राजस्थान तथा महाराष्ट्र के अपेक्षाकृत शुष्क भागों में लवण तथा क्षारीय मिट्टियाँ पाई जाती हैं। इन्हें बाद में रेह, कल्लर, ऊसर, थूर, कार्ल तथा चोपन आदि कई नामों से पुकारा जाता है। नहरों द्वारा सिंचित तथा उच्च भूमिगत जल स्तर वाले इलाकों में केशिकत्व क्रिया द्वारा भूमिगत लवण धरातल पर आ जाते हैं और मिट्टी को अनुपजाऊ बना देते हैं। उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में भूमि का एक बड़ा भाग ऊसर से प्रभावित है। गुजरात में खम्भात की खाड़ी के इर्द-गिर्द ज्वार-भाटा द्वारा निम्न क्षेत्र पर नमक का जमाव होता है जिससे यह भूमि बंजर हो गई है।

## पीट तथा दलदल युक्त मिट्टियाँ

- पीट मिट्टियाँ अधिक आर्द्रता वाले क्षेत्रों में अधिक जैव पदार्थ के जमा होने पर बनती हैं। इनमें घुलनशील तत्व अधिक होते हैं और जैव पदार्थ भी 10 से 40 प्रतिशत तक होते हैं। दलदली मिट्टियों में वनस्पति तत्व अधिक होते हैं। ये मिट्टियाँ मुख्य रूप से पश्चिमी तटीय मैदान में पाई जाती है। ओडिशा, तमिलनाडु के तट तथा पश्चिम बंगाल के सुंदर वन क्षेत्र में भी ये मिट्टियाँ पाई जाती हैं। वर्षा ऋतु में अधिकांश पीट मिट्टियाँ जल में डूबी रहती हैं। परंतु वर्षा ऋतु समाप्त होते ही इन पर चावल की फसल बोई जाती है।

## मृदा अपरदन

भारतीय मिट्टियों की उर्वराशक्ति प्रति वर्ष गिरती जा रही है। इसके अतिरिक्त कई भागों में मिट्टियाँ कटकर समुद्र में बह जाती हैं। भारत में भूमि अपरदन की गंभीर समस्या है। भूमि की सतह पर ही वनस्पतिजन्य रासायनिक तत्व एकत्रित रहते हैं जिनसे पौधों को पोषण मिलता रहता है। एक बार यह ऊपरी सतह नष्ट हो जाने पर भूमि की उर्वरा शक्ति भी क्षीण हो जाती है जिसके फलस्वरूप वहाँ किसी प्रकार की वनस्पति पैदा होना कठिन हो जाता है। पिछले साठ वर्षों में देश के उपपर्वतीय, अरावली प्रदेश, दक्षिणी पठारी भाग एवं अधिकांश मैदानी भागों में वनों की अत्यधिक कटाई की जाती रही है। इससे पानी एवं पवन द्वारा मिट्टी के अपरदन की गति निरंतर बढ़ती रही है। वर्तमान समय में भारत में मृदा अपरदन की समस्या काफी गंभीर है। **भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अनुसार भारत की 60 प्रतिशत भूमि मृदा अपरदन की समस्या से ग्रसित है।** इस मृदा परत के क्षरण के लिए प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों ही कारण उत्तरदायी हैं।

| मृदा अपरदन की समस्या से प्रभावित प्रमुख क्षेत्र | |
|---|---|
| *1.* | ***मध्य भारत में चंबल, यमुना एवं उसकी सहायक नदियों की घाटी***- इस क्षेत्र में भूमि का बड़ा भाग मृदा अपरदन की समस्या से ग्रसित है जिसमें से अधिकतर क्षेत्र मध्यप्रदेश में है। यह भाग अवनालिका अपरदन से बुरी तरह प्रभावित है। इस श्रेणी की मिट्टी काफी हल्की है एवं वनस्पति के आवरण के अभाव में मृदा का अपरदन काफी तीव्र गति से होता है। यहाँ 15 से 20 फीट तक की गहराई के खण्ड व बीहड़ बन गए हैं। चंबल के खण्ड (रेविन) इनका प्रमुख उदाहरण है। |
| *2.* | ***उत्तर-पूर्वी भारत***- इसे रेंगती मिट्टी का क्षेत्र कहा जाता है। इस भाग की 60 प्रतिशत भूमि गंभीर रूप से मृदा अपरदन की समस्या से ग्रसित है। इसका कारण वनों की कटाई, झूम एवं सीढ़ीनुमा कृषि तथा भारी वर्षा है। |
| *3.* | ***हिमालय एवं शिवालिक क्षेत्र***- वनों की कटाई एवं कृषि कार्य के विस्तार के कारण असम एवं कुमायूँ हिमालय में अपरदन की समस्या बढ़ गई है। हिमाचल प्रदेश एवं जम्मू-कश्मीर में इस समस्या का कारण अतिचारण है। |
| *4.* | ***छोटा नागपुर प्रदेश***- इस क्षेत्र में मृदा अपरदन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण वनों की कटाई है। |
| *5.* | ***मरुस्थलीय क्षेत्र***- इसके अंतर्गत पश्चिमी राजस्थान के जिले आते हैं, जहाँ वायु द्वारा अपरदन की क्रिया अधिक प्रभावी है। |

| मिट्टी की उर्वरता में कमी का कारण | |
|---|---|
| • पोषक तत्वों का ह्रास (फसल हटाने के क्रम में) | • निक्षालन- भारी वर्षा के कारण |
| • अपरदन- उर्वरतायुक्त मिट्टी की सतह का ह्रास | • कृषि भूमि का अति- उपयोग |
| • दोषपूर्ण कृषि प्रबंधन | |
| • उर्वरता में वृद्धि के लिए इन कारणों पर नियंत्रण के साथ-साथ सिंचाई व फसलों में आवश्यकतानुसार खाद डालना आवश्यक है। भारतीय मिट्टियों में सामान्यत: नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की कमी होती है। कार्बनिक खादों व उर्वरकों को डालकर इस कमी को पूरा किया जाता है। चक्रीय कृषि, मिश्रित कृषि आदि से मिट्टी की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। | |

## मृदा अपरदन के कारण

***मृदा अपरदन के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-***

- ***वर्षा की प्रकृति एवं वितरण***- मृदा अपरदन के लिए भारी मात्रा में होने वाली वर्षा उत्तरदायी होती है। मूसलाधार बारिश की स्थिति में जहाँ धरती को जल सोखने का अवसर नहीं मिलता है वहीं मृदा में व्यापक रूप से भारी अपरदन होता रहता है।
- ***उच्च वेग की हवाएँ***- मरुस्थलीय/अर्धमरुस्थलीय भागों में चलने वाली उच्च वेग की हवायें व आंधियां मृदा के अपरदन में एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं।

| मृदा अपरदन के कारण |
|---|
| 1. तेज मूसलाधार वर्षा, |
| 2. कृषि हेतु वनों की कटाई, |
| 3. झूमिंग कृषि |
| 4. प्रौद्योगिकी का अभाव, |
| 5. मरुस्थलीय क्षेत्रों में गरम आंधियाँ, |
| 6. समोच्च जुताई न करना। |

- ***भूमि की ढाल***- यदि भूमि की ढाल अधिक होती है तो यह अपरदन को और अधिक प्रोत्साहित करती है।
- ***मिट्टी के प्रकार***- मिट्टी के प्रकार पर भी मृदा अपरदन निर्भर करता है। यदि मिट्टी ढीली-ढाली और नम होती है तो उसका अपरदन बहुत आसानी और जल्दी से हो जाता है और यदि मिट्टी कठोर हो तो अपरदन मंद गति से होता है।
- ***भूमि का उपयोग***- खाली जमीन और चारागाह भूमि पर अपरदन अधिक और सरलता से होता है। कृषि में लगी भूमि इसकी अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहती है। ढलावदार भूमि पर सही जुताई न होने से अपरदन अधिक होता है। पेड़-पौधे से विहीन भूमि का अपरदन भी बहुत आसानी से होता है।
- ***वनों का कटाव***- वनस्पति रहित भूमि पर मिट्टी का अपरदन शीघ्रता और सरलता से होता है। वन बाढ़ों की तीव्रता को रोकते हैं, जिससे मृदा अपरदन नहीं हो पाता है, परंतु वनों के काटे जाने के बाद मूसलाधार वर्षा मिट्टी को तीव्रता से बहाकर ले जाती है। झूम कृषि व्यवस्था में वनों की सफाई की जाती है, जो मृदा अपरदन को बढ़ावा देती है।
- ***खनन***- आज खनन को अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार माना जाता है लेकिन अपने दूसरे स्वरूप में खनन प्रक्रिया मृदा को विनष्ट कर देने वाली प्रक्रिया है। भूमिगत खनन के लिए मृदा के ऊपरी संस्तर को पूरी तरह साफ कर दिया जाता है। जिससे मृदा का अपना स्वरूप नष्ट हो जाता है।

जहाँ अनियंत्रित रूप से खनन प्रक्रिया सक्रिय है वहाँ भूस्खलन की घटनाएँ बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार की सभी प्रक्रियाएँ मृदा को ढीला करके शीघ्रता से अपरदनकारी शक्तियों को सक्रिय बना देती हैं जिससे मृदा शीघ्र नष्ट हो जाती है।

- ***निर्माण कार्य***– सड़क, रेलमार्ग, बाँध, भवन इत्यादि निर्माण कार्य तथा तेल, गैस व जल पाइप लाइन बिछाने के लिए किये गये खुदाई के कार्य मृदा अपरदन की दर को बढ़ा देते हैं। इसका प्रमुख उदाहरण ईंट-भट्ठा उद्योग है क्योंकि इसके द्वारा बड़े पैमाने पर मिट्टी की खुदाई एवं विनाश जारी है।

## मृदा अपरदन के प्रकार

मृदा अपरदन प्रमुख रूप से जल व वायु द्वारा होता है। यदि जल व वायु का वेग तीव्र होगा तो अपरदन की प्रक्रिया तीव्र होती है। विभिन्न प्रकार के मृदा अपरदन का विवरण निम्नानुसार है–

- ***सामान्य अथवा भूगर्भिक अपरदन***– यह क्रमिक व दीर्घ प्रक्रिया है, इसमें जहाँ एक तरफ मृदा की ऊपरी परत अथवा आवरण का ह्रास होता है वहीं नवीन मृदा का भी निर्माण होता है। यह बिना किसी हानि के होने वाली प्राकृतिक प्रक्रिया है।
- ***तीव्र अपरदन***– इसमें मृदा का अपरदन निर्माण की तुलना में अत्यंत तीव्र गति से होता है। मरुस्थलीय, अर्द्ध मरुस्थलीय तथा तीव्र वर्षा वाले भागों में मृदा का तीव्र अपरदन होता है।
- ***अवनालिका अपरदन***– इस तरह का अपरदन प्रायः ढलावदार भूमि पर अधिक होता है। इस प्रकार के मृदा अपरदन में जल के वेग के कारण भूमि में गहरी नालियाँ अथवा गड्ढे बन जाते हैं तथा जगह-जगह पर मिट्टी के कट जाने से जमीन ऊबड़-खाबड़ हो जाती है। **अवनालिका अपरदन द्वारा चंबल क्षेत्र में खण्डों ( रेविनों ) का निर्माण हुआ है।**

### भूमि अपक्षरण के परिणाम

विभिन्न प्रकार से होने वाले भूमि अपक्षरण के संयुक्त प्रभावों का राष्ट्रीय योजना समिति (1948) ने निम्नलिखित संक्षिप्त विवरण दिया है–

- भीषण तथा आकस्मिक बाढ़ों का प्रकोप
- जल धाराओं में गाद जमा होना
- निर्मित बाँधों की घटती आयु
- सूखे की लम्बी अवधि जिसका प्रभाव नहरों पर पड़ता है।
- जल के अतिरिक्त स्रोतों पर प्रतिकूल प्रभाव जिससे कुओं तथा नालों की सतह नीची हो जाती है और सिंचाई में कठिनाई होती है।
- उर्वरता में कमी
- नदियों की तह में बालू का जम जाना जिससे नदी की धारा में परिवर्तन होता रहता है और नहरों तथा बन्दरगाहों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।
- उच्च कोटि की भूमि नष्ट हो जाने से कृषि का उत्पादन कम होता जाता है।
- गड्ढों से होने वाले भूमि क्षरण तथा नदियों के किनारे के भूमि क्षरण में खेती योग्य भूमि में कमी पड़ने लगती है।

## मृदा अपरदन रोकने हेतु भारत सरकार के प्रयास

भारत में मृदा संरक्षण के कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए सरकार सूखा ग्रस्त क्षेत्र तत्पर प्रयास नियोजन, मरुस्थलीय विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय जलग्रिड, शुष्क मेखला कृषि, सामाजिक वानिकी, जलक्षेत्र प्रबंधन जैसे कार्यक्रम संचालित कर रही है, जिससे लाखों हेक्टेयर भूमि को संरक्षित करने में सफलता मिली है, परंतु अभी भी इसमें सुधार की आवश्यकता शेष है।

### मृदा संरक्षण प्रशिक्षण केंद्र

दामोदर घाटी निगम, हजारीबाग (झारखंड) स्थित मृदा संरक्षण प्रशिक्षण केंद्र मृदा जल संरक्षण कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु प्रशिक्षण प्रदान करता है।

- ***नदी घाटी परियोजनाओं/बाढ़ प्रवण नदियों के स्रवण क्षेत्रों में अपरदित भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने हेतु मृदा संरक्षण ( मैक्रो मैनेजमेंट के अंतर्गत समाहित )***– नदी घाटी परियोजनाओं तथा बाढ़ प्रवण नदियों (आईवीपी और एफपीआर) के स्रवण क्षेत्रों में अपरदित भूमि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए मृदा संरक्षण केंद्रीय प्रायोजित कार्यक्रम को माइक्रो मैनेजमेंट मोड में मिला दिया गया है। इसका क्रियान्वयन 27 राज्यों में फैले हुए 53 स्रवण क्षेत्रों में किया जा रहा है। इस योजना के प्रमुख लक्ष्य हैं– स्रवण क्षेत्रों में मृदा संरक्षण तथा पनधारा प्रबंधन के बहुआयामी समेकित दृष्टिकोण को अपना कर भू-अपरदन को रोकना, पनधाराओं में भू-क्षमता तथा आर्द्रता की स्थिति में सुधार करना, भू-क्षमता के अनुरूप भूमि में उपयोग को प्रोत्साहन देना, बहुप्रयोजन जलाशयों में लवणता को कम करने के लिए स्रवण क्षेत्रों में मृदा हानि की रोकथाम करना तथा बाढ़ प्रबलता एवं अपवाह की मात्रा को कम करने के लिए स्रवण क्षेत्रों में आर्द्रता संरक्षण तथा सतही वर्षा जल भंडारण में वृद्धि करना।
- ***झूम खेती वाले क्षेत्रों में पनधारा विकास परियोजना का कार्यक्रम***– झूम खेती वाले क्षेत्रों में पनधारा विकास परियोजना को वर्ष 1994-95 से आठवीं योजना के दौरान सात पूर्वोत्तर राज्यों अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड तथा त्रिपुरा में शुरू किया गया था, जिसमें राज्य प्लान के लिए 100 प्रतिशत केंद्रीय सहायता दी जाती है। इस कार्यक्रम के लक्ष्य हैं– पनधारा आधार पर विभिन्न मृदा तथा जल संरक्षण उपायों के माध्यम से झूम क्षेत्रों की पहाड़ी ढलानों की रक्षा करना तथा अधिक भूमि अपरदन को कम करना, विकसित भूमि तथा उन्नत फसल पैकेज उपलब्ध करवा कर झूमिया परिवार के पुनर्स्थापन को प्रोत्साहित करना, घरेलू/भूमि आधारित गतिविधियों के जरिए झूमिया परिवारों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार करना, तथा क्षमता व उन्नयन प्रौद्योगिकी के अनुसार उपयुक्त भूमि प्रयोग की शुरूआत द्वारा झूम खेती के दुष्प्रभावों को कम करना।
- झूम खेती के क्षेत्रों में पनधारा विकास परियोजना के क्रियान्वयन के तहत मृदा एवं जल संरक्षण के साथ-साथ पशुधन विकास और घरेलू उत्पादन जैसे घटक शामिल हैं तथा महिलाओं और गैर सरकारी संगठनों की भागीदारी पर जोर दिया गया है।
- ***क्षारीय मृदा के सुधार संबंधी केंद्रीय प्रायोजित कार्यक्रम ( वृहत प्रबंधन के अंतर्गत समाहित )***– इस योजना को वर्ष 1985-86 में शुरू किया गया था। क्षारीय मृदा के सुधार संबंधी केंद्रीय प्रायोजित कार्यक्रम हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु राज्यों में कार्यान्वित किया गया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य क्षारीय मृदा की उत्पादकता स्तर में सुधार करना है ताकि उससे अनुकूलतम फसल उत्पादित हो सकें इस कार्यक्रम के प्रमुख घटक हैं– सुनिश्चित जल सिंचाई व्यवस्था, खेतों पर विकास कार्यक्रम जैसे कि उनको समतल बनाना, मेड़ लगाना, बाँध बनाना, सामुदायिक जल निकासी व्यवस्था, मृदा सुधारों का अनुप्रयोग, जैविक खाद आदि।

## मृदा संरक्षण के सामान्य उपाय

**मृदा अपरदन को रोकने के लिए कुछ सामान्य उपाय इस प्रकार हैं–**

- पहाड़ी ढालों पर बंजर भूमि में और नदियों के किनारे वृक्षारोपण किया जाए तथा पशुओं की चराई पर नियंत्रण रखा जाएँ कम पानी वाले क्षेत्रों में ढालू

भागों की ओर बक्सेनुमा गड्ढे बनाकर भी वृक्षारोपण किया जा सकता है।

- जोते हुए क्षेत्रों के रक्षात्मक आवरण बनाए रखने के लिए फसलों का हेर-फैर और भूमि कुछ समय के लिए परती तथा खुली रखना वांछनीय है। खेतों की मेड़ एवं ढालू भूमि की ओर समोच्च बंध बनाते समय उस ओर जल प्राप्ति के अनुसार वृक्ष या झाड़ियों की कतार लगाई जानी चाहिए।
- बहते हुए जल का वेग रोकने के लिए खेतों में मेड़बंदी करना, ऊँची भूमि पर सीढ़ीदार खेती और मैदानों में टेढ़ी-मेढ़ी खेती की पद्धति अपनाना आवश्यक है जिससे जल का बहना रूककर उपजाऊ मिट्टी वहीं पड़ी रहे।
- बहते हुए जल की मात्रा और भारीपन में कमी करना आवश्यक है। इसके लिए (i) पहाड़ियों के ढाल पर अथवा ऊँचे नीचे क्षेत्र में बहते हुए जल का संग्रह करने के लिए छोटे-छोटे तालाबों को बनवाना आवश्यक है। (ii) बाढ़ के समय नदियों का अतिरिक्त जल रोककर रखने के लिए विशाल जलाशय अर्थात जल संभरण तैयार कराए जाएँ एवं चेक-डैम्स बनाये जाएँ। (iii) खेतों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर ऐसे मेड़ बाँध बनवाये जाएँ जो एकत्रित जल को अनेक भागों में बांटकर जल का वेग कम कर दें। इससे उस भूमि की उपजाऊ मिट्टी बह जाने से रूक जाएगी। ऐसे सभी क्षेत्रों की सीमा पर उपलब्ध भूमि की नमीं से वहाँ वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
- जो मिट्टी जल द्वारा कट गयी है उसे रोकने के लिए ढाल की ओर आड़ी खाईयाँ बनायी जाएँ।
- देश के सभी भागों में गाँव, कस्बों, नहरों के बाहर पशुओं के चराने के लिए निश्चित भूमि में चारागाहों का विकास किया जाएँ उन्हें अन्य क्षेत्रों में भटकने से रोका जाय।
- कृषि भूमि को खाली एवं खुला हुआ कम से कम छोड़ना। भूमि को वनस्पतियों, पुआल आदि के आवरण से ढककर रखा जाए ताकि मृदा में नमीं की मात्रा बनी रहे।

***जल द्वारा होने वाले मिट्टी के क्षरण को रोकने हेतु निम्न उपाय अपनाए जा सकते हैं-***

- भूमि को जोतने के बाद उसे वनस्पति से ढककर तेज बूंदों के आघात से बचाया जा सकता है।
- भूमि पर ही पड़ी रहने वाली वनस्पति को स्वत: सड़ने दिया जाए जिससे भूमि की जल ग्रहण करने की क्षमता में वृद्धि होकर मिट्टी का कटाव रूक सकेगा।
- खेतों में लगातार पौधे या दालें बोने से भी मिट्टी का कटाव रूकेगा।

***वायु द्वारा किये जाने वाले क्षरण को रोकने के लिए निम्न सुझाव अपेक्षित हैं-***

- उन खादों अथवा रसायनों एवं मल का प्रयोग किया जाय जिनसे भूमि की जल-ग्रहण की शक्ति बढ़ती है और भूमि चिपचिपी हो जाती है।
- बोये और बिना बोये खेतों को बारी-बारी से काम में लाया जाए जिससे बोये हुए खेतों की ढ़ीली-भुरभुरी मिट्टी, जो वायु द्वारा उड़ायी जाय, दूसरे खेत में एकत्रित हो जाए और मिट्टी का नष्ट होना रूक जाएँ
- मरुस्थलीय क्षेत्र में मिट्टी को उड़ने से रोकने के लिए डेढ़ से दो मीटर ऊँची लोहे की चादरें अथवा कतार में पेड़ (वनस्पति) वायु चलने की दिशा के लम्बवत् लगाये जायें।

# प्राकृतिक वनस्पति एवं वन संसाधन
# (Natural Vegetation and Forest Resources)

## परिचय (Introduction)

प्राकृतिक वनस्पति से तात्पर्य उन पौधों से है जो मानव की सहायता के बिना अपने आप वन्य अथवा प्राकृतिक अवस्था में उगते हैं। अर्थात् विभिन्न पर्यावरणीय तथा पारितंत्रीय परिवेश में जो कुछ भी प्राकृतिक रूप से उगता है, उसे प्राकृतिक वनस्पति कहते हैं। यह वातावरण के नियामक होते हैं।

- भारत में जलवायु एवं मृदा अत्यंत विविधतापूर्ण होने के कारण उष्णकटिबंधीय वनों से लेकर टुंड्रा प्रदेश तक की वनस्पतियां पाई जाती हैं। भारत में न तो धरातलीय स्वरूप में समानता है और न ही जलवायविक दशाओं में, इसलिए यहां प्राकृतिक वनस्पति में भी पर्याप्त विविधता मिलती है। वानस्पतिक सम्पदा की उपलब्धता की दृष्टि से भारत अत्यंत समृद्ध देश है। यहां पेड़-पौधों की अनुमानतः 45000 प्रजातियां पाई जाती हैं। जिनमें से लगभग 35 प्रतिशत प्रजातियां देशी हैं और ये विश्व में अन्यत्र कहीं नहीं मिलतीं। देश की वनस्पति में न केवल फूलों, फलों वाले बड़े वृक्ष हैं, अपितु बिना फल-फूल वाले पेड़ पौधों की भी उपलब्धता है, जैसे- फर्न, लिवरवर्थ, शैवाल, फफूंदी आदि।

## प्राकृतिक वनस्पतियों को प्रभावित करने वाले कारक

प्राकृतिक वनस्पति के विकास में कई कारकों का योगदान होता है जो वनस्पति के स्वरूप एवं प्रवृति को निर्धारित करते हैं।

***इन कारकों का विवरण निम्नानुसार है-***

- ***तापमान***- एक पौधे को अपने विकास के लिए कम-से-कम 6 डिग्री सेल्सियस मासिक औसत तापमान की आवश्यकता होती है। इससे कम तापमान पर पौधे नहीं पनप सकते। इसी तरह उच्च तापमान से अधिक जल के ह्रास होने पर भी पौधे मुरझा सकते हैं। तापमान की भिन्नता वनस्पतियों के आकार-प्रकार में भी परिवर्तन का कारण बनती है। अरूणाचल प्रदेश व असम की वनस्पतियों में स्वरूपगत भिन्नता को तापमान के संदर्भ में देखा जा सकता है। दोनों राज्यों में वर्षा की मात्रा उच्च रहती है किंतु अरूणाचल प्रदेश में निम्न तापमान रहने के कारण वहां की वनस्पति का आकार-प्रकार असम की वनस्पतियों से अलग प्रकार का है।
- ***वर्षा***- यह वनस्पतियों के विकास में एक महत्वपूर्ण कारक है। विभिन्न पौधों हेतु वर्षा की भिन्न-भिन्न मात्रा की आवश्यकता होती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में कम वर्षा वाले क्षेत्रों से अलग प्रकार की वनस्पतियों का विकास होता है।
- ***मिट्टी***- मिट्टी के प्रकार व उसकी गुणवत्ता का भी वनस्पति पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। भारत में बांगर मिट्टी के क्षेत्रों की वनस्पति खादर मिट्टी के क्षेत्रों की वनस्पति से भिन्न होती है। इसी प्रकार रेतीली मिट्टी में अलग प्रकार की वनस्पति एवं पहाड़ी मिट्टी में अलग प्रकार की वनस्पति का विकास होता है।
- ***धरातलीय स्वरूप***- धरातलीय स्वरूप भी वनस्पतियों को प्रभावित करता है। ऊंचाई बढ़ने पर वनस्पतियों के प्रकार में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। हिमालय के पर्वतीय क्षेत्र में वर्षा की मात्रा का वनस्पति पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। यहां ऊंचाई तथा तापमान ने वनस्पति प्रदेश निर्धारित किए हैं। जलवायु और धरातलीय स्वरूप में अंतर होने के कारण ही भारत में उष्ण और शीतोष्ण कटिबंधीय दोनों ही प्रकार की वनस्पति मिलती है।
- ***सूर्य का प्रकाश***- सूर्य का प्रकाश पौधों की वृद्धि में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया हेतु यह आवश्यक है। अधिक सूर्यातप प्राप्त करने वाली वनस्पतियों एवं कम सूर्यातप प्राप्त करने वाली वनस्पतियों के स्वरूप में भी स्पष्ट अंतर दिखाई देता है।

## भारत में प्राकृतिक वनस्पति का वर्गीकरण

**भारत में पाए जाने वाले वनस्पतियों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है-**

### उष्ण कटिबंधीय सदाबहार वनस्पतियाँ

ये वनस्पतियां उन भागों में पाए जाते हैं जहां वर्षा का औसत 200 सेमी अथवा इससे अधिक, वार्षिक औसत तापमान 28°C के लगभग एवं वायु में आर्द्रता की मात्रा 70% से अधिक होती है। यहां वर्षा ॠतु सामान्यतः 8 माह तक बनी रहती है। इस प्रकार की वनस्पतियाँ उत्तरी में हिमालय, पूर्वी हिमालय, दक्षिणी भारत में पश्चिमी घाट, नीलगिरि, अन्नामलाई व इलायची की पहाड़ियों, एवं अण्डमान-निकोबार द्वीप तक फैले हैं।

- सामान्यतः अधिक वर्षा के कारण ये वनस्पतियां सदैव हरी रहती हैं। वर्षा की मात्रा में कमी होने से यह अर्ध सदाबहार हो जाते हैं। इस क्षेत्र में वनस्पति की विविधता और अत्यधिक सघनता पायी जाती है। जिससे इनको काटने में कठिनाई होती है। इन वनों में अधिकतर रबड़, महोगनी, एबौनी, लौह-काष्ठ, जंगली आम, साल, बांस तथा बेंत, लताएं अधिक उगती हैं। प्रायद्वीपीय भारत में तमिलनाडु, केरल तथा अगुम्बे कर्नाटक में पाए जाने वाली उष्ण कटिबंधीय पर्वतीय सदाबहार वनों को **शोला वन** कहते हैं। इन वनों में पाई जाने वाली वृक्ष प्रजातियां भारत में अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती हैं। अत्यधिक सघन होने, मिश्रित वृक्षों के पाये जाने एवं परिवहन सुविधाओं के अभाव के कारण इन वनस्पतियों का आर्थिक उपयोग बहुत कम हुआ है।

### उष्णकटिबंधीय आर्द्र मानसूनी वनस्पति

ये वनस्पतियां अधिकतर उन भागों में पायी जाती हैं जहां वर्षा प्रायः 100 से 200 सेमी तक, औसत वार्षिक तापमान 26°C से 30°C और आर्द्रता का प्रतिशत 60 से 80 के बीच रहता है। ग्रीष्म ॠतु के प्रारंभ में नमी संरक्षण के लिए इन वृक्षों की पत्तियां झड़ जाती है, इसीलिए इसे पतझड़ वन भी कहा जाता है। इन भागों में ऊंचे (20 से 45 मीटर) और मजबूत वृक्षों के लिए काफी जल मिल जाता है। किंतु वर्षा की मात्रा इतनी अधिक नहीं होती कि वनस्पतियों की सघनता बहुत अधिक हो। अतः इन वृक्षों के नीचे अधिक झाड़-झंखाड़ नहीं पाये जाते, किंतु प्रकाश मिलने से घास व बांस अधिक पैदा होते हैं।

- इस प्रकार की वनस्पतियां हिमाचल प्रदेश से असम तक हिमालय के बाहरी और निचले ढालों पर मिलती हैं। ये वनस्पतियां उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, बिहार, झारखंड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल और दक्षिण पश्चिमी घाट के पूर्व से लगातार मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व कर्नाटक का अधिकांश आर्द्र पठारी भाग और पूर्वी केरल के शुष्क भागों में कुमारी अंतरीप तक मिलती हैं। इन वनस्पतियों में सागवान, साखू, साल, बांस, पलास, आंवला, शीशम, लाल व सफेद चंदन की लकड़ियाँ प्राप्त होती है। अपनी मजबूती के कारण यह वनस्पतियां आर्थिक दृष्टि से मूल्यवान होती हैं।

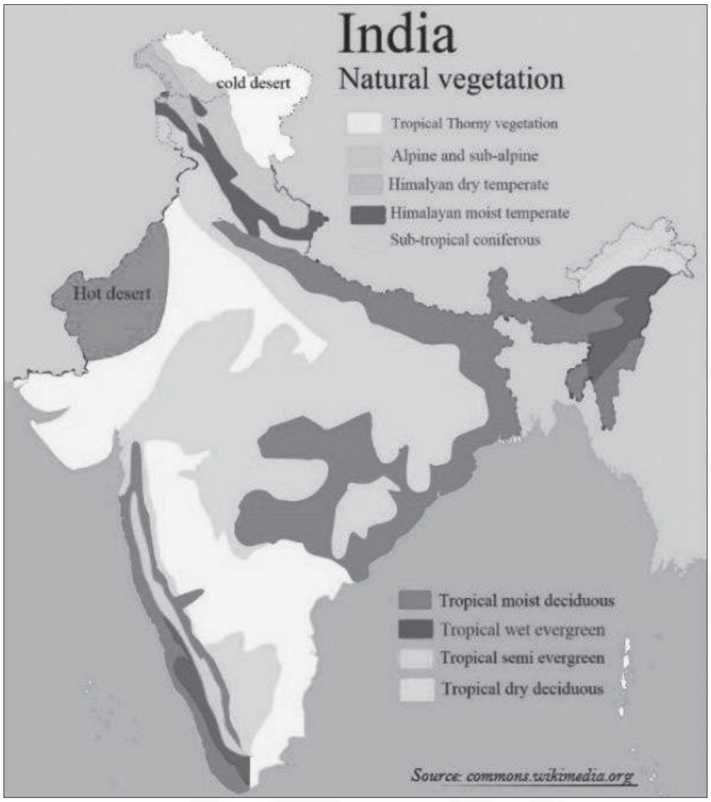


## *उष्णकटिबंधीय शुष्क कंटीली वनस्पति*

जिन भागों में वर्षा की मात्रा 50 से 100 सेंटीमीटर के मध्य, आर्द्रता 50 से 60 प्रतिशत और तापमान 20°C से 35°C तक रहता है वहां उष्ण कटिबंधीय शुष्क वनस्पतियां पायी जाती हैं। इन वृक्षों की साधारणत: ऊंचाई 6 से 9 मीटर तक होती है। यहां विशेषत: ऐसे वृक्षों अथवा झाड़ियों की अधिकता होती है जो जल की कमी सहन करने में सक्षम होती हैं। इन वृक्षों की जड़ें बहुत लंबी और मोटी होती है जिससे वे भूगर्भ से जल का अवशोषण कर सकें। कुछ वृक्ष मोटी पत्ती वाले अथवा कांटेदार होते हैं, जिससे कि तीव्र वाष्पीकरण से बच सके। कई पौधों पर पत्तियां बिल्कुल नहीं या बहुत कम होती है किंतु कांटे अधिक होते हैं। सूर्य की तेज किरणें काटों की नोंक द्वारा जल की बहुत ही कम मात्रा को उड़ा पाती हैं तथा इन कांटों के कारण वह पशुओं के खाये जाने से भी बच जाते हैं। जिन भागों में वर्षा 30 सेंटीमीटर से 45 सेंटीमीटर के मध्य होती है वहां पर कंटीली झाड़ियां, खेजड़ा, बबूल, कैर, आंवला, रीठा, कूमठा, थूहर, आक, खजूर, बड़, पीपल आदि दूर-दूर बिखरे हुए पाये जा सकते हैं।

- उत्तरी भारत में इस प्रकार की वनस्पति दक्षिणी-पश्चिमी पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, दक्षिणी और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पायी जाती हैं। दक्षिणी प्रायद्वीप के शुष्क भागों में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, महाराष्ट्र के आंतरिक भागों में भी इसी प्रकार की वनस्पतियां पायी जाती हैं। इन वृक्षों की लकड़ियां मुख्यत: ईंधन के काम में आती हैं। कुछ का उपयोग इमारती कार्यों के लिए भी किया जाता है। इन्हीं वनों से कत्था, गोंद, कैर, सांगरी अनेक प्रकार की जड़ी बूटियां, देशी दवाइयां आदि प्राप्त किये जाते हैं। यहां घास का प्राय: अभाव पाया जाता है।

## *पर्वतीय वनस्पतियाँ*

ये वनस्पतियां देश के पर्वतीय प्रदेशों में पाई जाती हैं। भौगोलिक दृष्टि से इन्हें उत्तरी या हिमालयी वनस्पतियां तथा दक्षिणी या प्रायद्वीपीय वनस्पतियों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है–

- ***उत्तरी अथवा हिमालयी वनस्पति***- ये वनस्पतियां हिमालय पर्वत के दक्षिणी ढलानों पर पाई जाती हैं। पूर्वी हिमालय के कर्क रेखा एवं समुद्र तट से अधिक पास होने के कारण यहां वार्षिक वर्षा का औसत पश्चिमी हिमालय की अपेक्षा अधिक है फलस्वरूप पूर्वी हिमालय में इन वनस्पतियों की सघनता अधिक होती है। हिमालय का पश्चिमी भाग न केवल कर्क रेखा से अधिक उत्तर है, बल्कि यहां महाद्वीपीय जलवायु का भी प्रभाव है जिससे इस भाग में वर्षा की मात्रा भी कम है। इसीलिए इन दोनों भागों की वनस्पति की पेटियों की ऊंचाई एवं सघनता में अंतर देखने को मिलता है। वस्तुत: हिमालय क्षेत्र में बढ़ती ऊंचाई के साथ उष्ण कटिबंधीय वनस्पति से लेकर अल्पाइन प्रकार की वनस्पति का अनुक्रम मिलता है। इनमें चौड़ी एवं शंक्वाकार पत्ती वाले वृक्षों ओक, लारेल, चेस्टनट, चीड़, फर, स्प्रूस, देवदार, चिनार, अखरोट आदि की बहुतायत है। 3000 मीटर से 4000 मीटर की ऊंचाई पर सिल्वर फर, जूनीपर, चीड़, बर्च एवं रोडोडेण्ड्रोन आदि के वृक्ष पाए जाते हैं। हिमरेखा के निकट पहुंचने पर इन वृक्षों का विकास रूक जाता है और इनमें गांठें पड़ने लग जाती हैं।
- ***दक्षिणी या प्रायद्वीपीय वनस्पतियाँ***- देश के प्रायद्वीपीय भाग में प्रायद्वीपीय वनस्पतियां नीलगिरि, अन्नामलाई, पालनी की पहाड़ियों, महाबलेश्वर तथा पश्चिमी घाट के उच्च भागों, सतपुड़ा और मैकाल की पहाड़ियों पर पाए जाते हैं। इन भागों में घास के मैदान, सदाबहार वन तथा झाड़ियां उगी हुई मिलती हैं। इन भागों में यूकेलिप्टस वृक्षों का रोपण किया गया है। दक्षिण में नीलगिरि और पालनी की पहाड़ियों में 1075 से 1525 मीटर की ऊंचाई पर आर्द्र वनस्पतियां पायी जाती हैं। इससे कम ऊंचाई पर मिश्रित वनस्पतियां मिलती हैं। सह्याद्रि, सतपुड़ा और मैकाल की पहाड़ियों पर भी इसी तरह की वनस्पतियां पायी जाती हैं। नीलगिरि, अन्नामलाई और पालनी की पहाड़ियों पर 1,500 मीटर की ऊंचाई पर मिश्रित वनस्पतियों को स्थानीय लोग शोला वन कहते हैं। शोला वन घने होते हैं। इनमें कई प्रकार के अधिपादप, काई और फर्न पाए जाते हैं।

**शोला वन**

यह वनस्पति पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट, सतपुड़ा श्रेणी, नीलगिरि, कार्डमम एवं अन्नामलाई की पहाड़ियों पर 1070 से 1500 मीटर की ऊंचाई के बीच पायी जाती है। यह उष्णकटिबंधीय पर्वतीय सदाबहार वनों का ही एक रूप है।

## *ज्वार प्रदेशीय या दलदली वनस्पतियां*

इस प्रकार की वनस्पतियां उन भागों में पाए जाते हैं, जहां समुद्र तट पर ज्वार-भाटा के कारण खारा जल फैल जाता है। यहां की मिट्टी भी दलदली होती है। जहां मुख्यत: ऐसी वनस्पति पैदा होती है जिसकी जड़े सदैव नमकीन जल में डूबी रहती हैं। इनसे शाखाएं निकलकर चारों ओर फैल जाती हैं। ये वृक्ष ऊंचे व सदा हरे-भरे रहते हैं। इसमें मुख्यत: हैरोटोरिया, नारियल, ताड़, बेंत, बांस, सरप्लोस, रोजोफरोरा, सोनेरीटा, फानिक्स, सुंदरी आदि किस्म की वनस्पति पायी जाती है।

- भारत में यह वनस्पतियां मुख्यत: पूर्वी तट पर गंगा के डेल्टा, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश के तटवर्ती जिलों और महानदी, कृष्णा, गोदावरी, आदि नदियों के डेल्टा में मिलते हैं। सुंदर वन में सुंदरी नामक वृक्षों की बहुतायत होती है। इसकी लकड़ी नावें बनाने के लिए काम में लाई जाती हैं। यहां के नाविकों की बस्तियां भी इन्हीं वृक्षों से बनाई जाती है।

## *नदी तट की वनस्पतियां*

वर्षा ऋतु में नदियों की बाढ़ का जल नदियों के दोनों किनारों पर जहां तक फैल जाता है वहां ये वृक्ष उग जाते हैं। जो वृक्ष नदी तटों के निकट होते हैं वे अपनी

लम्बी जड़ों द्वारा भूमिगत जल को खींचकर बड़े ऊंचे और सुदृढ़ बन जाते हैं किंतु जो वृक्ष नदी तट से दूर होते हैं वे प्राय: छोटे और दुर्बल हो जाते हैं।

- इन वृक्षों में मुख्यत: बबूल, शीशम, जामुन, महुआ, नीम, आम, शहतूत, पीपल, इमली, खैर आदि हैं। ऐसे वन पंजाब से लेकर असम तक मिलते हैं। चूंकि नदी तट की भूमि में खेती अधिक की जाती है, अत: वन कम घने ही होते हैं। इन्हीं से किसानों को ईंधन उपलब्ध होता है।

## वन संसाधन के प्रकार

*वनों का वर्गीकरण मुख्यत: तीन श्रेणियों के अंतर्गत किया जाता है–*

| | |
|---|---|
| **1.** | ***सुरक्षित वन***– जैव विविधता के संरक्षण के लिए यहां वृक्षों की कटाई और पशुओं की चराई बिल्कुल वर्जित होती है। यह वृक्षों से भरा वन होता है, जिसका कोई विशेष आर्थिक लाभ नहीं होता है। यह अप्रत्यक्ष रूप से वन्य जीवन या प्राकृतिक वनस्पति को सुरक्षा प्रदान करके वनों को संरक्षण प्रदान करता है। इसका प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ तब प्राप्त होगा, जब इन वनों को राष्ट्रीय उद्यान बनाकर पर्यटन स्थल के रूप में इसे प्रोत्साहित किया जाएगा। सुरक्षित वन वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होते हैं। |
| **2.** | ***व्यापारिक वन***– यहां लाइसेंस प्राप्त लोगों को वृक्ष की कटाई एवं पशुओं को चराने का अधिकार होता है। इस प्रकार के वन क्षेत्र को बहुत कीमती माना जाता है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों, जैसे मलेशिया, में इस प्रकार के वन प्रमुख स्थान रखते हैं क्योंकि यहां उच्च स्थानों पर खेती द्वारा मिट्टी को नुकसान पहुंचाया है। साथ ही उत्तरी कनाडा के ठंडे व कम जनसंख्या वाले क्षेत्रों में ऐसे वन होते हैं। |
| **3.** | ***नवीनतम वन***– इस प्रकार के वनों के अंतर्गत मिट्टी की सुरक्षा और काटे हुए क्षेत्रों को फिर से बसाने के कार्य किए जाते हैं। इस प्रकार का वन विभिन्न कार्यक्रमों और अनुसंधानों के पश्चात बनाया जाता है, जिसमें भूमि अपरदन, तापमान आदि का विशेष ध्यान रखते हुए उसके अनुसार वृक्षारोपण किया जाता है। खाली व बेकार भूमि को साफ कर इस प्रकार के वनों को विकसित किया जाता है, क्योंकि ये आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। इस प्रकार के वन क्षेत्र में वृक्षों की कटाई पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है। अच्छे ढंग से वृक्षारोपण किए जाने के कारण लकड़ी के काटने या अन्य उत्पादों के उपयोग किए जाने से पारिस्थितिकीय खतरा उत्पन्न नहीं हो पाता है। |

## वनों का महत्व

किसी भी देश के आर्थिक, सामाजिक तथा पर्यावरणीय विकास में वनों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। वनों से होने वाले लाभ अत्यंत विविधतापूर्ण है और मनुष्य की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। प्रत्यक्ष लाभ के अंतर्गत वनों से हमें ईंधन के लिए पर्याप्त लकड़ी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त साल, सागवान, देवदार आदि के वृक्षों की लकड़ियाँ फर्नीचर, कृषि व मशीनरी औजार, मकान तथा रेलवे में उपयोग की दृष्टि से व्यापक आर्थिक महत्व की है। अधिकांश उद्योगों जैसे–कागज, दियासलाई, कत्था, रबड़, कृत्रिम रेशम आदि के लिए कच्चे माल की प्राप्ति भी वनों से ही की जाती है। पशुओं के लिए व्यापक चारागाह का निर्माण वनों द्वारा ही संभव होता है। वनों से काष्ठ कोयला प्राप्त होता है, जो सस्ता ईंधन होने के साथ ही ऊर्जा शक्ति का सस्ता व सुलभ स्रोत भी है। भारतीय वनों में कुछ ऐसे वृक्ष भी पाए जाते हैं, जिनके, फलों, पत्तियों व वृक्ष छालों तथा उनके रसों से अनेक प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियां तैयार की जाती हैं। वनों से रेशम और लाख भी प्राप्त होती है, जिससे वस्त्र और चूड़ी आदि का निर्माण होता है।

- प्रत्यक्ष लाभों के अलावा वनों से हमें अप्रत्यक्ष रूप से भी लाभ पहुंचता है। जलवायु को सम बनाने तथा वातावरण में नमीं को बनाए रखने में वन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वर्षा के लिए भी वन अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। बाढ़ के पानी के बहाव तथा नदियों की जलधारा का नियंत्रण वनों द्वारा होता है। वनों से निकले ह्यूमस तथा जीवांश के मिलने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। वनों द्वारा भूमि के अपरदन को भी नियंत्रित किया जाता है। कृषि और उद्योगों के बीच संतुलन स्थापित करने वाला एक प्रमुख कारक वन ही है। वनों के कारण भूमिगत जल का स्तर ऊपर आ जाता है, जिससे एक ओर जहां सिंचाई तथा पीने के लिए कुंआ खोदने में सुविधा होती है वहीं दूसरी ओर वर्षा जल भी भूमि के अंदर आसानी से एकत्रित हो जाता है। वनों द्वारा कोयले और पेट्रोल के रूप में ईंधन की प्राप्ति होती है (वैसे वन जो पूर्व में भूमि के नीचे दब गए थे)।
- वनों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभ किसी देश या काल की सीमा से बंधे नहीं होते हैं। वनों द्वारा प्रत्यक्ष लाभ तो स्थान विशेष के लागों को ही होता है, परंतु अप्रत्यक्ष रूप से इसका लाभ लगभग पूरी दुनिया को मिलता है।

## राष्ट्रीय वन नीति

भारत में वनों का वितरण अत्यधिक असमान व अपर्याप्त है। भारत की समस्त भूमि का मात्र 23% भाग वनाच्छादित है। जबकि कुल भौगोलिक क्षेत्र का 33% वनावरण आवश्यक है। हिमाचल प्रदेश, केरल, ओडिशा व त्रिपुरा कुछ ऐसे गिने–चुने राज्य हैं जहां वन क्षेत्र राष्ट्रीय औसत से अधिक है जबकि अन्य राज्यों में यह राष्ट्रीय औसत से कम या काफी कम है। भारत में सबसे पहले 1894 में वन नीति का निर्माण हुआ जिसको 1952 में तथा 1988 में संशोधित किया गया। 1988 की संशोधित नीति वनों की सुरक्षा, संरक्षण तथा विकास पर जोर देती है। राष्ट्रीय वन नीति–1988 के अनुसार भारत में 33% वन क्षेत्र की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है। इसके अनुसार मैदानी भागों में 20% तथा पर्वतीय भागों में 60% क्षेत्र को वनाच्छादित करने की आवश्यकता है।

### भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2021
***(India state of forest report 2021)***

- ***यह रिपोर्ट भारतीय वन सर्वेक्षण (FSI)***- देहरादून (1981) द्वारा प्रत्येक 2 वर्ष में तैयार की जाती है। FSI, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के अधीन आता है।
- ***जारीकर्ता***– पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय।
- पहली रिपोर्ट 1987 में जारी की गई थी।
- पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्री भूपेंद्र यादव द्वारा 13 जनवरी 2022 को 17वीं भारत वन स्थिति रिपोर्ट जारी की गई।
- इस रिपोर्ट को जारी करने में भारतीय दूर संवेदी उपग्रह रिसोर्स सैट-2 से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग किया जाता है।

## वनावरण या वन क्षेत्र या Forest cover

वह सभी भूमि जिसका क्षेत्रफल 1 हेक्टेयर से अधिक हो और वृक्ष घनत्व 10 % से अधिक हो वनावरण कहलाता है। भूमि का स्वामित्व व कानूनी दर्जा इसे प्रभावित नहीं करता है। यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकार की भूमि अभिलेखित वन में सम्मिलित हो। वृक्षावरण या वृक्षों से आच्छादित क्षेत्र या इसमें अभिलेखित वन क्षेत्र के बाहर 1 हेक्टेयर से कम आकार के वृक्ष खंड आते हैं।वृक्ष आवरण में सभी प्रकार के वृक्ष आते हैं, जिनमें छितरे हुए वृक्ष भी सम्मिलित हैं।

***भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2021 के अनुसार भारत का वृक्ष तथा वनावरण:-***

| *वर्ग* | *क्षेत्रफल (वर्ग किमी) वनावरण* | *भौगोलिक क्षेत्रफल का %* |
|---|---|---|
| अति सघन वन (VDF) | 99,779 | 3.04% |
| मध्यम सघन वन (MDF) | 3,06,890 | 9.33% |
| खुले वन (Open forest) | 3,07,120 | 9.34% |

| | | |
|---|---|---|
| कुल वनावरण (Forest cover) | 7,13,789 | 21.71% |
| वृक्षावरण (Tree cover) | 95,748 | 2.91% |
| कुल वन तथा वृक्षावरण | 8,09,537 | 24.62% |
| झाड़ियाँ | 46,539 | 1.42% भारत में |
| गैर-वन क्षेत्र है- 76.87% | | |

- वनावरण में सबसे ज्यादा वृद्धि खुले वनों में देखी गई है। भारतीय वन स्थिति रिपोर्ट 2019 की तुलना में वृक्ष तथा वनावरण में कुल 2,261 वर्ग किमी की वृद्धि हुई है।
- वनावरण में 1540 वर्ग किमी की वृद्धि
- वृक्षावरण में 721 वर्ग किमी की वृद्धि

| *सर्वाधिक वृद्धि वाले राज्य* | | *सर्वाधिक कमी वाले राज्य* | |
|---|---|---|---|
| | *वर्ग किमी* | | *वर्ग किमी* |
| 1 आंध्र प्रदेश | 647 | 1 अरुणाचल प्रदेश | -257 |
| 2 तेलंगाना | 632 | 2 मणिपुर | -249 |
| 3 ओडिशा | 537 | 3 नगालैंड | -235 |
| 4 कर्नाटक | 155 | 4 मिजोरम | -186 |
| 5 झारखंड | 110 | 5 मेघालय | -73 |

| *क्षेत्रफल के आधार पर सर्वाधिक वन क्षेत्र* | *वर्ग किमी* | *प्रतिशत के आधार पर सर्वाधिक वन* |
|---|---|---|
| 1 मध्य प्रदेश | 77,493 | 1 मिजोरम 84.53% |
| 2 अरुणाचल प्रदेश | 66,431 | 2 अरुणाचल प्रदेश 79.33% |
| 3 छत्तीसगढ़ | 55,717 | 3 मेघालय 76.00% |
| 4 ओडिशा | 52,156 | 4 मणिपुर 74.34% |
| 5 महाराष्ट्र | 50,798 | 5 नगालैंड 73.90% |

### *17 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों में 33% से अधिक भौगोलिक क्षेत्र वनआच्छादित है।*

इन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से पांच राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों जैसे लक्षद्वीप, मिजोरम, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, अरुणाचल प्रदेश औरमेघालय में 75% से अधिक वन क्षेत्र हैं, जबकि 12 राज्यों/केंद्रशासित प्रदेशों अर्थात् मणिपुर, नागालैंड, त्रिपुरा, गोवा, केरल, सिक्किम, उत्तराखंड, छत्तीसगढ़, दादरा एवं नगर हवेली और दमन एवं दीव, असम, ओडिशा में वन क्षेत्र 33 प्रतिशत से 75 प्रतिशत के बीच है।

- ***वृक्षावरण:***- देश का कुल वृक्षावरण 95,748 वर्ग किमी है। (1212 वर्ग किमी. की वृद्धि) यह भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 2.91% है।

| *सर्वाधिक वृक्षावरण वाले राज्य* | *वर्ग किमी* |
|---|---|
| **1 महाराष्ट्र** | 12,108 |
| **2 राजस्थान** | 8,733 |
| **3 मध्य प्रदेश** | 8,054 |
| **4 कर्नाटक** | 7,494 |
| **5 उत्तर प्रदेश** | 7,421 |

- ***वनों से बाहर वृक्षों Tree Outside Forest (TOF) का विस्तार:***- देश में वनों के बाहर वृक्षों का विस्तार 29.29 मिलियन हेक्टेयर है, जो भारत के कुल वन व वृक्षावरण का 36.18% है।

| *TOF का सर्वाधिक विस्तार* | | *TOF का सर्वाधिक प्रतिशत* | |
|---|---|---|---|
| | *वर्ग किमी* | | *प्रतिशत* |
| 1 महाराष्ट्र | 26,866 | 1 लक्षद्वीप | 90.50% |
| 2 ओडिशा | 24,474 | 2 केरल | 37.05% |
| 3 कर्नाटक | 22,676 | 3 गोवा | 34.25% |

***मैंग्रौव वन***- समुद्र केआसपास का वन क्षेत्र।

***कुल***- 4992 वर्ग किमी (देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का 0.15%)

- इसमें 17 वर्ग किमी की वृद्धि हुई है।

### *मैंग्रोव आवरण में सर्वाधिक वृद्धि वाले राज्य*

1. ओडिशा (8 वर्ग किमी. की वृद्धि)
2. महाराष्ट्र (4 वर्ग किमी. की वृद्धि)
3. कर्नाटक (3 वर्ग किमी. की वृद्धि)

### *बांस क्षेत्र (Bamboo Bearing Area)*

बांस के वन 53,336 मिलियन कल्म (तने) हो गए हैं।

***कुल क्षेत्र***- 15 मिलियन हेक्टेयर।

***सर्वाधिक बांस क्षेत्र वाला राज्य***- मध्य प्रदेश।

***वनों की आग की स्थिति***- 46% वन क्षेत्र में आग लगने का खतरा है।

### *टाइगर रिजर्व, कॉरिडोर व शेर संरक्षित क्षेत्रों में वन आवरण*

- भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2021 में भारत के टाइगर रिजर्व, गलियारे एवं शेर संरक्षण क्षेत्र में वन आवरण के आकलन से संबंधित एक नया अध्याय सम्मिलित किया गया है।
- 2011-22 के बीच बाघ क्षेत्र के वनावरण में 22.62 वर्ग किमी की कमी आई है। कुल 53 में से 21 टाइगर रिजर्व के वनावरण में वृद्धि जबकि 32 टाइगर रिजर्व के वनावरण में कमी हुई है।
- वनावरण में सर्वाधिक वृद्धि वाले टाइगर रिजर्व
  1. बक्सा (पश्चिम बंगाल)
  2. अन्नामलाई (तमिलनाडु)
  3. इंद्रावती (छत्तीसगढ़)
- वनावरण में सर्वाधिक कमी वाले टाइगर रिजर्व
  1. कवल टाइगर रिजर्व (तेलंगाना)
  2. भादरा
  3. सुंदरबन।
- भारत का नवीनतम (53वां) टाइगर रिजर्व - गुरु धासी दास राष्ट्रीय उद्यान (छत्तीसगढ़)
- विस्तार की दृष्टि से सबसे बड़ा टाइगर रिजर्व - नागार्जुन सागर श्रीसेलम (आंध्र प्रदेश)
- सबसे छोटा टाइगर रिजर्व - बोर टाइगर रिजर्व (महाराष्ट्र)

### *कार्बन स्टॉक*

- कुल कार्बन स्टॉक 7,204 मिलियन टन अनुमानित है।
- 2019 के अंतिम आकलन की तुलना में देश के कार्बन स्टॉक में 79.4 मिलियन टन की वृद्धि हुई है।

- कार्बन स्टॉक में वार्षिक वृद्धि 39.7 मिलियन टन है।
- देश में सर्वाधिक कार्बन स्टॉक- अरूणाचल प्रदेश।

### *अन्य विशेषता*

- इस रिपोर्ट में एक नया अध्याय जोड़ा गया है, जिसमें 'जमीन से ऊपर बायोमास' का अनुमान किया गया है।
- बिट्स पिलानी के गोवा कैंपस के सहयोग से 'भारतीय वनों में जलवायु परिवर्तन हॉटस्पॉट की मैपिंग' पर आधारित एक अध्ययन किया गया है।

### *वनों के विनाश के कारण*

- जनसंख्या में वृद्धि होने से कृषि उत्पादन बढ़ाने की बाध्यता ने कृषि भूमि की मांग को बढ़ा दिया जिसकी पूर्ति वनों को काटकर की गयी जो वनों के विनाश का कारण बनी।
- ब्रिटिश शासन काल में जब रेलमार्गों का विकास किया जाने लगा तो स्लीपरों के लिए अंधाधुंध रूप से वनों को काटा गया। जहाज बनाने हेतु तथा घरेलू उपयोग के लिए ईंधन की आवश्यकता पूरी करने हेतु अत्यधिक कटाई ने वनों का विनाश किया।
- वनों में पशुओं की अनियंत्रित चराई के कारण भी वन क्षेत्रों का विनाश हुआ। ये पशु कोमल टहनियों को खाते हैं, जिससे वृक्षों की जल ग्रहण करने की क्षमता नष्ट हो जाती है तथा अपने खुरों से वृक्षों की जड़ों को हिला देते हैं, अतः मिट्टी का क्षरण आरंभ होकर कालांतर में वन क्षेत्र नष्ट हो जाते हैं।
- वृक्षों में अनेक प्रकार के कीड़े और बीमारियां लग जाने से भी उनका विनाश हुआ है। कभी-कभी वन क्षेत्रों में दावाग्नि फैल जाने से क्षेत्र विशेष के वन नष्ट हो गए। बाढ़ों के कारण भी वृक्ष नष्ट हो गए।
- आदिवासियों द्वारा झूमिंग प्रणाली द्वारा खेती किए जाने से वनों का तेजी से विनाश हुआ है।
- सरकारी नियमों की आड़, सत्ता का दुरूपयोग, नगरों में लकड़ी की बढ़ती मांग, उच्च वर्ग का शिकार के प्रति बढ़ता रूझान, राजमार्गों का निर्माण, बड़ी-बड़ी सिंचाई परियोजनाओं का क्रियान्वयन, औद्योगिक विकास आदि कारणों से भी वन नष्ट होते गए।
- भारत के ग्रामीण इलाके में ईंधन खपत का 47 प्रतिशत भाग वनों से प्राप्त होता है। इन क्षेत्रों में ईंधन की लकड़ी की आवश्यकता ने भी वनों के विनाश में योगदान दिया है।
- इमारती एवं फर्नीचर की लकड़ी की आवश्यकता की पूर्ति हेतु साल, शीशम, सागवान, आबनूस, आदि वृक्षों को काफी अधिक कटाई, जम्मू-कश्मीर एवं कर्नाटक में काष्ठ व शिल्प उद्योग के लिए वनों की कटाई आदि के कारण निर्वनीकरण तीव्र हुआ है।
- परिवहन मार्गों के विकास एवं निर्माण, खनिजों की खुदाई, विशाल बांधों का निर्माण जैसे विकास कार्यों के कारण भी वनों का विनाश हुआ है।

### *वनों के विनाश से हानियाँ*

वन देश की राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय संसाधन, भूमि का उपजाऊपन आदि बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इनके कट जाने से अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं। जैसे-

- वनों का देश की जलवायु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। हिमाचल प्रदेश में शिवालिक पर्वतमाला के ढालों पर उगे हुए वनों को नष्ट कर दिए जाने से वहां की जलवायु शुष्क हो गयी है और भूमि अनुपजाऊ बनती जा रही है।
- वनों के कट जाने से वर्षा में कमी आ जाती है तथा भूमि का जल अधिक मात्रा में बह जाता है एवं वाष्प बनकर उड़ने लगता है।
- पर्वतीय ढालों के वन काटे जाने से नदियों का प्रवाह तेज हो जाता है जिससे मिट्टी का क्षरण अधिक होने लगता है और बाढ़ों का प्रकोप बढ़ जाता है। साथ ही भूमिगत जल का स्तर भी गिर जाता है।
- वनों की कमी से ग्रामीणों को ईंधन के लिए लकड़ियां कम मिलती है, विवशतः उन्हें गोबर रूपी खाद के उपले बनाकर जलाना पड़ता है जिससे खेतों को उचित मात्रा में खाद न मिलने से उनकी उत्पादन क्षमता घट जाती है।
- वनों के कट जाने से पशुओं के लिए चारे की कमी पड़ जाती है। दुधारू पशु निर्बल हो जाते हैं तथा वे कम दूध देने लगते हैं।
- वनों के कट जाने से वनों पर निर्भर उद्योग धंधे को भी कच्चे माल का अभाव हो जाता है। उन पर आश्रित जड़ी-बूटियां, अनेक पशु-पक्षी, नैसर्गिक जैव जगत सब कुछ नष्ट हो जाता है।

### *वन संसाधन के संरक्षण के उपाय*

वन हमारी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। इसका चक्रीय संसाधनों की भांति निरंतर विकास एवं संरक्षण दोनों ही आवश्यक है। वनों के संरक्षण के लिए भारत में क्षेत्रवार एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रकार से प्रयास पांचवी योजना से ही किए जाते रहे हैं। यहां पर वनों के विकास एवं संवर्द्धन हेतु विशेष सुझाव दिए गए हैं-

- देश के सभी भागों में राष्ट्रीय पार्को एवं अभ्यारण्यों की संख्या में निरंतर वृद्धि की जानी चाहिए। नवीन अभ्यारण्यों के निरंतर विकास को राष्ट्रीय नीति का अंग बनाया जाना चाहिए।
- देश के सभी भागों में जलवायु एवं भू-व्यवस्था व धरातल स्वरूप के अनुसार निर्धारित वनस्पति तंत्र अथवा विशेष क्षेत्र में आरक्षित वन क्षेत्रों व नम पट्टियों का विकास किया जाए।
- राष्ट्रीय वन मण्डल, राष्ट्रीय वन अनुसंधान परिषद एवं केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय को मिलकर वन विकास पर आधारित योजना बनानी चाहिए। राजस्थान, हरियाणा, गुजरात, कर्नाटक जैसे राज्यों के बंजर पहाड़ी एवं बेकार पड़े एवं भू-कटाव से ग्रसित क्षेत्रों में वनों का तेजी से विकास किया जाना चाहिए।
- नव विकसित वृहत् सिंचाई परियोजना के कमाण्ड क्षेत्र में पहले से 40 से 50 प्रतिशत अल्पविकसित एवं गैर कृषि भूमि पर व्यावसायिक, उपयोगी अथवा फलदार वृक्षों के उद्यान एवं अभ्यारण्यों के विकास की राष्ट्रीय नीति बनाई जाए।
- देश के पहाड़ी व पठारी, उजाड़ क्षेत्रों, पूर्व के नष्ट किए गए वन क्षेत्रों, बंजर एवं वनरहित पहाड़ी भागों में विशिष्ट जल संरक्षण प्रणाली के आधार पर बड़े पैमाने पर वन लगाए जाएं।
- आरक्षित घने व अन्य वन क्षेत्रों से जितने क्षेत्र से वृक्ष काटे जाएं उससे 25 प्रतिशत अधिक क्षेत्र में सघन वन लगाएं जाएं। इसी भांति बांध, रेल व सड़क मार्ग, नहरी नगरीय व कृषि भूमि, आदि के विकास के साथ-साथ नवीन वन क्षेत्रों का नहरी कमांड क्षेत्र, मार्गों व नहरों के निकट वनों की चौड़ी पट्टी बना कर वनों की पुनः स्थापना की जाए।
- आरक्षित वन क्षेत्रों से वनों की कटाई, घास की चराई व अन्य प्रकार से वृक्षों के लिए हानिप्रद कार्यों पर सभी प्रकार से नियंत्रण लगाए जाएं।
- इमारती लकड़ी के स्थानापन्न के रूप में प्लास्टिक/फाइबर तथा स्टील का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- घरेलू ईंधन में लकड़ी के स्थान पर बायोगैस, सोलर कुकर, विद्युत, चूरे या बुरादे का ईंधन, नगरीय वेस्ट (Waste) से बना ईंधन व गैस एवं खनिज तेल व LPG उत्पादों को अर्थात इन्हें स्थानापन्न साधनों के रूप में बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- प्राथमिक शिक्षा से ही वनों के महत्व, संरक्षण एवं उसके प्रति प्रत्येक

नागरिक कर्तव्य, जागरूकता एवं प्रशासन की उपेक्षा का विरोध जैसे सभी तथ्यों का ज्ञान आवश्यक रूप से दिया जाना चाहिए।

### राष्ट्रीय वन आयोग

भारत के माननीय प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में 21 जनवरी, 2002 को हुई बैठक में भारतीय वन्यजीव बोर्ड ने यह घोषणा की कि देश में सभी संगठनों और मान्यता प्राप्त संस्थाओं के पुनर्गठन सुधार और सुदृढ़ीकरण के मामलों को देखने के लिए एक राष्ट्रीय वन आयोग की स्थापना की जानी चाहिए। तद्नुसार देश के समूचे वन क्षेत्र और मान्यता प्राप्त संस्थाओं के पुनर्गठन, सुधार और सुदृढ़ीकरण के मामले देखने के लिए भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश माननीय श्री बी. एन. कृपाल की अध्यक्षता में 7 जनवरी 2003 के संकल्प के तहत राष्ट्रीय वन आयोग की स्थापना की गई थी, जिसके विचारार्थ निम्नलिखित विषय आते हैं-

- मौजूदा नीति, कानूनी ढांचे तथा उनके प्रभावों की परिस्थिति, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सही ढंग से समीक्षा व मूल्यांकन करना।
- जन समुदाय की उभरती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर तथा राज्य स्तर पर वन प्रशासन और वानिकी संस्थाओं की ताजा स्थिति की जांच करना।
- ऐसी सिफारिशें देना जिनमें सतत् वन और वन्य जीव प्रबंधन तथा पारिस्थितिकीय सुरक्षा के लिए विशिष्ट नीतिगत विकल्प झलकते हों।
- उपर्युक्त नीतिगत विकल्पों को हासिल करने में सहायता के लिए वन प्रशासन को अधिक प्रभावी बनाने हेतु अर्थोपायों का सुझाव देना।
- आदिवासियों सहित वानिकी प्रबंधन और स्थानीय समुदायों के बीच सार्थक साझेदारी और अंतर्फलक स्थापित करना।
- राष्ट्रीयकृत वन आयोग से अपेक्षा की जाती है कि वह शीघ्र ही सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

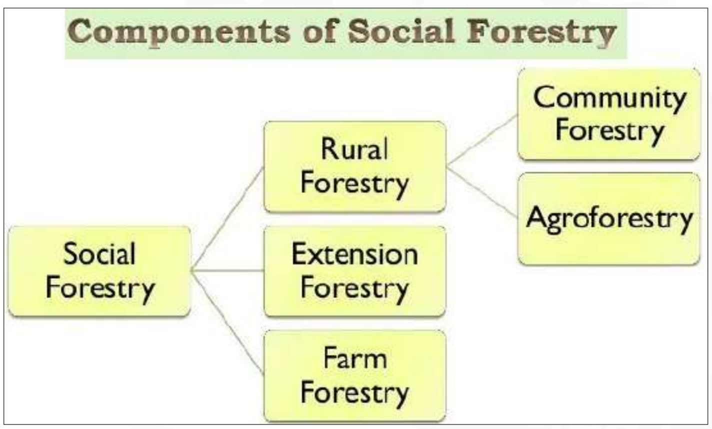


### सामाजिक वानिकी

वृक्षारोपण को प्रोत्साहित करने वाला यह कार्यक्रम 1976 से ही चल रहा है। वनारोपण को एक जन आंदोलन के रूप में प्रोत्साहित करना इस नीति का लक्ष्य है। इसमें गैर-सरकारी संगठनों का भी सहयोग लिया जा रहा है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य वनक्षेत्र का विकास, ईंधन व चारे की आपूर्ति, उद्योगों के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराना तथा वनारोपण द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न करना है। सामाजिक वानिकी के निम्नलिखित तीन तत्व हैं–

1. ***कृषि वानिकी***– किसानों को मुफ्त बीज व छोटे पौधे देकर अपने खेतों में वृक्षारोपण हेतु प्रोत्साहित किया जाता है।
2. ***ग्रामीण या सामुदायिक वानिकी***– गांवों की सामूहिक उपयोग वाली सार्वजनिक भूमियों पर जन समूहों द्वारा वृक्षारोपण को प्रोत्साहित किया जाता है। यह सामाजिक वानिकी का स्वयं नियोजित कार्यक्रम है।
3. ***शहरी या सार्वजनिक वानिकी***– सड़कों, नहरों, टैंकों तथा अन्य सार्वजनिक भूमियों पर वन विभाग द्वारा तेजी से बढ़ने वाले पौधों को लगाया जाना।

- कनाडा तथा स्वीडन के तकनीकी सहयोग से चलाया जाने वाला यह कार्यक्रम पूर्णत: केंद्र नियोजित है। इसे वित्तीय सहयोग विश्व बैंक से मिलता है। वर्तमान समय में इस कार्यक्रम के अंतर्गत सबसे अधिक सफलता कृषि वानिकी को ही मिल सकी है। सामाजिक वानिकी के अधिक सफल नहीं होने का मुख्य कारण जन भागीदारी व जन सूचना का अभाव रहे हैं। यूकेलिप्टस जैसे पारिस्थितिक आतंकवादी पौधों का चयन भी इस कार्यक्रम की असफलता का कारण रहा है क्योंकि इससे अन्य पौधों का विकास रूक जाता था। अभी भी जन भागीदारी बढ़ाने, भूमिहीनों व जनजातियों को शामिल करने तथा पर्यावरण संरक्षण, मृदा संवर्द्धन व जल संरक्षण के लिए इस दिशा में काफी कुछ प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

### आर्द्र भूमि

जलग्रस्त भूमि वैसे दलदली या पानीवाले क्षेत्र हैं जहां सालों भर या साल के एक हिस्से में प्राकृतिक या कृत्रिम रूप से शांत या बहता हुआ, मीठा या खारा पानी वाला ऐसा जलजमाव क्षेत्र हो जिसकी गहराई 6 मीटर से अधिक नहीं हो। अधिकांश जलग्रस्त भूमि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, कावेरी, ताप्ती, गोदावरी आदि जैसी बड़ी नदियों से जुड़ी हुई हैं।

***जलग्रस्त भूमि की निम्न विशेषताएं होती हैं***-

- यह, कीटों तथा पौधों की कई दुर्लभ प्रजातियों का निवास स्थान होती है।
- पारिस्थितिक व्यवस्था बनाए रखते हुए ये पोषक तत्वों का पुनर्निर्माण व जहरीले तत्वों को निष्क्रिय करते हैं। इसलिए इसे प्रकृति का गुर्दा भी कहा जाता है।
- यह अवसादों को रोककर नदियों में गाद के जमाव को कम करती है।
- यह बाढ़ के प्रभाव को कम करती है व मिट्टी के कटाव को रोकती है।

- 1971 ई. में जलग्रस्त भूमि के संरक्षण के लिए बहुउद्देशीय समझौता हुआ था जिसे रामसर सम्मेलन (ईरान) के नाम से जाना जाता है। भारत इसमें 1982 ई. में शामिल हुआ एवं पर्यावरण व वन मंत्रालय द्वारा इनके संरक्षण हेतु 1987 से **राष्ट्रीय आर्द्र या दलदली भूमि संरक्षण कार्यक्रम** चलाया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 24 राज्यों में कुल 103 आर्द्रभूमियां को संरक्षण के लिए चुना गया है तथा 42 जलग्रस्त भूमियों की प्रबंध वाली योजनाएं अनुमोदित हो गई है। कोल्लेरू (आंध्रप्रदेश), वुलर (जम्मू-कश्मीर), चिल्का (ओडिशा), लोकटक (मणिपुर), भोज (मध्य प्रदेश), सांभर व पिछोला (राजस्थान), अष्टमुदी (केरल), हरिके व कांजली (पंजाब), उजनी (महाराष्ट्र), रेणुका (हिमाचल प्रदेश), काबर (बिहार), नल सरोवर (गुजरात), सुखना (चंडीगढ़) प्रमुख आर्द्र भूमियां हैं।

| क्र.सं. | रामसर स्थल | संबंधित राज्य | शामिल वर्ष |
|---|---|---|---|
| 1. | चिल्का झील | उड़ीसा | 1981 |
| 2. | केवलादेव घना पक्षी अभ्यारण | राजस्थान | 1981 |
| 3. | लोकतक झील | मणिपुर | 1990 |
| 4. | वूलर झील | जम्मू कश्मीर | 1990 |
| 5. | हरीके बराज | पंजाब | 1990 |
| 6. | सांभर झील | राजस्थान | 1990 |
| 7. | कंजली झील | पंजाब | 2002 |
| 8. | रोपड़ आर्द्रभूमि | पंजाब | 2002 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 9. | दीपोर बील | असम | 2002 |
| 10. | त्सो मोरीरी झील | लद्दाख | 2002 |
| 11. | कोलेरु झील | आंध्र प्रदेश | 2002 |
| 12. | पोंग बांध झील | हिमाचल प्रदेश | 2002 |
| 13. | अष्टमुदी झील | केरला | 2002 |
| 14. | वेम्बनाड-कोल आर्द्रभूमि क्षेत्र | केरल | 2002 |
| 15. | सस्थमकोट्टा झील | केरल | 2002 |
| 16. | भोज झील वेटलैंड | मध्य प्रदेश | 2002 |
| 17. | भीतरकणिका | उड़ीसा | 2002 |
| 18. | प्वाइंट कैलिमेरे वन्यजीव और पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | 2002 |
| 19. | पूर्वी कोलकाता वेटलैंड | पश्चिम बंगाल | 2002 |
| 20. | रेणुका आर्द्रभूमि | हिमाचल प्रदेश | 2005 |
| 21. | चंदेरटल आर्द्रभूमि | हिमाचल प्रदेश | 2005 |
| 22. | सुरिंसर और मानसर झील | जम्मू कश्मीर | 2005 |
| 23. | होकेरा वेटलैंड | जम्मू कश्मीर | 2005 |
| 24. | रुद्रसागर झील | त्रिपुरा | 2005 |
| 25. | ऊपरी गंगा वेटलैंड | उत्तर प्रदेश | 2005 |
| 26. | नल सरोवर पक्षी अभयारण्य | गुजरात | 2012 |
| 27. | सुंदरबन डेल्टा | पश्चिम बंगाल | 2019 |
| 28. | नंदुर मध्यमेश्वर | महाराष्ट्र | 2019 |
| 29. | केशोपुर मिआनी कम्युनिटी रिजर्व | पंजाब | 2019 |
| 30. | नांगल वन्य जीव अभ्यारण | पंजाब | 2019 |
| 31. | ब्यास संरक्षण रिजर्व | पंजाब | 2019 |
| 32. | नवाबगंज पक्षी अभ्यारण | उत्तर प्रदेश | 2019 |
| 33. | सांडी पक्षी अभ्यारण | उत्तर प्रदेश | 2019 |
| 34. | समसपुर पक्षी अभ्यारण | उत्तर प्रदेश | 2019 |
| 35. | समन पक्षी अभ्यारण | उत्तर प्रदेश | 2019 |
| 36. | पार्वती अरगा पक्षी अभ्यारण | उत्तर प्रदेश | 2019 |
| 37. | सरसई नावर झील | उत्तर प्रदेश | 2019 |
| 38. | आसन कंजर्वेशन रिजर्व | उत्तराखंड | 2020 |
| 39. | कबरताल वेटलैंड | बिहार | 2020 |
| 40. | लोनार झील | महाराष्ट्र | 2020 |
| 41. | सूर सरोवर (कीठम) झील | उत्तर प्रदेश | 2020 |
| 42. | त्सो कर आर्द्रभूमि क्षेत्र | लद्दाख | 2020 |
| 43. | वाधवाना वेटलैंड्स | गुजरात | 2021 |
| 44. | थोल झील अभ्यारण्य | गुजरात | 2021 |
| 45. | सुल्तानपुर राष्ट्रीय उद्यान | हरियाणा | 2021 |
| 46. | भिंडावास वन्यजीव अभ्यारण्य | हरियाणा | 2021 |
| 47. | हैदरपुर वेटलैंड | उत्तर प्रदेश | 2021 |
| 48. | खिजादिया पक्षी अभयारण्य | गुजरात | फरवरी 2022 |
| 49. | बखीरा वन्य जीव अभ्यारण | उत्तर प्रदेश | फरवरी 2022 |
| 50. | करीकिली पक्षी अभयारण्य | तमिल नाडु | जुलाई 2022 |
| 51. | पिचवरम मैंग्रोव | तमिल नाडु | जुलाई 2022 |
| 52. | पल्लिकरनई मार्श रिजर्व फॉरेस्ट | तमिल नाडु | जुलाई 2022 |
| 53. | पाला आर्द्रभूमि | मिजोरम | जुलाई 2022 |
| 54. | साख्य सागर | मध्य प्रदेश | जुलाई 2022 |
| 55. | सतकोसिया रामसर | उड़ीसा | अगस्त 2022 |
| 56. | रंगनाथिट्टू पक्षी अभयारण्य | कर्नाटक | अगस्त 2022 |
| 57. | नंदा झील | गोवा | अगस्त 2022 |
| 58. | सिरपुर आर्द्रभूमि | मध्य प्रदेश | अगस्त 2022 |
| 59. | कोंथनकुलम पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 60. | मन्नार की खाड़ी | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 61. | वेम्बन्नूर वेटलैंड | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 62. | वेलोड पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 63. | वेदान्थंगल पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 64. | उदयमर्थनपुरम पक्षी अभयारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 65. | टंपारा झील | उड़ीसा | अगस्त 2022 |
| 66. | हीराकुंड रिजर्व | उड़ीसा | अगस्त 2022 |
| 67. | अनसुपा झील | उड़ीसा | अगस्त 2022 |
| 68. | यशवंत सागर | मध्य प्रदेश | अगस्त 2022 |
| 69. | चित्रांगुडी पक्षी अभ्यारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 70. | सुचिन्द्रम थेरूर वेटलैंड | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 71. | वडुवुर पक्षी अभ्यारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 72. | कांजीरंकुलम पक्षी अभ्यारण्य | तमिलनाडु | अगस्त 2022 |
| 73. | ठाणे क्रीक | महाराष्ट्र | अगस्त 2022 |
| 74. | हाइगम वेटलैंड संरक्षण रिजर्व | जम्मू कश्मीर | अगस्त 2022 |
| 75. | शालबुग वेटलैंड संरक्षण रिजर्व | जम्मू कश्मीर | अगस्त 2022 |

## आर्द्र क्षेत्र रिपोर्ट

- भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) द्वारा 'उपग्रह चित्रण तकनीक' की सहायता से देश के आर्द्र क्षेत्रों (नमी वाले क्षेत्रों) का एक विस्तृत ब्यौरा तैयार किया है।

**प्रमुख बातें**

- यह ब्यौरा 'इसरो' के अहमदाबाद स्थित 'अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंद्र' द्वारा तैयार किया गया है।
- इसमें पारिस्थितिकी की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं अंधाधुंध विकास के कारण खतरे में पड़े क्षेत्रों को चिन्हित किया गया है।
- यह ब्यौरा केंद्रीय पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा प्रायोजित 'राष्ट्रीय आर्द्र भूमि तालिका एवं आकलन परियोजना' के तहत किया गया है।
- भारत के आर्द्र क्षेत्रों का कुल क्षेत्रफल 15.26 मिलियन हेक्टेयर अनुमानित है, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 4.63% है (नदियों को छोड़कर आर्द्र क्षेत्र एक करोड़ हेक्टेयर है)।
- नदियों द्वारा आच्छादित कुल क्षेत्र 5.26 मिलियन हेक्टेयर है, जो कुल आर्द्र क्षेत्र का 34.46% है।
- इसके बाद क्रमशः जलाशयों, अंतः ज्वारीय दलदली जमीन, पोखरों, तालाबों, मैंग्रोव (0.47 मिलियन हेक्टेयर, 3.09%) और मूंगे (0.14 मिलियन हेक्टेयर, 0.93%) का है।
- राज्यों का क्रम- लक्षद्वीप में सबसे अधिक आर्द्र भूमि क्षेत्र (96.12%) है।
- इसके बाद क्रमशः अंडमान तथा निकोबार द्वीपसमूह, दमन तथा दीव एवं गुजरात का स्थान है।
- मिजोरम में सबसे कम (0.66%) आर्द्र भूमि क्षेत्र है।

## मैंग्रोव

ये उष्ण कटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय प्रदेशों की समुद्र तटवर्ती पश्चजलों, मुहानों, क्षारीय दलदलों व दलदली मैदानों की विशिष्ट पारिस्थितिकी वाले क्षारसह्य वानिकी क्षेत्र हैं। ये बड़ी संख्या में पौधों और जीव-जंतुओं की ऐसी प्रजातियों के संग्रहण क्षेत्र हैं जिनमें क्षार सहन करने की अत्यधिक क्षमता है।

- ये समुद्री जल की उर्वरता बढ़ाते हैं, मृदा अपरदन रोकते हैं। यह समुद्री तूफानों की तीव्रता कम करते हैं तथा समुद्री सूक्ष्म जीवों के लिए नर्सरी का काम करते हैं। राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2006 कच्छ (मैंग्रोव) वनस्पतियों और प्रवाल भित्तियों को महत्वपूर्ण तटीय पर्यावरण संसाधन के रूप में वर्गीकृत करता है जिनसे समुद्री जीवन प्रजातियों को आश्रय मिलता है, उन्हें तीव्र मौसमी बदलाव से सुरक्षा मिलती है। इसके साथ ही ये सतत् पर्यटन के लिए संसाधन का आधार है। पर्यावरण मंत्रालय 1987 से इसके संरक्षण हेतु कार्यक्रम चला रहा है। मंत्रालय ने ओडिशा में राष्ट्रीय कच्छ वनस्पति आनुवांशिक संसाधन केंद्र स्थापित किया है। मैंग्रोव वनस्पति संरक्षण और प्रबंधन योजना में 38 मैंग्रोव वनस्पति क्षेत्रों की पहचान की गई है। उत्तरी अंडमान-निकोबार द्वीप समूह, सुंदरवन (पश्चिम बंगाल), भीतर-कणिका, धमरा (ओडिशा), कोरिंगा, गोदावरी डेल्टा, कृष्णा का मुहाना (आंध्रप्रदेश), महानदी डेल्टा (उड़ीसा), पिचावरम (Pichavaram) व कैलीमर प्वाइंट, काजूवेली, रामनद (तमिलनाडु), गोवा, कच्छ की खाड़ी (गुजरात), कुन्दापुर (कर्नाटक), अचरा, रत्नगिरि, विक्ररौली, कुंडालिका रडाना, मालवन, श्रीवर्धन (महाराष्ट्र) और बेम्बानद (केरल) इनमें प्रमुख हैं। दो कच्छ वनस्पतियां भारत में लुप्त होने के कगार पर हैं। इनमें से एक है तमिलनाडु के पिचावरम में पाई जाने वाली राइजोफोरा अन्नामलायई और दूसरी है ओडिशा के भीतर कणिका में पाई जाने वाली हेरीटेरिया कनिकेंसिस। यूनेस्को द्वारा जीवमंडलीय आरक्षित क्षेत्रों की विश्व सूची में पश्चिम बंगाल के सुंदरवन को शामिल किया गया है। यह देश का सबसे बड़ा मैंग्रोव वनस्पति क्षेत्र है। राष्ट्रीय कच्छ वनस्पति और तटीय जैव विविधता अनुसंधान संस्थान पश्चिम बंगाल के सुंदरवन में प्रस्तावित है।

### मोंट्रेक्स रेकॉर्ड (Montreux Record)

'मोंट्रेक्स रिकॉर्ड' वैसे आर्द्र भूमियों को दिया गया नाम है जो (रामसर सम्मेलन में) अंतर्राष्ट्रीय महत्व के हैं।

- जिनका वातावरणीय या पारितंत्रीय परिवर्तन हो चुका है, या हो रहा है, अथवा भविष्य में होने की संभावना है। भारत में इस प्रकार की भूमियों में लोकटक झील (मणिपुर) की आर्द्र भूमि, केवलादेव राष्ट्रीय पार्क (राजस्थान) की आर्द्र भूमि आदि हैं।

### जीन पूल केन्द्र

वर्तमान में जैव विविधता के ह्रास के कारण विश्व में जीन पूल केंद्रों का निर्माण किया जा रहा है जिससे कि समाप्त हो रही जैव-विविधता को संरक्षित किया जा सके। जैव विविधता का संरक्षण वर्तमान समय में दो भागों में किया जा रहा है। प्रथम स्वास्थाने के अंतर्गत जैव प्रजातियों को उनके मूल आवास में संरक्षित करने का प्रयास किया जाता है। द्वितीय परस्थाने के तहत् प्रजातियों के जीवों के डीएनए को किसी विशेष स्थान पर संग्रहित कर सुरक्षित करते हैं जिससे कि भविष्य में यदि ये प्रजातियां विलुप्त होती हैं तो इनका प्रयोग कर पुन: जैव विविधता को बढ़ाया जा सके।

- भारत में राष्ट्रीय जीन बैंक की स्थापना 1996 में नई दिल्ली में की गई हैं। हैदराबाद में इक्रीसेट, चेन्नई में जीन बैंक, व लखनऊ में डीएनए बैंक की भी स्थापना की गई है। हाल ही में नार्वे ने स्वेलबर्ड द्वीप पर एक अंतर्राष्ट्रीय जीन बैंक की स्थापना की है, जहां विश्व की तमाम जीवों, पेड़-पौधों आदि के जीनों को संरक्षित रखा जायेगा।

## वन्य जीवन

भारत की पारिस्थितिक व भौगोलिक दशायें अत्यंत विविधतापूर्ण हैं। इसी विविधता के कारण यहां अनेक प्रकार के जीव-जंतु भी पाये जाते हैं। संपूर्ण विश्व में कुल जीव-जंतुओं के 15 लाख ज्ञात प्रजातियों में से लगभग 75 हजार प्रजातियां भारत में मिलती हैं। अफ्रीकी, यूरोपीय एवं दक्षिण-पूर्वी एशियाई जैव तंत्रों के संगम पर अवस्थित होने के कारण भारत में इनमें से प्रत्येक जैव-तंत्र के विचित्र प्राणी भी पाए जाते हैं। जहां लकड़बग्घा एवं चिंकारा अफ्रीकी मूल के हैं। वहीं भेड़िया, हंगुल व जंगली बकरी यूरोपीय मूल के हैं। इसी तरह दक्षिण पूर्व एशियाई जैव तंत्र के जानवरों में हाथी व हूलक गिबन प्रमुख प्राणी हैं जो भारतीय वन्य जीवन को अत्यंत समृद्ध बनाते हैं।

### वन्य जीवन का संरक्षण

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान में प्रकृति तथा वन्य जीवन के संरक्षण का स्पष्ट उपबंध दिया गया है। राज्य के नीति निदेशक तत्व और मूल कर्तव्य वाले अध्याय में वन्य जीवन की सुरक्षा का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। **अनुच्छेद 48** में उपबंधित है कि राज्य पर्यावरण को सुधारने तथा देश के वनों और वन्य प्राणियों को बचाने का प्रयत्न करेगा और **अनुच्छेद 51ए** में यह उल्लिखित है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने प्राकृतिक आवेष्टन, यथा वनों, झीलों, नदियों तथा वन्य प्राणियों की रक्षा करे तथा जीवों के प्रति दया का भाव रखे।

- ***समन्वित वन सुरक्षा योजना***- समन्वित वन सुरक्षा योजना के अंतर्गत दो योजनाओं को शामिल किया गया है- पहली, मूलभूत विकास- इसके अंतर्गत (1) सर्वेक्षण की कार्ययोजना और सीमांकन, (2) वन सुरक्षा के लिए मूलभूत सुविधाओं का विकास और दूसरी, जंगल की आग की रोकथाम और प्रबंधन। यह योजना दसवीं पंचवर्षीय योजना के तहत देश के सभी राज्यों तथा केंद्र शासित प्रदेशों में लागू की गई है।
- ***संरक्षण परियोजनाएं***- राष्ट्रीय वन्य जीवन कार्ययोजना, वन्य जीवन संरक्षण के लिए कार्यनीति और कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। पहली वन्य जीवन कार्ययोजना, 1983 को संशोधित करके अब नई वन्य जीवन कार्ययोजना (2002-16) स्वीकृत की गई थी। भारतीय वन्य जीवन बोर्ड जिसके अध्यक्ष प्रधानमंत्री हैं, वन्य जीवन संरक्षण की अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन की निगरानी और निर्देशन करने वाला शीर्ष सलाहकार निकाय है। वन्य जीवन (सुरक्षा) अधिनियम 1972, सभी राज्यों में लागू किया जा चुका है। इस अधिनियम में वन्य जीवन संरक्षण और विलुप्त होती जा रही प्रजातियों के संरक्षण के लिए दिशा-निर्देश दिए गए हैं। दुर्लभ और लुप्त प्राय प्रजातियों के व्यापार पर इस अधिनियम के तहत रोक लगा दी है। वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972 तथा अन्य कानूनों की समीक्षा के लिए एक अंतर्राज्यीय समिति गठित की गई है। जंगल की लुप्त होती जा रही जैव प्राणी व वनस्पतियों की प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर आयोजित सम्मेलन में हुए समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देशों में भारत भी है। लुप्त होती जा रही जीव प्रजातियों और उनके उत्पादों के आयात-निर्यात पर कठोर नियंत्रण आदेश इस समझौते के अंतर्गत दिए गए हैं।

KGS IAS

# KHAN GLOBAL STUDIES

## Most Trusted Learning Platform

GET IN ON
Google Play

Download on the
App Store

Download The
Khan Global Studies App

# KHAN GLOBAL STUDIES

## Most Trusted Learning Platform

**Karol Bagh Office**

57/14, Near Grover Mithaiwala, Old Rajendra Nagar,
New Delhi – 110060
Phone No.: +91 1149 052 928, +91 9205 777 818

**Mukherjee Nagar Office**

704, Ground Floor, Main Road Front of Batra Cinema
Mukherjee Nagar, Delhi – 110009
Phone No.: +91 1143 017 512, +91 9205 777 817

**Connect With Us**